MATS UNIVERSITY

NAAC GRADE A+ ACCREDITED UNIVERSITY

MATS CENTRE FOR DISTANCE & ONLINE EDUCATION

आधुनिक हिन्दी कथा साहित्य

मास्टर ऑफ़ आर्ट्स - हिन्दी

द्वितीय सेमेस्टर

SELF LEARNING MATERIAL

आधुनिक हिंदी कथा साहित्य
ODL MA DSC-202

विषय सूची

	पृष्ठ क्रमांक
खंड 1: आधुनिक हिंदी कथा साहित्य की रूपरेखा	**1-70**
इकाई 1: आधुनिक हिंदी कथा साहित्य की उत्पत्ति और विकास	**1-16**
इकाई 2: कथा साहित्य की प्रमुख प्रवृत्तियाँ	**17-25**
इकाई 3: नई कहानी और नई संवेदना	**26-35**
इकाई 4: स्त्री विमर्श, दलित विमर्श, अस्मिता विमर्श	**36-44**
इकाई 5: कथा साहित्य और समाज	**45-57**
इकाई 6: कथा साहित्य में मनोवैज्ञानिक एवं समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण	**58-70**
खंड 2: उपन्यास	**71-113**
इकाई 7: आधुनिक हिंदी उपन्यास की परंपरा और प्रवृत्तियाँ	**71-79**
इकाई 8: प्रतिनिधि उपन्यासकार	**80-113**
खंड 3: कहानी	**114-184**
इकाई 9: आधुनिक हिंदी कहानी का विकास और स्वरूप	**114-123**
इकाई 10: प्रमुख कहानीकार और उनकी कहानियाँ	**124-184**
खंड 4: एकांकी एवं लघु उपन्यास	**185-222**
इकाई 11: हिंदी एकांकी की परंपरा	**185-195**
इकाई 12: प्रतिनिधि एकांकियाँ	**196-206**
इकाई 13: लघु उपन्यास परंपरा और प्रवृत्तियाँ	**207-222**
खंड 5: आलोचना और सैद्धांतिक अध्ययन	**223-249**
इकाई 14: कथा साहित्य पर आलोचकों के विचार	**223-234**
इकाई 15: आधुनिक कथा साहित्य और आलोचना प्रवृत्तियाँ	**235-249**

COURSE DEVELOPMENT EXPERT COMMITTEE

1. Prof. (Dr.) K.P. Yadav Vice Chancellor, MATS University, Raipur, Chhattisgarh.
2. Prof. (Dr.) Reshma Ansari, HOD, School of Arts and Humanities, Hindi Department, MATS University, Raipur, Chhattisgarh.
3. Dr. Sudhir Sharma, Subject Expert, HOD Hindi Department, Kalyan College, Bhilai, Chhattisgarh.
4. Dr. Rajesh Kumar Dubey, Subject Expert, principal Shahid Rajeev Pandey Govt. College, Bhatagaon, Raipur Chhattisgarh.

COURSE COORDINATOR

Prof. (Dr.) Reshma Ansari, HOD, School of Arts and Humanities, Hindi Department, MATS University, Raipur, Chhattisgarh.

COURSE /BLOCK PREPARATION

Dr. Reshma Ansari

HOD, School of Arts and Humanities, Hindi Department, MATS University, Raipur, Chhattisgarh.

ISBN NO.- 978-93-47661-80-8
2025

@MATS Centre for Distance and Online Education, MATS University, Village- Gullu, Aarang, Raipur-(Chhattisgarh)

All rights reserved. No part of this work may be reproduced, transmitted or utilized or stored in any form by mimeograph or any other means without permission in writing from MATS University, Village- Gullu, Aarang, Raipur-(Chhattisgarh)

Printed &published on behalf of MATS University, Village-Gullu, Aarang, Raipur by Mr. Meghanadhudu Katabathuni, Facilities & Operations, MATS University, Raipur (C.G.)

Disclaimer: The publisher of this printing material is not responsible for any error or dispute from the contents of this course material, this completely depends on the AUTHOR'S MANUSCRIPT.
Printed at: The Digital Press, Krishna Complex, Raipur-492001(Chhattisgarh)

Acknowledgement

The material (pictures and passages) we have used is purely for educational purposes. Every effort has been made to trace the copyright holders of material reproduced in this book. Should any infringement have occurred, the publishers and editors apologize and will be pleased to make the necessary corrections in future editions of thisbook.

खंड 1 आधुनिक हिंदी कथा साहित्य की रूपरेखा

इकाई 1 आधुनिक हिंदी कथा साहित्य की उत्पत्ति और विकास

संरचना

1.1 परिचय
1.2 उद्देश्य
1.3 आधुनिक हिंदी कथा साहित्य की उत्पत्ति
1.4 विकासक्रम
1.5 कथा साहित्य की परंपरा
1.6 सारांश
1.7 इकाई अंत अभ्यास
1.8 संदर्भ एवं अनुसंशित पठन सामाग्री

1.1 परिचय

आधुनिक हिंदी कथा साहित्य 19वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में सामाजिक-सांस्कृतिक पुनर्जागरण के फलस्वरूप उत्पन्न हुआ। पाश्चात्य विधागत संरचना और भारतीय कथा परंपरा के संश्लेषण से इस विधा का विकास हुआ। खड़ी बोली हिंदी गद्य के विकास में कथा साहित्य की निर्णायक भूमिका रही है।

1.2 उद्देश्य

- आधुनिक कथा साहित्य की उत्पत्ति की पृष्ठभूमि और आवश्यकता को समझना तथा सामाजिक विमर्श की माँग जानना।
- पाश्चात्य प्रभाव और भारतीय परंपरा के संश्लेषण को पहचानना एवं विधागत संरचना का विश्लेषण करना।
- भारतेंदु युग से समकालीन युग तक कथा साहित्य के विकासक्रम और प्रमुख प्रवृत्तियों का अध्ययन करना।

1.3 आधुनिक हिंदी कथा साहित्य की उत्पत्ति

1. आधुनिक कथा साहित्य की उत्पत्ति: पृष्ठभूमि और आवश्यकता

हिंदी कथा साहित्य (जिसमें मुख्य रूप से उपन्यास और कहानी शामिल हैं) का उदय आधुनिक हिंदी गद्य के साथ हुआ। यह विधा 19वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में सामाजिक और सांस्कृतिक पुनर्जागरण की माँग के रूप में सामने आई। जहाँ कविता भारतीय साहित्य की प्राचीनतम विधा है, वहीं कथा साहित्य (विशेषकर अपने वर्तमान स्वरूप

में) एक आधुनिक विधा है, जिसका जन्म अनेक आंतरिक और बाह्य प्रभावों के संगम से हुआ।

आधुनिकता की चुनौतियाँ और कथा की आवश्यकता

1. **सामाजिक विमर्श की माँग:** 19वीं शताब्दी का भारत रूढ़िवादिता, अंधविश्वास, जातिवाद और सामंती शोषण से त्रस्त था। भारतेंदु हरिश्चंद्र और उनके समकालीन रचनाकारों ने महसूस किया कि केवल उपदेश या निबंध से समाज सुधार संभव नहीं है। समाज के यथार्थ को चित्रित करने और जनमानस को भावनात्मक स्तर पर बदलने के लिए एक ऐसी विधा की आवश्यकता थी जो जीवन के निकट हो। उपन्यास और कहानी ने इस चुनौती को स्वीकार किया, जिसमें जीवन के पात्रों को चित्रित करके उनके सुख-दुख के माध्यम से सामाजिक बुराइयों पर प्रहार किया जा सके।
2. **मध्यम वर्ग का उदय:** ब्रिटिश शासन, पाश्चात्य शिक्षा और प्रिंटिंग प्रेस के आगमन से एक नया, शिक्षित मध्यम वर्ग सामने आया। इस वर्ग को अपने जीवन, संघर्ष और आदर्शों को व्यक्त करने के लिए साहित्य चाहिए था। कथा साहित्य ने इस वर्ग की आकांक्षाओं, नैतिक दुविधाओं और पारिवारिक समस्याओं को अपना केंद्रीय विषय बनाया।
3. **मनोरंजन और शिक्षा का समन्वय:** कथा साहित्य ने मनोरंजन के माध्यम से शिक्षा और सुधार का कार्य किया। शुरुआती उपन्यास (जैसे परीक्षा गुरु) नैतिक शिक्षा देते थे, जबकि जासूसी/तिलिस्मी उपन्यास (जैसे चंद्रकांता) मनोरंजन के साथ-साथ पाठकों को हिंदी पढ़ने के लिए प्रेरित करते थे।

कथा साहित्य के आंतरिक प्रेरक तत्व

आधुनिक कथा साहित्य की उत्पत्ति का एक महत्त्वपूर्ण आंतरिक कारण खड़ी बोली हिंदी के गद्य को मानक रूप प्रदान करना था। कथा विधा ने यह सिद्ध किया कि खड़ी बोली केवल ज्ञान-विज्ञान या निबंधों की ही नहीं, बल्कि गहन भावनात्मक अभिव्यक्ति और सामाजिक यथार्थ चित्रण की भी सक्षम भाषा है। इसने हिंदी गद्य को सरलता, प्रवाह और प्रभाव प्रदान किया।

2. पाश्चात्य प्रभाव और भारतीय परंपरा: संश्लेषण का सिद्धांत

आधुनिक कथा साहित्य की उत्पत्ति एक **संश्लेषण** का परिणाम है, जहाँ पश्चिमी साहित्य की **विधागत संरचना** और भारतीय कथा की **मूल आत्मा** का मिलन हुआ।

पाश्चात्य विधागत प्रभाव

आधुनिक कथा साहित्य (विशेषकर उपन्यास) का स्वरूप पूरी तरह से पाश्चात्य साहित्य की देन है। भारत में उपन्यास विधा का आगमन अंग्रेजी उपन्यास के माध्यम से हुआ, जो 18वीं और 19वीं शताब्दी में यूरोप में लोकप्रिय हो चुके थे।

1. उपन्यास (Novel): यूरोपीय उपन्यासकारों (जैसे डिकेंस, जेन ऑस्टेन, वाल्टर स्कॉट) ने जीवन के यथार्थ को केंद्र में रखा। हिंदी उपन्यास ने इन्हीं से सुव्यवस्थित कथानक, चरित्र-चित्रण की गहनता, सामाजिक यथार्थवाद, और एक निश्चित उद्देश्य के साथ कहानी कहने की कला सीखी। भारतीय कथाओं में कथानक भले ही था, लेकिन चरित्रों में मनोवैज्ञानिक गहराई और जीवन के साधारण विवरण का अभाव था, जो उपन्यास ने प्रदान किया।
2. कहानी (Short Story): कहानी विधा का विकास एडगर एलन पो और ओ. हेनरी जैसे पाश्चात्य लेखकों से प्रेरित है। हिंदी कहानी ने इन लेखकों से चरम उत्कर्ष (Climax), एक घटना पर केंद्रित कथानक, और प्रभाव की एकता (Unity of Effect) का सिद्धांत ग्रहण किया।

भारतीय कथा परंपरा का मूल

पाश्चात्य संरचना को अपनाने के बावजूद, हिंदी कथा ने अपनी भारतीय आत्मा को नहीं छोड़ा।

1. किस्सागोई की परंपरा: भारतीय कथाएँ सदियों से दास्तान (जैसे *दास्तान-ए-अमीर हमज़ा*), आख्यान (जैसे *महाभारत* की कथाएँ), कथा-सरित्सागर, पंचतंत्र और हितोपदेश की परंपरा से निकली हैं। इन कथाओं में अद्भुतता, उपदेशात्मकता, और रोचकता की प्रधानता थी। शुरुआती हिंदी कथाएँ (जैसे भारतेंदु युग की कथाएँ) इसी दास्तान शैली के अधिक निकट थीं।

2. आदर्शोन्मुखता: भारतीय परंपरा में कला का उद्देश्य केवल यथार्थ दिखाना नहीं, बल्कि धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के माध्यम से आदर्श की स्थापना करना था। प्रेमचंद ने इसी भारतीय आदर्शोन्मुखता और पाश्चात्य यथार्थवाद का समन्वय करके 'आदर्शोन्मुख यथार्थवाद' की नींव रखी।

इस प्रकार, आधुनिक कथा साहित्य पश्चिमी विधा (उपन्यास की संरचना) और भारतीय भाव (उपदेश, आदर्श और नैतिकता) के समन्वय से विकसित हुआ।

3. हिंदी गद्य के विकास में कथा साहित्य का योगदान: भाषा, शैली और विधा निर्माण

हिंदी कथा साहित्य का योगदान केवल साहित्यिक मनोरंजन तक सीमित नहीं है, बल्कि इसने खड़ी बोली हिंदी को एक मानक, सामर्थ्यवान और जनप्रिय भाषा बनाने में निर्णायक भूमिका निभाई।

खड़ी बोली को मानक रूप देना

भारतेंदु युग तक खड़ी बोली गद्य में एकरूपता नहीं थी। भाषा अभी भी संस्कृतनिष्ठता (राजा शिवप्रसाद 'सितारेहिंद') और उर्दू-फ़ारसी प्रभाव (राजा लक्ष्मण सिंह) के द्वंद्व में फँसी थी।

- कथा साहित्य का एकीकरण: कथा साहित्य ने बोलचाल की सरल, सहज खड़ी बोली को अपनाया। प्रेमचंद ने इस भाषा को ग्रामीण जनजीवन की शब्दावली से समृद्ध किया, जिससे यह भाषा केवल पढ़े-लिखे लोगों की नहीं, बल्कि आम जनता की भाषा बन गई। इस सरलीकरण और सामंजस्य ने खड़ी बोली को द्विवेदी युग में आकर मानक रूप प्राप्त करने में सहायता की।
- मुहावरों और लोकोक्तियों का समावेश: कथा साहित्य ने मुहावरों और लोकोक्तियों का प्रयोग करके भाषा को सजीव और भावपूर्ण बनाया, जिससे गद्य में प्रवाह और ओज आया।

विधाओं का परिष्कार और पहचान

कथा साहित्य के भीतर उपन्यास और कहानी जैसी विधाओं ने विकसित होकर हिंदी गद्य को **विविधता** प्रदान की।

1. उपन्यास: उपन्यास ने हिंदी गद्य को विस्तृत विवरण, जटिल चरित्र-चित्रण, और दीर्घकालिक कथानक को संभालने की शक्ति दी। इसने सिद्ध किया कि हिंदी गद्य जीवन की जटिलता को व्यक्त करने में सक्षम है।
2. कहानी: कहानी ने हिंदी गद्य को संक्षिप्तता, प्रभाव की एकता, और चरम उत्कर्ष जैसी आधुनिक कलात्मक विशेषताएँ दीं। प्रेमचंद ने कहानी को जीवन के एक अंश पर केंद्रित करके उसे कलात्मक ऊँचाई प्रदान की।

सामाजिक संवाद का माध्यम

कथा साहित्य ने गद्य को केवल ज्ञान या सूचना का माध्यम न रखकर संवाद और सम्प्रेषण का माध्यम बनाया।

- यथार्थ चित्रण: यथार्थवादी कथाओं ने गद्य को तर्क और वैज्ञानिकता की कसौटी पर परखा। लेखक ने कथा-वाचक के रूप में समाज से सीधा संवाद स्थापित किया।
- मनोवैज्ञानिक गहराई: प्रेमचंदोत्तर कथाकारों ने गद्य को मनुष्य के आंतरिक जगत, अवचेतन और मनोवैज्ञानिक द्वंद्वों को व्यक्त करने की क्षमता दी, जिससे हिंदी गद्य की अभिव्यक्ति क्षमता का अभूतपूर्व विस्तार हुआ।

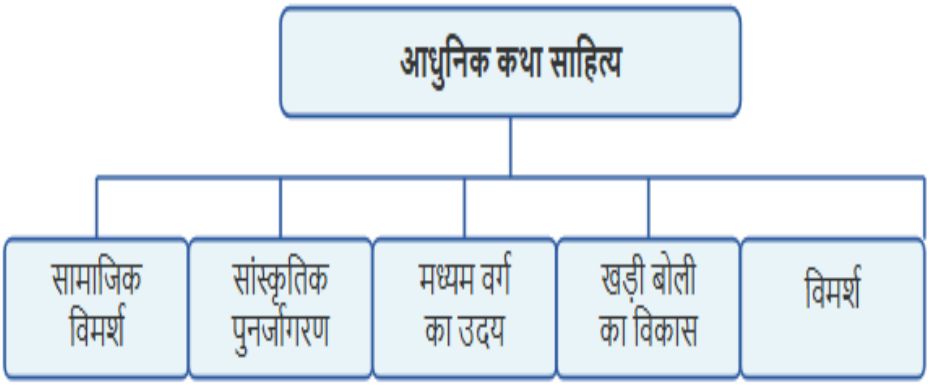

चित्र 1.1: आधुनिक कथा साहित्य की उत्पत्ति और विकास

1.4 विकासक्रम:

आधुनिक हिंदी कथा साहित्य का विकासक्रम **भारतेंदु युग** से प्रारंभ होता है, जिसे हिंदी गद्य के शैशव काल के रूप में जाना जाता है। इस युग में कथा विधा अपना स्वरूप ग्रहण कर रही थी।

समय और प्रवृत्ति

यह युग लगभग 1850 से 1900 ई. तक विस्तृत है। इस काल में कथा साहित्य का मुख्य उद्देश्य जनता को पढ़ने के लिए प्रेरित करना, सरल मनोरंजन और नैतिक उपदेश देना था।

1. कथा का स्वरूप: इस काल की कहानियाँ और उपन्यास आज के आधुनिक मानकों पर खरे नहीं उतरते। वे दास्तान शैली, अद्‌भुत घटनाएँ और अप्रत्याशित संयोगों से भरी थीं।
2. उपन्यास का जन्म: हिंदी का प्रथम मौलिक उपन्यास कौन है, इस पर विवाद है, किंतु श्रीनिवास दास कृत 'परीक्षा गुरु' (1882) को प्रायः प्रथम माना जाता है। यह उपन्यास अंग्रेजी ढंग के 'उपन्यास' की शर्तों को पूरा करता है। इसका उद्देश्य **सुधार** और **नीति** का प्रचार करना था।

प्रमुख धाराएँ और रचनाकार

भारतेंदु युग में कथा साहित्य की तीन प्रमुख धाराएँ थीं:

1. सुधारवादी/नैतिक उपन्यास:

लाला श्रीनिवास दास का 'परीक्षा गुरु': इसमें अंग्रेजी शिक्षा के दुष्प्रभावों और मित्रता के महत्त्व को दर्शाया गया।

बालकृष्ण भट्ट का 'नूतन ब्रह्मचारी' और 'सौ अजान और एक सुजान': इनमें आदर्शवादी नैतिकता पर बल दिया गया।

2. तिलिस्मी और ऐय्यारी उपन्यास:

देवकीनंदन खत्री का 'चंद्रकांता' (1888): यह अपने अद्भुत कथानक और जादुई दुनिया के कारण अत्यंत लोकप्रिय हुआ। इसकी लोकप्रियता इतनी अधिक थी कि हजारों गैर-हिंदीभाषी लोगों ने इसे पढ़ने के लिए हिंदी सीखी। इन उपन्यासों का उद्देश्य विशुद्ध रूप से मनोरंजन था, न कि यथार्थ का चित्रण।

3. **जासूसी उपन्यास:**

   गोपालराम गहमरी का 'सर कटी लाश' आदि जासूसी उपन्यास। ये पाश्चात्य डिटेक्टिव फिक्शन से प्रेरित थे।

कथा साहित्य का शैशव काल

भारतेंदु युग में कहानी विधा अभी तक पूर्ण रूप से विकसित नहीं हुई थी। छोटी कथाएँ मिलती हैं, लेकिन वे आधुनिक **कहानी के मानदंडों** (चरम उत्कर्ष, प्रभाव की एकता) को पूरा नहीं करतीं। इस युग की कथाएँ **विधा की अस्थिरता** और **उपदेशात्मकता** से ग्रसित थीं, लेकिन इन्होंने **खड़ी बोली गद्य** को लोकप्रिय बनाने का महत्त्वपूर्ण कार्य किया।

5. द्विवेदी युग और प्रेमचंद युग: उत्कर्ष और सामाजिक यथार्थवाद

हिंदी कथा साहित्य के विकासक्रम में **द्विवेदी युग (1900-1918)** एक संक्रमण काल था, जबकि **प्रेमचंद युग (1918-1936)** कथा साहित्य का **स्वर्ण युग** साबित हुआ, जहाँ विधा परिपक्व हुई।

द्विवेदी युग: शुद्धि और उद्देश्यवाद

महावीर प्रसाद द्विवेदी के नेतृत्व में इस युग में भाषा की शुद्धि और परिमार्जन पर जोर दिया गया।

1. भाषागत सुधार: द्विवेदी जी ने कथाकारों को सरल, व्याकरण सम्मत खड़ी बोली का प्रयोग करने के लिए प्रेरित किया। इससे कथा साहित्य की भाषा में स्थिरता आई।

उद्देश्य की प्रधानता: इस युग में मनोरंजन से अधिक सामाजिक सुधार और राष्ट्रीय चेतना कथा का मुख्य उद्देश्य बन गया। कथाओं में नैतिकता और उपदेश की मात्रा बढ़ी।

कहानी का जन्म: सरस्वती पत्रिका (1900) के प्रकाशन के साथ कहानी विधा ने आकार लेना शुरू किया।

- 'इंदुमती' (1900) को पहली कहानी माना जाता है (किशोरीलाल गोस्वामी द्वारा लिखित, हालाँकि कुछ आलोचक माधवराव सप्रे की 'एक टोकरी भर मिट्टी' (1901) को अधिक मौलिक मानते हैं)।
- प्रेमचंद ने इसी युग में उर्दू से हिंदी में लिखना शुरू किया और 'सोजे वतन' (1908) जैसी रचनाएँ दीं।

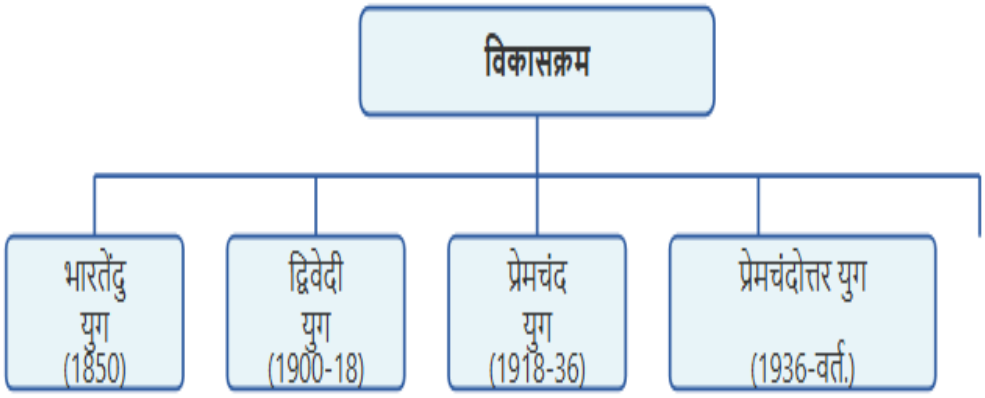

चित्र 1.2: विकासक्रम

प्रेमचंद युग: कथा साहित्य का उत्कर्ष

मुंशी प्रेमचंद (1880-1936) हिंदी कथा साहित्य के युग प्रवर्तक हैं। उनके नाम पर ही इस काल का नामकरण हुआ।

1. आदर्शोन्मुख यथार्थवाद: प्रेमचंद ने यथार्थ (किसानों, मजदूरों, समाज की गरीबी) का चित्रण तो किया, लेकिन कहानी के अंत में आदर्श (हृदय परिवर्तन) की स्थापना पर बल दिया। उनका साहित्य भारतीय जीवन के संघर्षों का दस्तावेज बन गया।

2. ग्रामीण जीवन का चित्रण: प्रेमचंद ने पहली बार हिंदी कथा साहित्य को शहरों के तिलिस्म से बाहर निकालकर भारतीय गाँवों की मिट्टी और पसीने से जोड़ा। उनके पात्र (होरी, धनिया, गोदान) भारतीय कृषि संस्कृति के प्रतीक बन गए।
3. उपन्यास और कहानी का परिष्कार: 'गोदान', 'गबन', 'कर्मभूमि', 'रंगभूमि' जैसे उपन्यासों ने उपन्यास को भारतीय समाज और राजनीति का महाकाव्य बना दिया। 'कफन', 'पूस की रात', 'पञ्च परमेश्वर' जैसी कहानियों ने कहानी विधा को कलात्मक ऊँचाई और गहन सामाजिक संवेदना प्रदान की।

प्रेमचंद युग ने कथा साहित्य को केवल मनोरंजन से उठाकर राष्ट्रीय विमर्श और सामाजिक क्रांति का सशक्त माध्यम बना दिया।

6. छायावादोत्तर युग: मनोविज्ञान और वैयक्तिकता का उदय

प्रेमचंद की मृत्यु (1936) के साथ ही कथा साहित्य की धारा ने एक महत्त्वपूर्ण मोड़ लिया, जिसे छायावादोत्तर युग या प्रेमचंदोत्तर युग कहा जाता है। इस काल में सामाजिकता के स्थान पर मनोविज्ञान और वैयक्तिकता का प्रवेश हुआ।

प्रगतिवाद का प्रभाव

प्रेमचंद के अंतिम काल से ही प्रगतिशील आंदोलन (1936) शुरू हो चुका था।

- समाजवाद और वर्ग संघर्ष: यशपाल और रांगेय राघव जैसे लेखकों ने मार्क्सवादी विचारधारा से प्रेरित होकर कथाएँ लिखीं, जिनमें पूँजीवाद का विरोध, वर्ग संघर्ष और शोषितों के जीवन पर बल दिया गया। यशपाल का **'झूठा सच'** विभाजन की त्रासदी का महान उपन्यास है।

मनोविज्ञान और अस्तित्ववाद

कथा साहित्य में यथार्थवाद की सीमाएँ टूटीं और मनुष्य के आंतरिक जगत पर ध्यान केंद्रित किया गया।

1. मनोविश्लेषणवाद: जैनेंद्र कुमार, इलाचंद्र जोशी और अज्ञेय (सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन) ने फ्रायड और एडलर के मनोविज्ञान से प्रेरित होकर कथाएँ लिखीं।

- जैनेंद्र ने स्त्री-पुरुष संबंधों की जटिलताओं और व्यक्तिगत मन के द्वंद्वों को केंद्र में रखा (त्यागपत्र, सुनीता)।
- अज्ञेय ने अस्तित्ववाद, अकेलेपन और बौद्धिक चेतनता पर जोर दिया (शेखर: एक जीवनी)।

2. वैयक्तिकता: यह कथा सामाजिक समस्याओं के स्थान पर व्यक्ति के अकेलेपन, अस्तित्व के संकट और व्यक्तिगत स्वतंत्रता पर केंद्रित हो गई।

'नई कहानी' आंदोलन (लगभग 1950-1960)

इस दौर में 'नई कहानी' आंदोलन ने कथा साहित्य को एक नया आयाम दिया।

1. शहरी मध्यवर्ग का यथार्थ: नई कहानी ने शहरी मध्यवर्गीय जीवन की टूटन, अजनबीपन, दांपत्य जीवन के तनाव और काम-संबंधों की जटिलताओं का चित्रण किया।
2. त्रयी का उदय: मोहन राकेश, कमलेश्वर और राजेंद्र यादव को नई कहानी की त्रयी माना जाता है।
   - मोहन राकेश की कहानियाँ (मिस पाल, जानवर और जानवर) शून्य और अकेलेपन को दर्शाती हैं।
   - कमलेश्वर की कहानियाँ (राजा निरबंसिया) खोखलेपन और टूटे हुए संबंधों को दर्शाती हैं।
3. रूपगत परिवर्तन: कहानी ने चरम उत्कर्ष को छोड़कर 'जीवन-खंड' या 'क्षण' के चित्रण पर ध्यान केंद्रित किया, जहाँ कहानी का अंत अनिवार्य नहीं था, बल्कि वह जीवन की जटिलता को खुला छोड़ देती थी।

7. आधुनिक काल: समकालीन कथा साहित्य, विमर्श और उत्तर-आधुनिकता

सन् 1960 के बाद से लेकर वर्तमान तक का कालखंड समकालीन कथा साहित्य कहलाता है। यह युग विकेंद्रीकरण, विमर्श और नए कथा-शिल्प का साक्षी रहा है।

विमर्श का उदय (Discourse)

प्रेमचंद युग में केवल किसान ही मुख्य शोषित वर्ग था, जबकि आधुनिक कथा ने शक्ति संतुलन और अधिकारों के आधार पर नए विमर्शों को केंद्र में रखा।

1. स्त्री विमर्श: कृष्णा सोबती, मन्नू भंडारी, उषा प्रियंवदा, मृदुला गर्ग और चित्रा मुद्गल जैसे लेखकों ने कथा के केंद्र में नारी की अस्मिता, स्वतंत्रता और पितृसत्तात्मकता के विरुद्ध संघर्ष को स्थापित किया। इसने महिला चरित्रों को केवल भोग्या या आदर्श देवी की जगह स्वयं निर्णय लेने वाली मनुष्य के रूप में चित्रित किया।
2. दलित विमर्श: ओमप्रकाश वाल्मीकि (जूठन), मोहनदास नैमिशराय और जयप्रकाश कर्दम जैसे लेखकों ने दलित जीवन के वास्तविक, कठोर अनुभवों को कथा साहित्य का हिस्सा बनाया, जिसे पहले साहित्य में स्थान नहीं मिला था।
3. आदिवासी और क्षेत्रीय विमर्श: कथाकारों ने क्षेत्रीय बोलियों, संस्कृतियों और आदिवासी जीवन के संघर्षों का चित्रण किया, जिससे कथा साहित्य का मानचित्र और विस्तृत हुआ।

उत्तर-आधुनिक शिल्प और कथा का विघटन

इस युग में कथा के पारंपरिक ढाँचे को तोड़ा गया और उत्तर-आधुनिक (Postmodern) प्रवृत्तियाँ हावी हुईं।

1. कथा का विघटन: कथा की शुरुआत और अंत की अनिवार्यता समाप्त हुई। निर्मल वर्मा की कहानियाँ (परिंदे) एकांत, समय की शिथिलता और अजनबीपन के सूक्ष्म अनुभवों पर केंद्रित रहीं।
2. फैंटेसी और मिथक का पुनर्पाठ: अमरकांत और भीष्म साहनी जैसे लेखकों ने अपने ढंग से यथार्थ का चित्रण किया, जबकि कुछ लेखकों ने जादुई यथार्थवाद (Magical Realism) और फैंटेसी का प्रयोग किया।
3. बहु-स्तरीयता: उपन्यास और कहानी में अब एक ही केंद्रीय कथानक के स्थान पर बहु-स्तरीय कथानक, अनेकता में एकता और टूटे हुए अनुभवों का चित्रण होने लगा।

समकालीन कथा साहित्य आज अत्यंत लोकतांत्रिक है, जहाँ विभिन्न विमर्श और शिल्प एक साथ सक्रिय हैं, जो भारतीय समाज की जटिल विविधता को दर्शाते हैं।

1.5 कथा साहित्य की परंपरा

आधुनिक हिंदी कथा साहित्य (उपन्यास और कहानी) अपने स्वरूप में भले ही पाश्चात्य हो, लेकिन इसकी आत्मा और मूल स्रोत भारतीय कथा परंपरा से ही जुड़े हुए हैं। यह यात्रा अद्भुतता से यथार्थ की ओर, और समष्टि से व्यक्ति की ओर की यात्रा है।

भारतीय कथा के आधार स्तंभ

आधुनिक कथा के पीछे भारतीय कथा परंपरा के तीन महत्त्वपूर्ण आधार स्तंभ हैं:

1. उपदेशात्मक कथाएँ: पंचतंत्र और हितोपदेश की कथाएँ जिनका उद्देश्य मनोरंजन के माध्यम से नीति और व्यवहारिक ज्ञान देना था।
2. आख्यान और महाकाव्य: वेद, उपनिषद, पुराण और महाभारत-रामायण की कथाएँ जिनमें जीवन के समग्र दर्शन, कर्म और धर्म का विस्तार से वर्णन है।
3. दास्तान और किस्सागोई: बैताल पचीसी, सिंहासन बत्तीसी, और उर्दू-फ़ारसी की दास्तान-ए-अमीर हमज़ा जैसी कहानियाँ, जो मौखिक परंपरा से आगे बढ़ीं और जिनमें कल्पना, तिलिस्म और अद्भुत संयोगों की प्रधानता थी।

निरंतरता के तत्व

आधुनिक कथा ने भारतीय परंपरा से निम्नलिखित तत्वों को ग्रहण किया और उन्हें परिष्कृत किया:

- कथा का महत्त्व: दास्तान और आख्यान की तरह, आधुनिक कथा में भी कथावस्तु (Plot) और कहानी कहने की ललक बनी रही, लेकिन अब यह लक्ष्य-केंद्रित (Purpose-driven) हो गई।
- आदर्शवाद: भारतीय कथा का मूल उद्देश्य हमेशा नैतिकता की स्थापना रहा है। प्रेमचंद का आदर्शोन्मुख यथार्थवाद इसी पुरानी परंपरा का आधुनिक रूप था, जहाँ बुराई को अंत में हारना होता है।

- उपमान और प्रतीक: भारतीय संस्कृति से जुड़े प्रतीक और उपमान (जैसे राम, सीता, गंगा, गाय) आज भी हिंदी कथा में सांस्कृतिक अर्थ संप्रेषित करने के लिए प्रयोग किए जाते हैं।

9. विच्छेद के तत्व: दास्तान से उपन्यास की यात्रा

आधुनिक उपन्यास और कहानी ने भारतीय कथा परंपरा से केवल निरंतरता ही नहीं रखी, बल्कि कई महत्त्वपूर्ण तत्त्वों से विच्छेद भी किया, जिसने उसे एक आधुनिक विधा बनाया।

रूपगत विच्छेद

1. कथानक की संरचना: दास्तान में कथानक ढीला-ढाला, अनेक उप-कथाओं से युक्त और असंभाव्य होता था। उपन्यास ने इसे त्यागकर सुगठित, तर्कसंगत और जीवन के नियमों पर आधारित कथानक को अपनाया।
2. समय की अवधारणा: दास्तान में समय की कोई निश्चित सीमा नहीं थी (कई वर्षों तक चलती थी)। आधुनिक कथा में समय को निश्चित और सीमित किया गया (कहानी तो एक घटना या क्षण पर केंद्रित होती है)।

वैचारिक विच्छेद

1. अद्‌भुतता का त्याग: दास्तान तिलिस्म, जादू और देवताओं/भूतों के चमत्कारों पर आधारित थी। आधुनिक कथा ने इसे त्यागकर मानव जीवन के यथार्थ और तर्कसंगत कार्य-कारण संबंध को अपनाया। देवकीनंदन खत्री के बाद हिंदी कथा धीरे-धीरे यथार्थवाद की ओर मुड़ गई।
2. चरित्र चित्रण की गहनता: दास्तान के चरित्र सपाट और टाइप (Type) होते थे (जैसे आदर्श राजा, दुष्ट मंत्री)। उपन्यास ने चरित्रों को बहुआयामी, मनोवैज्ञानिक रूप से जटिल, और वास्तविक मानव के रूप में प्रस्तुत किया, जिनमें अच्छाई और बुराई दोनों थीं।

आधुनिक कथा साहित्य

3. व्यक्ति का उदय: पारंपरिक कथाएँ राजा, ऋषि या देवी-देवताओं पर केंद्रित थीं। आधुनिक कथा साहित्य ने व्यक्ति को केंद्र में रखा—चाहे वह किसान हो (प्रेमचंद), शहरी मध्यवर्गीय बाबू हो (नई कहानी), या संघर्ष करती नारी हो (समकालीन विमर्श)।

इस प्रकार, आधुनिक कथा दास्तान की किस्सागोई को अपनाती है, लेकिन उपन्यास की संरचना और यथार्थवादी दृष्टि के साथ, जिससे कथा को एक नई सामाजिक और कलात्मक जिम्मेदारी मिली।

10. कथा साहित्य के विकास के प्रमुख पड़ाव: विधा की परिणति

हिंदी कथा साहित्य का विकासक्रम केवल कालखंडों का विभाजन नहीं है, बल्कि यह **भारतीय समाज और चेतना** के विकास का प्रतिबिंब भी है। यह विकासक्रम निम्नलिखित चार प्रमुख पड़ावों में अपनी परिणति को प्राप्त करता है।

1. शैशव और प्रयोग (भारतेंदु युग)

- **मुख्य लक्ष्य:** मनोरंजन, नैतिकता, और खड़ी बोली को स्थापित करना।
- **प्रमुख विधाएँ:** दास्तान प्रभावित उपन्यास (परीक्षा गुरु, चंद्रकांता)।
- **कथा का स्वरूप:** अविश्वसनीय, उपदेशात्मक, ढीला-ढाला कथानक।

2. परिष्कार और उद्देश्य (द्विवेदी युग)

- **मुख्य लक्ष्य:** भाषा को मानक रूप देना, सामाजिक सुधार को उद्देश्य बनाना।
- **प्रमुख विधाएँ:** कहानी का जन्म (इंदुमती, एक टोकरी भर मिट्टी)।
- **कथा का स्वरूप:** संक्षिप्तता की ओर झुकाव, भाषा में अनुशासन।

3. स्वर्ण युग: यथार्थ का महाकाव्य (प्रेमचंद युग)

- **मुख्य लक्ष्य:** आदर्शोन्मुख यथार्थवाद की स्थापना, किसानों और राष्ट्रीय आंदोलन को केंद्र में लाना।
- **प्रमुख विधाएँ:** उपन्यास और कहानी का चरमोत्कर्ष (गोदान, कफन)।
- **कथा का स्वरूप:** गहन चरित्र-चित्रण, सामाजिक संघर्ष, जीवन की प्रामाणिकता।

1.6 सारांश

आधुनिक कथा साहित्य सामाजिक परिवर्तन की माँग से उत्पन्न हुआ। पाश्चात्य उपन्यास विधा और भारतीय कथा परंपरा के समन्वय से इसका विकास हुआ। भारतेंदु युग से प्रारंभ होकर प्रेमचंद युग में उत्कर्ष प्राप्त करते हुए यह विधा समकालीन विमर्शों तक विस्तृत हुई, जिसने हिंदी गद्य को समृद्ध किया।

1.7 इकाई अंत अभ्यास

1. आधुनिक कथा साहित्य की उत्पत्ति में पाश्चात्य प्रभाव और भारतीय परंपरा के योगदान की विवेचना कीजिए।
2. प्रेमचंद युग को कथा साहित्य का स्वर्ण युग क्यों कहा जाता है? विस्तार से समझाइए।
3. नई कहानी आंदोलन की प्रमुख विशेषताओं और समकालीन विमर्शों का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत कीजिए।

1.8 संदर्भ एवं अनुसंशित पठन सामाग्री

1. डॉ. रामविलास शर्मा, *हिन्दी कथा साहित्य का इतिहास,* लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद 1953, 1954
2. डॉ. रामचन्द्र शुक्ल, *हिन्दी साहित्य का संक्षिप्त इतिहास,* नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी 1929
3. डॉ. नामवर सिंह, *आधुनिक हिन्दी कहानी का विकास,* राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली 1994।
4. डॉ. नन्ददुलारे वाजपेयी, *हिन्दी कथा साहित्य की प्रवृत्तियाँ,* लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद1940।
5. कमलेश्वर, *नयी कहानी और उसका युगबोध,* राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली 2020।
6. डॉ. शिवकुमार मिश्र, *प्रेमचन्द और आधुनिक हिन्दी कथा,* राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली 2013।
7. डॉ. गिरिराज किशोर, *हिन्दी कहानी का इतिहास और विकास,* भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली 1991।

अपनी प्रगति की जाँच करें

1. आधुनिक कथा साहित्य की उत्पत्ति किन कारणों से हुई? संक्षेप में लिखिए।

---

2 . हिंदी आधुनिक कथा साहित्य के विकास की प्रमुख विशेषताएँ बताइए।

इकाई 2 कथा साहित्य की प्रमुख प्रवृत्तियाँ

संरचना

2.1 परिचय
2.2 उद्देश्य
2.3 यथार्थवाद (Realism)
2.4 प्रगतिवाद
2.5 प्रयोगवाद
2.6 सारांश
2.7 इकाई अंत अभ्यास
2.8 संदर्भ एवं अनुसंशित पठन सामाग्री

2.1 परिचय

हिंदी कथा साहित्य में यथार्थवाद, प्रगतिवाद और प्रयोगवाद तीन प्रमुख साहित्यिक धाराएँ हैं। यथार्थवाद ने जीवन के यथार्थ चित्रण को केंद्र में रखा, प्रगतिवाद ने वर्ग संघर्ष और सामाजिक परिवर्तन पर बल दिया, जबकि प्रयोगवाद ने शिल्पगत नवीनता और वैयक्तिकता को प्राथमिकता दी।

2.2 उद्देश्य

- यथार्थवाद की अवधारणा और प्रेमचंद के आदर्शोन्मुख यथार्थवाद को समझना तथा इसके साहित्यिक महत्व का मूल्यांकन करना।
- प्रगतिवाद के वैचारिक आधार, वर्ग संघर्ष के चित्रण और यशपाल, नागर के योगदान को जानना।
- प्रयोगवाद की शैली, तकनीक और अज्ञेय के नेतृत्व में हुए शिल्पगत परिवर्तनों का अध्ययन करना।

2.3 यथार्थवाद (Realism)

यथार्थवाद (Realism) आधुनिक हिंदी साहित्य की वह मूलभूत साहित्यिक दृष्टि है जिसका केंद्रीय सरोकार जीवन को जैसा है, उसी रूप में चित्रित करने से है, न कि उसे जैसा होना चाहिए (आदर्शवाद) के रूप में।

कथा सम्राट प्रेमचंद का योगदान: यथार्थवाद के शिखर पुरुष और आदर्शोन्मुख यथार्थवाद

मुंशी प्रेमचंद हिंदी साहित्य में यथार्थवाद के शिखर पुरुष माने जाते हैं, जिनका योगदान इस धारा को जन-आंदोलन बनाने में अद्वितीय रहा। नैतिक आदर्श (आदर्शोन्मुख) की स्थापना के साथ करते

थे (जैसे 'पंच परमेश्वर')। यह तरीका इसलिए अपनाया गया ताकि तत्कालीन समाज परिवर्तन की दिशा में आशावान बना रहे और पाठक को नैराश्य से बचाया जा सके। हालांकि, अपने लेखन के अंतिम चरण में, विशेषकर 'गोदान' जैसी कालजयी रचनाओं में, उन्होंने शुद्ध यथार्थवाद को अपनाया। 'गोदान' में होरी किसान की त्रासद कहानी बिना किसी आदर्शवादी समाधान के समाप्त होती है, जो भारतीय किसान के शोषण की कठोरतम वास्तविकता को दर्शाती है। प्रेमचंद का यथार्थवाद केवल बाहरी चित्रण नहीं था, बल्कि वह मानव मनोविज्ञान, सामाजिक वर्ग भेद और ग्रामीण-शहरी जीवन के द्वंद्व की गहन पड़ताल करता था। उन्होंने अपने उपन्यासों और कहानियों में पूँजीवाद के उदय, सामंतवाद के अवशेषों, स्त्री की दुर्दशा और सामाजिक ऋण के जटिल जाल को अत्यंत प्रामाणिकता के साथ प्रस्तुत किया। उनका मानना था कि साहित्य राजनीति से आगे मशाल है, और इस मशाल ने हिंदी साहित्य के लिए यथार्थ के मार्ग को हमेशा के लिए रोशन कर दिया।

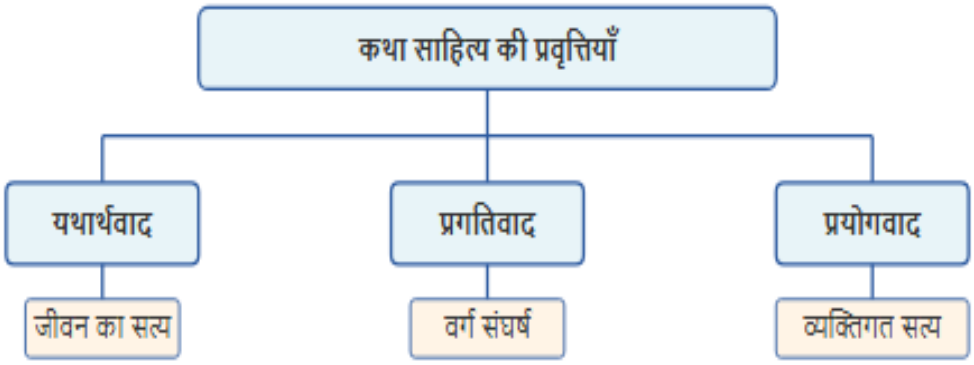

चित्र 1.3:कथा साहित्य की प्रमुख प्रवृत्तियाँ

2.4 प्रगतिवाद

प्रगतिवाद (Progressivism) हिंदी साहित्य की वह धारा है जो यथार्थवाद की भूमि पर खड़ी होकर सामाजिक परिवर्तन की खुली घोषणा करती है। इसका उदय मुख्य रूप से 1936 ईस्वी में लखनऊ में हुए 'प्रगतिशील लेखक संघ' के प्रथम अधिवेशन से माना जाता है, जिसकी अध्यक्षता स्वयं प्रेमचंद ने की थी। प्रगतिवाद का वैचारिक आधार कार्ल मार्क्स के द्वंद्वात्मक भौतिकवाद (Dialectical Materialism) और वर्ग संघर्ष (Class Struggle) के सिद्धांत पर आधारित है। यह धारा केवल यथार्थ का चित्रण नहीं

करती, बल्कि बुराई या शोषण को परिवर्तित करने के लिए साहित्य को एक हथियार मानती है। प्रगतिवादी कवियों और लेखकों ने पूँजीवादी शोषण, धार्मिक पाखंड और सामाजिक जड़ता पर सीधा प्रहार किया। उनका आह्वान था कि साहित्य को कला की सीमाओं से बाहर निकलकर जनता के दुख-दर्द में शामिल होना चाहिए। नागार्जुन, केदारनाथ अग्रवाल, त्रिलोचन जैसे कवियों ने किसान, मजदूर, और वंचित वर्ग के जीवन को अपनी कविता का केन्द्रीय विषय बनाया, उनकी पीड़ा को रोमांटिक भाषा के बजाय कठोर, सीधी और बोलचाल की भाषा में व्यक्त किया। प्रगतिवाद ने साहित्य में प्रगति की चेतना को अनिवार्य बना दिया और यह स्पष्ट कर दिया कि कला, कला के लिए नहीं, बल्कि कला, जीवन के लिए होनी चाहिए। इस प्रकार, प्रगतिवाद यथार्थवाद की सामाजिक जिम्मेदारी को क्रांतिकारी दिशा देने वाली एक शक्तिशाली वैचारिक धारा थी।

प्रगतिवादी कथा और काव्य में वर्ग संघर्ष: यशपाल और अमृतलाल नागर का विशिष्ट योगदान

प्रगतिवादी साहित्य का मूल मंत्र वर्ग संघर्ष (Class Conflict) रहा है, जिसका अर्थ है समाज में पूँजीपति (शोषक) और मजदूर/किसान (शोषित) वर्ग के बीच चल रहे अन्यायपूर्ण द्वंद्व का चित्रण करना। कथा साहित्य में यशपाल और अमृतलाल नागर ने इस वर्ग संघर्ष को अत्यंत प्रभावी ढंग से प्रस्तुत किया। यशपाल के उपन्यास, जैसे 'झूठा सच' (विभाजन पर केंद्रित, जिसमें आर्थिक और सामाजिक विस्थापन का यथार्थ है) और 'दादा कामरेड', सीधे तौर पर मार्क्सवादी दर्शन और क्रांतिकारी विचारों से प्रेरित थे। यशपाल ने बुद्धिजीवियों के पाखंड और निम्न वर्ग के संघर्ष को अपनी पैनी, चुटीली भाषा में उजागर किया। उन्होंने सामाजिक और राजनीतिक विसंगतियों को उनकी जड़ों से पकड़ने का प्रयास किया और अपने पात्रों के माध्यम से क्रांति की आवश्यकता पर जोर दिया। दूसरी ओर, अमृतलाल नागर ने अपने साहित्य में लोक जीवन और संस्कृति की गहराई में उतरकर सामाजिक-आर्थिक विषमताओं को चित्रित किया। नागर जी का यथार्थवाद अधिक संस्कृति-मूलक था। उनके प्रसिद्ध उपन्यास 'नाच्यौ बहुत गोपाल' में उन्होंने दलित और अछूत समुदायों के जीवन की मार्मिक और दारुण गाथा प्रस्तुत की। यह उपन्यास दिखाता है कि कैसे जातिगत रूढ़ियाँ और आर्थिक शोषण मिलकर एक वर्ग को सदियों से हाशिए पर रखते आए हैं। नागर जी

का दृष्टिकोण अधिक मानवीय और मनोवैज्ञानिक था, जो सामाजिक व्यवस्था की क्रूरता को उसकी मानवीय लागत के संदर्भ में प्रस्तुत करता था। इस प्रकार, प्रगतिवादी कथा और काव्य ने जनता की आवाज बनकर सामाजिक न्याय की माँग को साहित्य के केंद्र में स्थापित किया।

2.5 प्रयोगवाद

प्रयोगवाद (Experimentalism) का जन्म प्रगतिवाद की अति-सामाजिकता और रूढ़िवादी काव्यशिल्प के विरुद्ध एक प्रतिक्रिया के रूप में हुआ। प्रगतिवादी साहित्य पर यह आरोप लगा कि वह कलात्मकता को त्यागकर केवल राजनीतिक नारों का माध्यम बन गया है। 1943 ईस्वी में सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन 'अज्ञेय' के संपादन में प्रकाशित 'तार सप्तक' के साथ प्रयोगवाद की औपचारिक शुरुआत मानी जाती है। 'तार सप्तक' में सात कवियों (अज्ञेय, मुक्तिबोध, नेमिचंद्र जैन, भारत भूषण अग्रवाल, प्रभाकर माचवे, गिरिजा कुमार माथुर, रामविलास शर्मा) की रचनाओं को शामिल किया गया था, जिन्होंने घोषणा की कि वे 'राहों के अन्वेषी' हैं—यानी, वे काव्य में नए मार्ग, नई शैली और नए विषय-वस्तु की तलाश कर रहे हैं। प्रयोगवाद ने व्यक्तिगत सत्य (Individual Truth) और मानव के आंतरिक मनोविज्ञान पर ध्यान केंद्रित किया। जहाँ प्रगतिवाद समाज को देखता था, वहीं प्रयोगवाद ने व्यक्ति के एकाकीपन, विसंगति (Absurdity), और अस्तित्ववादी चिंताओं को प्राथमिकता दी। यह धारा पाश्चात्य साहित्य की आधुनिक प्रवृत्तियों (जैसे अस्तित्ववाद, प्रतीकवाद, और बिम्बवाद) से प्रभावित थी। 'तार सप्तक' के माध्यम से प्रयोगवादियों ने काव्य भाषा को अत्यधिक परिष्कृत, बौद्धिक और नवीन बिम्बों से युक्त बनाया। उन्होंने रूढ़ि छंदों को त्यागकर मुक्त छंद (Free Verse) और नवीन प्रतीक योजना को अपनाया। इस आंदोलन ने हिंदी साहित्य को एक नई दिशा दी, जहाँ सामाजिकता के साथ-साथ मानव की आत्मिक और मनोवैज्ञानिक गहराई भी साहित्यिक चिंतन का विषय बन गई।

प्रयोगवाद की नई शैली और तकनीक: अज्ञेय का नेतृत्व और शिल्पगत नवीनता

प्रयोगवाद का सबसे महत्वपूर्ण योगदान शिल्पगत नवीनता (Stylistic Innovation) और नई तकनीक में है, जिसका नेतृत्व सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन 'अज्ञेय' ने किया। अज्ञेय का मानना था कि अनुभूति (Experience) इतनी जटिल और व्यक्तिगत

होती है कि उसे व्यक्त करने के लिए पुरानी, घिसी-पिटी भाषा पर्याप्त नहीं है। उन्होंने उपमानों (Similes) और प्रतीकों (Symbols) में क्रांतिकारी बदलाव किए। अब कविता में 'चाँद' प्रेम का नहीं, बल्कि एकांत या टूटन का प्रतीक हो सकता था; 'सूर्य' ज्ञान का नहीं, बल्कि तीव्र, असहनीय सत्य का। प्रयोगवादियों ने दैनिक जीवन की वस्तुओं को उपमान बनाया, जिससे कविता में एक असाधारण नवीनता आई (जैसे 'टूटा हुआ तारा', 'प्लास्टिक का फूल', 'शहर की सूखी सड़क')। उन्होंने मुक्त छंद (Free Verse) को कविता का मुख्य आधार बनाया, जिससे काव्य की लय बोलचाल की भाषा के करीब आ गई और अभिव्यक्ति की स्वाभाविकता बढ़ गई। कविता में अत्यधिक बौद्धिकता और चिंतन की गहराई आई, जो पाठक को केवल भावनात्मक जुड़ाव के बजाय मानसिक भागीदारी के लिए प्रेरित करती थी। अज्ञेय ने मानव मनोविज्ञान, आधुनिक सभ्यता की विसंगति, और 'मैं' (Ego) की केंद्रीयता को अपनी कविताओं का विषय बनाया। उनकी शैली में संवाद की कमी थी, क्योंकि यह कविता भीड़ से नहीं, बल्कि व्यक्ति से बात कर रही थी। प्रयोगवाद ने हिंदी कविता को अंतर्राष्ट्रीय साहित्यिक मानकों के समकक्ष खड़ा किया और उसे आधुनिकता की जटिलताओं को व्यक्त करने की शक्ति प्रदान की।

यथार्थवाद, प्रगतिवाद, और प्रयोगवाद का अंतर्संबंध और द्वंद्व

ये तीनों साहित्यिक धाराएँ—यथार्थवाद, प्रगतिवाद और प्रयोगवाद—एक-दूसरे से कालक्रम और वैचारिक आधार पर जुड़ी हुई हैं, लेकिन उनमें गहन द्वंद्व भी विद्यमान है। यथार्थवाद एक आधारभूत नींव है, जिसने साहित्य को काल्पनिक आदर्शों से हटाकर जीवन की कठोर भूमि पर उतारा। प्रगतिवाद इसी यथार्थवादी नींव पर मार्क्सवादी विचारधार की इमारत खड़ी करता है, जहाँ यथार्थ का चित्रण परिवर्तन के लक्ष्य के साथ किया जाता है। प्रगतिवाद ने सामाजिक शोषण को अपना केंद्र बनाया। प्रयोगवाद प्रगतिवाद से सीधे द्वंद्व में आया। प्रयोगवादियों ने प्रगतिवाद के 'उपयोगितावाद' और 'कला बनाम नारा' के दृष्टिकोण को चुनौती दी। उनका तर्क था कि राजनीतिक उद्देश्य कविता की कलात्मकता को नष्ट कर देते हैं और व्यक्ति की आंतरिक स्वतंत्रता का हनन करते हैं। उन्होंने साहित्य को सामाजिक शोर से निकालकर आत्मा के एकांत में वापस ला दिया। हालांकि, यह भी सत्य है कि प्रयोगवाद ने यथार्थवाद की ईमानदारी और सत्यनिष्ठा को बनाए रखा, लेकिन उसने

यथार्थ के बाहरी (सामाजिक) आयाम से अधिक आंतरिक (मनोवैज्ञानिक) आयाम पर जोर दिया। इस प्रकार, यथार्थवाद ने विषय दिया, प्रगतिवाद ने उसे सामाजिक लक्ष्य दिया, और प्रयोगवाद ने उसे नया शिल्प और व्यक्तिगत गहराई दी। ये तीनों धाराएँ मिलकर आधुनिक हिंदी साहित्य के समग्र और जटिल स्वरूप का निर्माण करती हैं।

8. कथा साहित्य में 'नई कहानी' का आंदोलन: कमलेश्वर और शहरी जीवन की विसंगति

प्रयोगवाद के बाद कथा साहित्य में 'नई कहानी' आंदोलन का उदय हुआ, जिसने प्रयोगवादी चेतना को गद्य में विस्तार दिया। इस आंदोलन के प्रमुख हस्ताक्षर कमलेश्वर थे, जिन्होंने मोहन राकेश और राजेंद्र यादव के साथ मिलकर हिंदी कहानी को नया मोड़ दिया। जहाँ प्रेमचंद और प्रगतिवादी लेखक ग्रामीण या व्यापक सामाजिक संघर्षों पर ध्यान केंद्रित करते थे, वहीं 'नई कहानी' ने शहरी और महानगरीय जीवन की जटिलताएँ, मध्यवर्गीय विसंगतियाँ, और व्यक्ति के भावनात्मक टूटन को अपना विषय बनाया। कमलेश्वर की कहानियाँ आधुनिक मनुष्य की दिशाहीनता, अकेलेपन और नैतिक द्वंद्व को गहराई से चित्रित करती हैं। उनकी कहानियों में अधूरे रिश्ते, दफ्तरों का बोझिल जीवन, और शहरी भीड़ में खोए हुए व्यक्ति का यथार्थ चित्रण मिलता है। कमलेश्वर ने समय और स्थान के संदर्भ को अत्यंत प्रामाणिक बनाया और कहानी की तकनीक में भी प्रयोग किए (जैसे फ्लैशबैक, प्रतीकात्मक अंत)। 'नई कहानी' ने कहानी को केवल घटना का विवरण नहीं रहने दिया, बल्कि उसे मानवीय मन की आंतरिक यात्रा बना दिया। कमलेश्वर ने यह दिखाया कि आधुनिक यथार्थ अब केवल भूख और गरीबी तक सीमित नहीं है, बल्कि वह अस्तित्व की पहचान और भावनात्मक रिक्तता की भी समस्या है। इस आंदोलन ने कहानी को एक संवेदनशील और मनोवैज्ञानिक माध्यम बना दिया, जो व्यक्तिगत अनुभवों को सार्वभौमिक रूप से अभिव्यक्त करता था।

प्रगतिवादी यथार्थवाद का मनोवैज्ञानिक और ऐतिहासिक विस्तार: नागर और यशपाल की बहुआयामी दृष्टि

अमृतलाल नागर और यशपाल का प्रगतिवादी यथार्थवाद केवल वर्ग संघर्ष तक सीमित नहीं था, बल्कि यह मनोवैज्ञानिक और ऐतिहासिक आयामों को भी छूता था।

अमृतलाल नागर ने 'मानस का हंस' (तुलसीदास के जीवन पर) और 'खंजन नयन' (सूरदास के जीवन पर) जैसे उपन्यासों के माध्यम से ऐतिहासिक और सांस्कृतिक पात्रों के मानवीय संघर्षों को यथार्थवादी दृष्टि से प्रस्तुत किया। उन्होंने इतिहास को केवल तथ्यों का संग्रह नहीं माना, बल्कि चरित्रों के आंतरिक द्वंद्व और सामाजिक परिस्थितियों के प्रभाव को दर्शाया। नागर जी का यथार्थवाद मानवीय करुणा से भरा था, जो निम्न वर्ग और महिलाओं के प्रति उनकी गहरी संवेदना को दिखाता है। यशपाल ने अपने उपन्यासों में राजनीति और इतिहास को प्रगतिवादी लेंस से देखा। 'झूठा सच' जैसे उपन्यासों में, उन्होंने देश विभाजन की ऐतिहासिक घटना को सामाजिक-आर्थिक यथार्थ के दृष्टिकोण से विश्लेषित किया। उन्होंने दिखाया कि कैसे राजनीतिक उथल-पुथल आम आदमी के जीवन और नैतिकता को प्रभावित करती है। यशपाल का लेखन मनोवैज्ञानिक गहराई से भी युक्त था, क्योंकि उन्होंने पात्रों के व्यक्तिगत विचार, भय और क्रांतिकारी प्रेरणाओं का भी सूक्ष्म विश्लेषण किया। इन दोनों लेखकों ने सिद्ध किया कि प्रगतिवादी यथार्थवाद एक रूढ़िवादी सिद्धांत नहीं है, बल्कि यह इतिहास, संस्कृति, और मनोविज्ञान के साथ मिलकर एक बहुआयामी और समृद्ध साहित्यिक दृष्टि का निर्माण कर सकता है।

आधुनिक हिंदी साहित्य के विकास में यथार्थवाद, प्रगतिवाद, और प्रयोगवाद का योगदान अमिट और अविस्मरणीय है। यथार्थवाद ने साहित्य को कल्पना से सत्य की ओर मोड़कर जन-जीवन से जोड़ा। प्रेमचंद ने इस धारा को नैतिक आधार और सामाजिक प्रामाणिकता प्रदान की, जिससे हिंदी कथा साहित्य को विश्वस्तरीय पहचान मिली। प्रगतिवाद ने यथार्थ को क्रांति की दिशा दी, साहित्य को सामाजिक परिवर्तन का माध्यम बनाया, और शोषित वर्ग को वाणी दी। यशपाल और नागर ने इस धारा को सामाजिक और सांस्कृतिक गहराई प्रदान की। अंतिम चरण में, प्रयोगवाद ने सामाजिकता के दबाव से निकलकर व्यक्ति की स्वतंत्रता, आंतरिक सत्य और अभिव्यक्ति की नवीनता पर बल दिया। अज्ञेय के नेतृत्व में इस धारा ने हिंदी काव्य को शिल्प और तकनीक के स्तर पर अभूतपूर्व समृद्धि दी। कमलेश्वर ने इस प्रयोगवादी चेतना को कथा साहित्य में 'नई कहानी' के रूप में आगे बढ़ाया, जहाँ शहरी मनुष्य की विसंगति केंद्रीय विषय बनी। संक्षेप में, ये तीनों धाराएँ हिंदी साहित्य के क्रमिक विकास को दर्शाती हैं: यथार्थवाद ने क्या है, प्रगतिवाद ने क्या होना चाहिए, और प्रयोगवाद ने

कैसे कहें की समस्या को हल किया। इनकी संयुक्त विरासत ने ही हिंदी साहित्य को समकालीनता, वैचारिक गहराई और कलात्मक परिष्कार की वह शक्ति प्रदान की है जो आज भी प्रासंगिक है।

2.6 सारांश

यथार्थवाद ने कथा साहित्य को जीवन के निकट लाया और प्रेमचंद ने इसे भारतीय संदर्भ में स्थापित किया। प्रगतिवाद ने साहित्य को सामाजिक परिवर्तन का माध्यम बनाया और मार्क्सवादी विचारधारा से प्रेरित रचनाएँ प्रस्तुत कीं। प्रयोगवाद ने काव्य-शिल्प में क्रांतिकारी परिवर्तन किए और व्यक्ति की आंतरिक चेतना को प्राथमिकता दी।

2.7 इकाई अंत अभ्यास

1. प्रेमचंद के आदर्शोन्मुख यथार्थवाद की विशेषताएँ स्पष्ट करते हुए इसकी सीमाओं पर प्रकाश डालिए।
2. प्रगतिवाद और प्रयोगवाद के बीच वैचारिक द्वंद्व को उदाहरण सहित समझाइए।
3. तार सप्तक' के महत्व और प्रयोगवादी काव्य की नवीन तकनीकों का विस्तृत विवेचन कीजिए।

2.8 संदर्भ एवं अनुसंशित पठन सामाग्री

1. डॉ. देवराज उपाध्याय, आधुनिक हिंदी कथा-साहित्य और मनोविज्ञान, साहित्य भवन, इलाहाबाद 1956।
2. सुधा मित्तल, हिन्दी कथा साहित्य में मध्यकालीन भारत, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली 1906।
3. जगन्नाथ प्रसाद शर्मा, कहानी का रचना विधान, हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, ज्ञानवापी, वाराणसी 1959।
4. ब्रजभूषण शर्मा, हिन्दी कहानी समीक्षा: उद्भव एवं विकास, कला प्रकाशन, वाराणसी 1929।

अपनी प्रगति की जाँच करें

1. **हिंदी कथा साहित्य की प्रमुख प्रवृत्तियों का उल्लेख कीजिए।**

---

2. **आधुनिक युग में कथा साहित्य की प्रवृत्तियों में आए परिवर्तन का संक्षेप में वर्णन कीजिए।**

इकाई 3 नई कहानी और नई संवेदना

संरचना

3.1 परिचय
3.2 उद्देश्य
3.3 नई कहानी आंदोलन (1950-60 के दशक)
3.4 सारांश
3.5 इकाई अंत अभ्यास
3.6 संदर्भ एवं अनुसंशित पठन सामाग्री

3.1 परिचय

नई कहानी आंदोलन (1950-60) ने हिंदी कथा साहित्य में क्रांतिकारी परिवर्तन किए। स्वतंत्रता के बाद के मोहभंग, शहरीकरण और बदलते मूल्यों ने इस आंदोलन को जन्म दिया। मोहन राकेश, राजेंद्र यादव और कमलेश्वर की त्रयी ने मध्यवर्गीय जीवन की जटिलताओं को अभिव्यक्त किया।

3.2 उद्देश्य

- नई कहानी आंदोलन की पृष्ठभूमि, शहरीकरण और मोहभंग के संदर्भ को समझना तथा इसकी आवश्यकता जानना।
- नई कहानी की मूलभूत विशेषताएँ, शिल्पगत नवीनता और अभिव्यक्ति की ईमानदारी का अध्ययन करना।
- मोहन राकेश, राजेंद्र यादव और कमलेश्वर के योगदान को विस्तार से जानना और समझना।

3.3 नई कहानी आंदोलन (1950-60 के दशक)

1. 'नई कहानी' आंदोलन का उदय: पृष्ठभूमि और साहित्यिक आवश्यकता

'नई कहानी' आंदोलन (1950-60 के दशक) आधुनिक हिंदी कथा साहित्य में एक युग-प्रवर्तक घटना थी, जिसने कहानी के स्वरूप, विषयवस्तु और शिल्प में मौलिक परिवर्तन किए। इस आंदोलन का उदय स्वतंत्रता प्राप्ति के तुरंत बाद की अवधि में हुआ, जब देश में एक ओर नए सपने थे, वहीं दूसरी ओर तीव्र मोहभंग की भावना व्याप्त थी। 'नई कहानी' का जन्म प्रेमचंद के यथार्थवाद, प्रगतिवाद के सामाजिक संकल्प और प्रयोगवाद की वैयक्तिक चेतना के सम्मिलन और प्रतिक्रिया के परिणामस्वरूप हुआ।

2. पृष्ठभूमि: स्वतंत्रता के बाद का मोहभंग, शहरीकरण और बदलते सामाजिक मूल्य

'नई कहानी' की पृष्ठभूमि में स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद के सामाजिक और राजनीतिक परिवर्तन प्रमुख रहे। 1947 में आज़ादी के साथ जो स्वर्णिम भविष्य का सपना देखा गया था, वह जल्द ही भ्रष्टाचार, बेरोजगारी, गरीबी और राजनीतिक अवसरवाद के कारण मोहभंग में बदल गया। देश विभाजन की त्रासदी ने भी मानवीय मूल्यों पर गहरा आघात किया था। इस कालखंड में तेज शहरीकरण हुआ, जिससे ग्रामीण संरचनाएँ टूटीं और महानगरों में एक नया, महत्वाकांक्षी, लेकिन असुरक्षित मध्यवर्ग तेजी से उभरा। इस मध्यवर्ग की अपनी समस्याएँ थीं: आर्थिक अस्थिरता, नैतिक द्वंद्व, और व्यक्ति-परिवार-समाज के बीच तनाव। परिवार जैसी पारंपरिक संस्थाएँ भी टूटना शुरू हो गईं, और रिश्तों की गर्माहट कम होने लगी। इस पृष्ठभूमि में, 'नई कहानी' के कथाकारों ने व्यक्ति के आंतरिक सत्य को खोजना शुरू किया। उन्होंने महसूस किया कि अब बाहरी क्रांति की बात करना निरर्थक है, जबकि व्यक्ति भीतर से खोखला हो चुका है। सामाजिक मूल्य तेजी से बदल रहे थे—स्त्री-पुरुष संबंध, विवाह संस्था और नैतिकता—सभी पर प्रश्नचिह्न लग चुका था।

3. 'नई कहानी' की मूलभूत विशेषताएँ: शिल्पगत नवीनता और अभिव्यक्ति की ईमानदारी

'नई कहानी' आंदोलन अपनी मूलभूत विशेषताओं के कारण पूर्ववर्ती कथा साहित्य से स्पष्ट रूप से भिन्न था। लेखकों ने जीवन के अप्रिय, वर्जित या नैतिक रूप से संदिग्ध पहलुओं को भी बिना किसी नैतिक निर्णय के चित्रित किया। दूसरी महत्वपूर्ण विशेषता भोक्ता हुआ यथार्थ (Experienced Reality) थी। कहानी अब केवल कल्पना नहीं थी, बल्कि लेखक या पात्र द्वारा गहराई से भोगा गया अनुभव थी, जिससे उसमें प्रामाणिकता आई। शिल्प के स्तर पर भी कई नवीनताएँ आईं। कथावस्तु अब सीधी और रेखीय नहीं थी, बल्कि यह अक्सर टूटी हुई (Fragmented), फ्लैशबैक या चेतना की धारा (Stream of Consciousness) शैली में प्रस्तुत की जाती थी। कहानियाँ चरित्र प्रधान थीं, जहाँ कहानी का अंत किसी अंतिम निष्कर्ष के बजाय एक प्रश्न, एक अनसुलझा द्वंद्व, या एक प्रतीकात्मक संकेत पर होता था। भाषा सरल, संवादात्मक थी,

लेकिन प्रतीकात्मक बिम्बों और मनोवैज्ञानिक शब्दावली के प्रयोग से वह अधिक गहन बन गई थी। कमलेश्वर ने रिपोर्टाज शैली का प्रयोग किया, जबकि मोहन राकेश ने संवादात्मक कौशल पर जोर दिया। 'नई कहानी' ने परिस्थिति (Situation) को महत्व दिया, जहाँ किसी एक विशेष क्षण में पात्र के संपूर्ण जीवन-सत्य को उजागर किया जाता था। इस आंदोलन ने हिंदी कहानी को एक आधुनिक, मनोवैज्ञानिक और शिल्प-सजग रूप प्रदान किया, जिसने उसे बीसवीं शताब्दी के विश्व कथा साहित्य के समकक्ष ला खड़ा किया।

4. मोहन राकेश: संवेदना और आंतरिक द्वंद्व के कथाकार

मोहन राकेश (1925-1972) 'नई कहानी' आंदोलन के सर्वोच्च और सर्वाधिक प्रभावशाली स्तंभ माने जाते हैं। उन्हें विशेष रूप से संवेदना और आंतरिक द्वंद्व के कथाकार के रूप में जाना जाता है। उनकी कहानियों और नाटकों का केंद्रीय विषय स्त्री-पुरुष संबंधों की जटिलता, मानवीय अलगाव (Alienation), और आधुनिक जीवन का संत्रास रहा है। राकेश की विशेषता यह थी कि वे बाहरी घटनाक्रम को गौण रखते हुए पात्रों के मन में चल रहे सूक्ष्म उथल-पुथल को अत्यंत संवेदनशील ढंग से चित्रित करते थे। उनकी कहानियाँ, जैसे 'मलबे का मालिक', 'एक और ज़िंदगी', 'जानवर और जानवर', और 'आद्रा', शहरी मध्यवर्ग के जीवन में व्याप्त तनाव, ऊब और आत्म-संघर्ष को दर्शाती हैं। उनके पात्र अक्सर निर्णय लेने में असमर्थ होते हैं, अतीत की स्मृतियों से घिरे होते हैं, और वर्तमान में अकेलेपन से जूझते हैं।

'एक और ज़िंदगी' में विवाहित संबंधों की विफलता का जो चित्रण है, वह केवल सामाजिक समस्या नहीं, बल्कि दो व्यक्तियों के बीच संवादहीनता का मनोवैज्ञानिक यथार्थ है। राकेश ने स्त्री पात्रों को गहराई और बहुआयामी रूप प्रदान किया। उनकी स्त्रियाँ केवल भोग्या या सती नहीं थीं, बल्कि स्वतंत्र चेतना वाली, जटिल और अपनी इच्छाओं के प्रति सजग थीं। मोहन राकेश ने अपनी सांकेतिक और व्यंजनापूर्ण भाषा के माध्यम से यह स्थापित किया कि छोटी सी कहानी भी मानव मन की असीम गहराइयों को छू सकती है, और इसी कारण वे आधुनिक संवेदना के सबसे बड़े प्रतिनिधि बने।

चित्र 1.4: मोहन राकेश: संवेदना और आंतरिक द्वंद्व के कथाकार

5. राजेंद्र यादव: टूटन, विसंगति और संबंधों के जटिल यथार्थ के चितेरे

राजेंद्र यादव (1929-2013) 'नई कहानी' के एक अन्य प्रमुख 'त्रयी' सदस्य थे, जिन्होंने मानव संबंधों की टूटन (Breakdown) और आधुनिक जीवन की विसंगति को अपनी कथाओं का मुख्य आधार बनाया। यादव जी का लेखन तीव्र बौद्धिकता और सामाजिक-मनोवैज्ञानिक विश्लेषण की प्रखरता के लिए जाना जाता है। उनकी कहानियाँ अक्सर वैवाहिक और प्रेम संबंधों में आई कड़वाहट, अविश्वास और संवादहीनता पर केंद्रित होती हैं।

चित्र 1.5: राजेंद्र यादव: टूटन, विसंगति और संबंधों के जटिल यथार्थ के चितेरे

उनकी प्रसिद्ध कहानियाँ, जैसे 'जहाँ लक्ष्मी कैद है', 'किनारे से किनारे तक', 'खेल खिलौने', और उपन्यास 'उखड़े हुए लोग', मध्यवर्गीय पति-पत्नी के बीच के आंतरिक संघर्ष को दर्शाती हैं। यादव ने दिखाया कि कैसे आर्थिक मजबूरी, सामाजिक दबाव और अहंकार रिश्ते की कोमलता को नष्ट कर देते हैं। उनका यथार्थवाद बाहरी विवरण से अधिक आंतरिक बहस पर जोर देता था। राजेंद्र यादव की भाषा में एक प्रखर तार्किकता और विद्रोहात्मक स्वर मिलता है। वे सामाजिक और नैतिक रूढ़ियों पर सीधे प्रहार करते थे और स्त्री मुक्ति के प्रबल समर्थक थे। उन्होंने पुरानी नैतिकता के बोझ से दबे और नए जीवन-मूल्यों की तलाश करते हुए मध्यवर्गीय व्यक्ति के द्वंद्व को अत्यंत मार्मिक ढंग से प्रस्तुत किया। यादव का योगदान यह था कि उन्होंने हिंदी कहानी को सामाजिकता के जाल से निकालकर अस्तित्ववादी चिंताओं और व्यक्तिगत स्वतंत्रता के प्रश्नों से जोड़ा, जिससे वह मानवीय संबंधों के जटिल यथार्थ का एक प्रामाणिक दस्तावेज बन गई।

6. कमलेश्वर: शहरी जीवन की विसंगति और मध्यवर्गीय संत्रास के प्रवक्ता

कमलेश्वर (1932-2007) 'नई कहानी' आंदोलन के तीसरे महत्वपूर्ण स्तंभ थे, जिन्होंने कहानी को महानगरीय यथार्थ और जन-संचार माध्यमों से जोड़ा। कमलेश्वर की कहानियों का मुख्य फोकस शहरी मध्यवर्ग के संत्रास (Anguish), दिशाहीनता, और आर्थिक-सामाजिक विसंगतियों पर रहा है। उनकी कहानियाँ तेज़ गति, चित्रात्मकता और रिपोर्टाज शैली के लिए जानी जाती हैं। कमलेश्वर ने यह दिखाया कि शहर न केवल सपनों का केंद्र है, बल्कि विस्थापन, अलगाव और नैतिक पतन का भी केंद्र है। उनकी चर्चित कहानियाँ, जैसे 'राजा निरबंसिया', 'खोई हुई दिशाएँ', 'जॉर्ज पंचम की नाक', और उपन्यास 'कितने पाकिस्तान', आधुनिक जीवन की क्रूरताओं और व्यवस्था की बेईमानी को उजागर करती हैं। 'राजा निरबंसिया' में ग्रामीण और शहरी मूल्यों के संघर्ष तथा संबंधों की स्वार्थपरता का चित्रण है। कमलेश्वर ने विशेष रूप से निम्न मध्यवर्ग के संघर्षों को वाणी दी, जो आर्थिक और सामाजिक रूप से हाशिए पर खड़ा है। उन्होंने जनता की आवाज़ को पकड़ते हुए सरकारी तंत्र, नौकरशाही और राजनीतिक खोखलेपन पर तीखा व्यंग्य किया। कमलेश्वर ने कहानी को सीधे और सपाट तरीके से प्रस्तुत करने के बजाय, उसमें सांकेतिकता और प्रतीकात्मकता का गहरा प्रयोग किया, जिससे उनकी कहानियाँ एक साथ सामाजिक और राजनीतिक

दोनों स्तरों पर प्रभावी सिद्ध हुईं। उनका सबसे बड़ा योगदान यह था कि उन्होंने 'नई कहानी' को आधुनिकता, शहरी यथार्थ और सामाजिक जिम्मेदारी का एक अविभाज्य मिश्रण बनाया।

चित्र 1.6: कमलेश्वर (1932-2007) 'नई कहानी' आंदोलन के तीसरे महत्वपूर्ण स्तंभ

7. नई संवेदना का केंद्र: मध्यवर्गीय जीवन की जटिलता और त्रासदी

'नई कहानी' द्वारा स्थापित 'नई संवेदना' का केंद्रीय फोकस मध्यवर्गीय जीवन की जटिलता थी। यह वर्ग आर्थिक रूप से अस्थिर, सांस्कृतिक रूप से संक्रमणशील और भावनात्मक रूप से खंडित था। स्वतंत्रता के बाद, यह वर्ग पुरानी नैतिकता और नई आकांक्षाओं के बीच फँसा हुआ था। कहानीकारों ने इसी वर्ग के छोटे-छोटे दुख-सुख, आशाएँ-निराशाएँ, और आत्म-संघर्ष को बारीकी से पकड़ा। 'नई कहानी' में चित्रित मध्यवर्ग वह था जो टूटते हुए संयुक्त परिवार, दफ्तर की ऊब, बच्चों की फीस और मकान के किराए के बीच अपनी पहचान तलाश रहा था। इस जीवन की त्रासदी यह नहीं थी कि वे अत्यधिक गरीब थे, बल्कि यह थी कि वे सुख और सफलता के करीब होते हुए भी उसे छू नहीं पा रहे थे। उनकी कहानियों में छोटी-छोटी घटनाएँ (जैसे पति का देर से घर आना, पत्नी का चुप रहना, या दफ्तर में अपमान) भी जीवन की बड़ी

विसंगति को दर्शाती थीं। इस नई संवेदना ने मध्यवर्गीय व्यक्ति को वीर या खलनायक के रूप में नहीं, बल्कि एक साधारण, संघर्षशील और त्रुटिपूर्ण मानव के रूप में चित्रित किया। इस सूक्ष्म और ईमानदार चित्रण ने 'नई कहानी' को जनता के बीच अत्यधिक लोकप्रिय बनाया, क्योंकि पाठक को उसमें अपना ही प्रतिबिंब दिखाई देता था।

8. मनोवैज्ञानिक द्वंद्व और अंतर्मन की पड़ताल: बाहरी यथार्थ से आंतरिक सत्य तक

'नई कहानी' का सबसे बड़ा प्रस्थान बिंदु मनोवैज्ञानिक द्वंद्व (Psychological Conflict) और अंतर्मन (Inner Psyche) की पड़ताल था। जहाँ पहले की कहानियाँ बाहरी यथार्थ (External Reality) और सामाजिक क्रिया पर केंद्रित थीं, वहीं 'नई कहानी' ने व्यक्ति के भीतर के संघर्षों, दमित इच्छाओं (Repressed Desires), और मानसिक उथल-पुथल को प्राथमिकता दी। कथाकार यह मानते थे कि आधुनिक मनुष्य का सबसे बड़ा संघर्ष समाज से नहीं, बल्कि स्वयं से है। लेखकों ने चरित्रों के निर्णय लेने की असमर्थता, विरोधाभासी भावनाएँ, और आत्म-ग्लानि का सूक्ष्म विश्लेषण किया। उदाहरण के लिए, मोहन राकेश की कहानियों में पात्र अक्सर एक ही समय में प्रेम और घृणा, आकर्षण और वितृष्णा जैसे द्वंद्वपूर्ण भावनाओं से ग्रस्त रहते थे। यह मनोवैज्ञानिक पड़ताल कहानी के शिल्प में भी झलकती थी। चेतना की धारा (Stream of Consciousness), आंतरिक एकालाप (Inner Monologue) और स्मृति-विस्मृति के प्रयोग से कहानी को एक नया आयाम मिला। राजेंद्र यादव के लेखन में संबंधों की मनोवैज्ञानिक गाँठों को खोलने का प्रयास स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। यह प्रवृत्ति हिंदी कहानी को सत्यजित रे की फिल्मों की तरह मौन, सांकेतिक और अंतर्मुखी बनाती थी। इस आंतरिक सत्य की खोज ने कहानी को एक बौद्धिक और वैचारिक गहराई प्रदान की, जिससे वह केवल घटना का माध्यम न रहकर मानव मन का विश्लेषण बन गई।

9. अकेलापन और संत्रास का चित्रण: आधुनिक मानव की नियति

'नई कहानी' द्वारा प्रस्तुत नई संवेदना की सबसे मार्मिक अभिव्यक्ति अकेलापन (Loneliness) और संत्रास (Anguish) के चित्रण में मिलती है। शहरीकरण, औद्योगीकरण और भौतिकवाद ने व्यक्ति को सामाजिक बंधनों से तो मुक्त किया, लेकिन उसे भावनात्मक रूप से अकेला कर दिया। कहानीकारों ने दिखाया कि शहर

की भीड़ में व्यक्ति सबसे ज्यादा अकेला है। यह अकेलापन केवल शारीरिक दूरी का नहीं, बल्कि संवादहीनता और भावनात्मक रिक्तता का परिणाम था। संत्रास (Anguish) इस अकेलेपन की स्वाभाविक उपज थी। संत्रास, एक तरह की अस्तित्ववादी चिंता है, जहाँ व्यक्ति अपने जीवन के अर्थ को लेकर भयभीत और असहज महसूस करता है। 'नई कहानी' के पात्र अक्सर दिशाहीन, भविष्य के प्रति आशंकित और अतीत की स्मृतियों से त्रस्त दिखाई देते हैं। वे समाज या परिवार में होते हुए भी बाहर महसूस करते हैं। कमलेश्वर की कहानियों में यह संत्रास अक्सर व्यंग्य और विसंगति के रूप में प्रकट होता है, जबकि राकेश की कहानियों में यह मौन, आत्म-पीड़ित रूप में व्यक्त होता है। इस अकेलेपन और संत्रास का चित्रण यह दर्शाता है कि 'नई कहानी' केवल सामाजिक यथार्थ तक सीमित नहीं थी, बल्कि यह आधुनिक मानव की नियति (Fate) और अस्तित्ववादी दर्शन की गहरी समझ रखती थी। इस विषय वस्तु ने कहानी को वैश्विक साहित्यिक प्रवृत्तियों के साथ जोड़ा।

'नई कहानी' आंदोलन हिंदी कथा साहित्य के लिए एक चिरस्थायी और मौलिक देन साबित हुआ। 1950-60 के दशक में जन्मी इस धारा ने कथा साहित्य की दिशा को हमेशा के लिए बदल दिया। इसकी सबसे बड़ी देन यह रही कि इसने कहानी को घटना के प्रभुत्व से मुक्त कर संवेदना, चरित्र और मनोविज्ञान के केंद्र में स्थापित किया। मोहन राकेश, राजेंद्र यादव और कमलेश्वर की 'त्रयी' ने नई शैली, नए शिल्प और नई भाषा का प्रयोग करके कहानी को आधुनिक मध्यवर्गीय जीवन की जटिलता और मानवीय मन के द्वंद्व को अभिव्यक्त करने का सशक्त माध्यम बनाया। 'नई कहानी' ने सिद्ध किया कि छोटी सी कहानी भी बड़ी जिंदगी के सत्य को उतनी ही गहराई से कह सकती है जितना कि कोई महाकाव्य या उपन्यास। इसने अकेलेपन, संत्रास, और संबंधों की टूटन जैसी आधुनिक संवेदनाओं को मुख्यधारा के साहित्य में लाकर हिंदी कहानी को पाश्चात्य अस्तित्ववादी चिंतन के समकक्ष खड़ा किया। इस आंदोलन के प्रभाव से ही बाद में समानांतर कहानी और समकालीन कहानी जैसी विधाओं का जन्म हुआ। 'नई कहानी' की विरासत आज भी जीवित है, क्योंकि आज भी अधिकांश कहानियाँ मध्यवर्गीय जीवन, मनोवैज्ञानिक द्वंद्व और अभिव्यक्ति की ईमानदारी के इन्हीं मानकों पर खरी उतरने का प्रयास करती हैं। इसने हिंदी कहानी

को आधुनिकता की जटिलताओं को समझने और समझाने का अनमोल उपकरण प्रदान किया।

3.4 सारांश

नई कहानी ने कहानी को घटना प्रधानता से मुक्त कर संवेदना और चरित्र पर केंद्रित किया। मध्यवर्गीय जीवन की विसंगति, मनोवैज्ञानिक द्वंद्व और अकेलेपन को इसने मुख्य विषय बनाया। मोहन राकेश, राजेंद्र यादव और कमलेश्वर ने नई शैली और तकनीक से हिंदी कहानी को आधुनिकता प्रदान की।

3.5 इकाई अंत अभ्यास

1. नई कहानी आंदोलन की प्रमुख विशेषताओं को प्रेमचंद युग की कहानियों से तुलना करते हुए समझाइए।
2. मोहन राकेश की कहानियों में संवेदना और आंतरिक द्वंद्व के चित्रण का विश्लेषण कीजिए।
3. नई संवेदना के रूप में शहरी मध्यवर्गीय जीवन की जटिलताओं का विवेचन उदाहरण सहित प्रस्तुत कीजिए।

3.6 संदर्भ एवं अनुसंशित पठन सामाग्री

1. नामवर सिंह, कहानी , नई कहानी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रकाशन वर्ष 1994।
2. देवीशंकर अवस्थी, नई कहानी, सन्दर्भ और प्रकृति, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली,प्रकाशन वर्ष 1973।
3. मधुरेश, हिन्दी कहानी , अंतःसंघर्ष, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली,प्रकाशन वर्ष 1966।

अपनी प्रगति की जाँच करें

1. **नई कहानी आंदोलन क्या है? इसके प्रमुख लक्षणों का वर्णन कीजिए।**

---

2. **नई कहानी में उभरती हुई नई संवेदना को उदाहरणों सहित स्पष्ट कीजिए।**

इकाई 4 स्त्री विमर्श, दलित विमर्श, अस्मिता विमर्श

संरचना

4.1 परिचय
4.2 उद्देश्य
4.3 स्त्री विमर्श
4.4 दलित विमर्श
4.5 अस्मिता विमर्श की व्यापकता
4.6 सारांश
4.7 इकाई अंत अभ्यास
4.8 संदर्भ एवं अनुसंशित पठन सामाग्री

4.1 परिचय

विमर्श साहित्य ने हाशिए के समूहों को साहित्य के केंद्र में लाया। स्त्री विमर्श ने पितृसत्ता का विरोध किया, दलित विमर्श ने जातिगत उत्पीड़न को उजागर किया और अस्मिता विमर्श ने विविध पहचानों को मान्यता दिलाई। इन विमर्शों ने साहित्य को सामाजिक न्याय का माध्यम बनाया।

4.2 उद्देश्य

1. स्त्री विमर्श की अवधारणा, पितृसत्ता के विरुद्ध संघर्ष और मन्नू भंडारी, कृष्णा सोबती के योगदान को समझना।
2. दलित विमर्श के उदय, जातिगत उत्पीड़न और ओमप्रकाश वाल्मीकि की आत्मकथाओं का अध्ययन करना।
3. अस्मिता विमर्श की व्यापकता, आदिवासी और अल्पसंख्यक विमर्श की विशेषताओं को जानना और समझना।

4.3 स्त्री विमर्श

आधुनिक हिंदी साहित्य में विमर्श साहित्य की अवधारणा का उदय बीसवीं सदी के उत्तरार्ध और इक्कीसवीं सदी के आरंभिक दशकों की एक सबसे महत्वपूर्ण घटना है।

स्त्री विमर्श: उद्भव, संघर्ष और स्त्री अधिकारों का प्रखर आह्वान

स्त्री विमर्श आधुनिक हिंदी साहित्य में पहला और सबसे प्रभावशाली विमर्श है, जिसका उद्भव 20वीं शताब्दी के मध्य में हुआ और 1980 के दशक के बाद इसने गति पकड़ी। स्त्री विमर्श केवल सहानुभूति नहीं चाहता, बल्कि समानता, स्वतंत्रता और

आत्म-निर्णय के अधिकार की मांग करता है। इस विमर्श की पृष्ठभूमि में शिक्षा के माध्यम से स्त्री चेतना का जागरण, पश्चिमी नारीवादी आंदोलनों का प्रभाव, और भारतीय संविधान द्वारा प्रदत्त समानता का अधिकार है। स्त्री विमर्श ने पितृसत्ता (Patriarchy) की संस्थागत संरचनाओं को साहित्य के केंद्र में लाकर उनका विश्लेषण और खंडन किया। यह विमर्श इस बात पर ज़ोर देता है कि स्त्री का निजी जीवन भी राजनीतिक है और घर के भीतर होने वाला उत्पीड़न उतना ही महत्वपूर्ण है जितना कि सार्वजनिक जीवन का शोषण। स्त्री विमर्श ने स्त्री को भोग्या, देवी या निष्क्रिय पात्र की रूढ़िबद्ध छवि से बाहर निकालकर उसे स्वतंत्र इच्छाशक्ति, जटिलताओं और संघर्ष से युक्त एक मानव के रूप में स्थापित किया। इसने प्रेम, विवाह, मातृत्व और यौनिकता जैसे विषयों पर नए दृष्टिकोण से विचार किया और स्त्री के शरीर पर उसके अपने अधिकार की मुखरता से वकालत की। इस विमर्श ने हिंदी साहित्य की आलोचना, कविता और गद्य तीनों विधाओं को गहराई से प्रभावित किया और उन्हें जेंडर संवेदनशीलता से युक्त बनाया।

स्त्री लेखन की त्रयी: मन्नू भंडारी, कृष्णा सोबती और मृदुला गर्ग का विशिष्ट योगदान

स्त्री विमर्श को साहित्यिक पहचान दिलाने में मन्नू भंडारी, कृष्णा सोबती और मृदुला गर्ग का योगदान अविस्मरणीय है। इन लेखिकाओं ने अपनी विशिष्ट शैली और विषय वस्तु के माध्यम से हिंदी स्त्री लेखन को नया आयाम दिया। मन्नू भंडारी ने अपनी कहानियों और उपन्यासों, विशेषकर 'आपका बंटी' और 'महाभोज', के माध्यम से मध्यवर्गीय स्त्री के द्वंद्व और संवादहीनता को चित्रित किया। 'आपका बंटी' में तलाकशुदा माता-पिता के बीच बच्चे की मनोवैज्ञानिक त्रासदी का चित्रण स्त्री के पारिवारिक भूमिकाओं पर प्रश्नचिन्ह लगाता है। भंडारी का लेखन सांकेतिक, यथार्थवादी और मनोवैज्ञानिक है, जो स्त्री के आंतरिक टूटन को दर्शाता है। कृष्णा सोबती का लेखन भाषा की मौलिकता, जीवन की गहरी अनुभूति और स्त्री के निर्भीक आत्म-स्वीकार के लिए जाना जाता है। उनके उपन्यास 'ज़िंदगीनामा' में जहाँ पंजाब के ग्रामीण जीवन का महाकाव्यात्मक चित्रण है, वहीं 'डार से बिछुड़ी' और 'मित्रो मरजानी' में उन्होंने स्त्री की यौनिकता, स्वतंत्रता और पारंपरिक बंधनों के प्रति विद्रोह को अत्यंत बोल्ड तरीके से प्रस्तुत किया। सोबती की स्त्रियाँ सामाजिक रूढ़ियों को

चुनौती देती हैं और अपने वजूद को पूरी ताकत से जीती हैं। उनकी भाषा संस्कारों और विद्रोह का मिश्रण है। मृदुला गर्ग ने अपने लेखन में बुद्धिजीवी और शहरी स्त्री के जटिल प्रश्नों को उठाया। उनके उपन्यासों, जैसे 'चित्तकोबरा' और 'कठगुलाब', में स्त्री-पुरुष संबंधों की वैकल्पिक संरचनाओं, सामाजिक-राजनीतिक विसंगतियों और स्त्री के आत्म-संघर्ष पर जोर दिया गया है। गर्ग का लेखन वैचारिक रूप से सशक्त, प्रयोगात्मक और तीक्ष्ण होता है। इन तीनों लेखिकाओं ने मिलकर स्त्री लेखन को विविधता, गहराई और वैचारिक मजबूती प्रदान की, जिससे स्त्री विमर्श एक समग्र साहित्यिक धारा बन सका।

चित्र 1.7: मन्नू भंडारी,

4.4 दलित विमर्श

दलित विमर्श आधुनिक हिंदी साहित्य की सबसे क्रांतिकारी और संघर्ष-मूलक धारा है। यह विमर्श सदियों से भारतीय समाज में व्याप्त जातिगत उत्पीड़न, अस्पृश्यता और सामाजिक बहिष्कार के विरुद्ध दलित समुदाय की ओर से किया गया सीधा और मुखर विद्रोह है। दलित विमर्श की अवधारणा सामाजिक न्याय, मानव गरिमा और

समान नागरिक अधिकारों पर आधारित है। इसकी ऐतिहासिक जड़ें ज्योतिबा फुले, डॉ. बी.आर. अंबेडकर और पेरियार के सामाजिक-राजनीतिक आंदोलनों में निहित हैं, जिन्होंने हिंदू सामाजिक व्यवस्था की मूलभूत जाति आधारित असमानता को चुनौती दी। दलित विमर्श ने साहित्य में दलित जीवन के यथार्थ को उसी की आंखों से चित्रित करने पर जोर दिया, जिसे 'दलित पीड़ा' कहा जाता है। यह विमर्श सहानुभूति की बजाय आक्रोश और प्रतिरोध की भाषा का प्रयोग करता है। इसका मुख्य लक्ष्य यह स्थापित करना है कि दलितों का जीवन केवल गरीबी या आर्थिक विपन्नता की समस्या नहीं है, बल्कि यह जातिगत उत्पीड़न और सामाजिक अपमान की सदियों पुरानी समस्या है। दलित साहित्य ने दलित लेखन (Dalit Writing) की अनिवार्यता पर जोर दिया, जिसमें केवल दलित ही दलित जीवन का प्रामाणिक चित्रण कर सकता है। इस विमर्श ने परंपरागत साहित्यिक मानकों, बिम्बों और प्रतीकों को अस्वीकार किया और 'दलित सौंदर्यशास्त्र' की स्थापना की मांग की, जहाँ क्रोध, घृणा, और विद्रोह जैसे भाव भी कलात्मक मूल्य रखते हैं। इस प्रकार, दलित विमर्श हिंदी साहित्य को जातिगत यथार्थ के सबसे कठोर और कुरूप पहलुओं से परिचित कराने का साहसिक कार्य करता है।

दलित आत्मकथाएँ: उत्पीड़न का यथार्थ और ओमप्रकाश वाल्मीकि, मदास नैमिशराय का स्वर

दलित विमर्श की सबसे प्रभावी और मार्मिक अभिव्यक्ति दलित आत्मकथाओं (Autobiographies) में हुई है। ये आत्मकथाएँ केवल व्यक्तिगत जीवन का लेखा-जोखा नहीं हैं, बल्कि ये भारतीय समाज की जातिवादी क्रूरता का प्रामाणिक और असहनीय दस्तावेज हैं। इन आत्मकथाओं ने दलित पीड़ा को सार्वजनिक विमर्श का विषय बना दिया। ओमप्रकाश वाल्मीकि (1950-2013) की आत्मकथा 'जूठन' दलित साहित्य की मील का पत्थर मानी जाती है। 'जूठन' में लेखक ने अपने बचपन में झेले गए अपमान, स्कूल में हुए भेदभाव, और मल-मूत्र साफ करने जैसे अमानवीय कार्यों का हृदय विदारक चित्रण किया है। 'जूठन' नाम स्वयं ही दलित जीवन की उस विडंबना को दर्शाता है जहाँ उन्हें उच्च जातियों के बचे हुए भोजन पर निर्भर रहना पड़ता था। वाल्मीकि का लेखन कठोर यथार्थवादी, आक्रोशपूर्ण और स्पष्ट है, जो पाठक को जातिगत उत्पीड़न की विभीषिका से सीधे रूबरू कराता है। मोहनदास

नैमिशराय (जन्म: 1948) की आत्मकथा 'अपने-अपने पिंजरे' हिंदी की पहली दलित आत्मकथा मानी जाती है। इसमें उन्होंने उत्तर प्रदेश के दलित जीवन में व्याप्त भेदभाव, आर्थिक तंगी और मानसिक यंत्रणा का चित्रण किया है। नैमिशराय का लेखन भी दलित जीवन के संघर्ष को स्थापित करने में महत्वपूर्ण रहा है। इन आत्मकथाओं की विशिष्टता यह है कि ये निराशा में समाप्त नहीं होतीं, बल्कि संघर्ष और शिक्षा के माध्यम से आत्म-सम्मान और मुक्ति की राह दिखाती हैं। इन्होंने हिंदी साहित्य में आत्मकथा विधा को एक नया सामाजिक-राजनीतिक महत्व दिया।

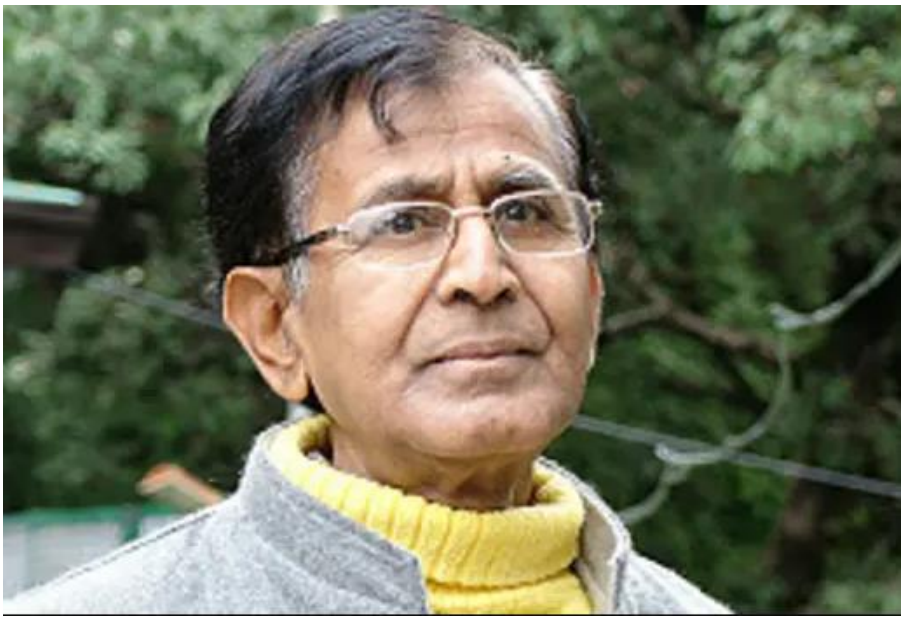

चित्र 1.8: ओमप्रकाश वाल्मीकि (1950-2013)

4.5 अस्मिता विमर्श की व्यापकता

अस्मिता विमर्श एक व्यापक अवधारणा है, जिसके अंतर्गत स्त्री विमर्श और दलित विमर्श जैसे विशिष्ट विमर्शों के अलावा अन्य हाशिए के समूहों की पहचान और अधिकारों की मांग शामिल है। अस्मिता का अर्थ है 'पहचान' (Identity)। यह विमर्श इस बात पर जोर देता है कि समाज में व्यक्ति की स्थिति केवल आर्थिक वर्ग से नहीं, बल्कि जाति, लिंग, धर्म, क्षेत्र और यौन रुझान जैसी उसकी अस्मिता से निर्धारित होती है। अस्मिता विमर्श यह मांग करता है कि इन उप-पहचानों को मान्यता और सम्मान मिले।

इस विमर्श की व्यापकता ने हिंदी साहित्य को विविध और बहुमुखी बनाया है। इसने मुख्यधारा के साहित्य के सजातीय, पुरुषवादी, और सवर्ण केंद्रित चरित्रों को चुनौती दी और अनेक रंगों और आवाज़ों को साहित्य में शामिल किया। अस्मिता विमर्श का मुख्य लक्ष्य यह सिद्ध करना है कि हाशिए पर स्थित समूह केवल उत्पीड़न के शिकार नहीं हैं, बल्कि उनके पास अपनी समृद्ध संस्कृति, ज्ञान और प्रतिरोध की शक्ति है। यह विमर्श पात्रों के आत्म-सम्मान, आत्म-निर्णय और आत्म-पहचान को साहित्य का केंद्र बनाता है। अस्मिता विमर्श ने द्विवेदी युग से चली आ रही 'हिंदी, हिंदू, हिंदुस्तान' की संकीर्ण राष्ट्रीय अवधारणा को चुनौती दी और एक ऐसे समावेशी, लोकतांत्रिक और बहुलतावादी साहित्य की नींव रखी, जहाँ हर पहचान को पूर्ण अभिव्यक्ति का अधिकार है।

आदिवासी विमर्श: जल, जंगल, जमीन और सांस्कृतिक पहचान का संघर्ष

आदिवासी विमर्श अस्मिता विमर्श का एक अत्यंत महत्वपूर्ण हिस्सा है, जो भारतीय समाज के सबसे प्राचीन और प्रकृति-सम्बद्ध समुदाय आदिवासियों के जीवन पर केंद्रित है। यह विमर्श उनकी विशिष्ट पहचान, संस्कृति, और सदियों से चली आ रही संघर्ष को साहित्य में लाता है। आदिवासी विमर्श का मुख्य मुद्दा 'जल, जंगल और जमीन' है। यह उनके अस्तित्व का मूल आधार है, जिसे पूँजीवाद, विकास परियोजनाओं, और सरकारी नीतियों के कारण लगातार खतरा पैदा होता रहा है। आदिवासी साहित्य यह दिखाता है कि आदिवासी संस्कृति केवल पिछड़ी हुई नहीं है, बल्कि वह प्रकृति के साथ सह-अस्तित्व, सामुदायिक भावना और महिला सम्मान पर आधारित एक गहरी दार्शनिक समझ रखती है। यह विमर्श आदिवासियों को विस्थापित करने, उनकी ज़मीन हड़पने और उन्हें जबरन मुख्यधारा में शामिल करने की नीतियों का तीखा विरोध करता है। आदिवासी लेखक, जैसे रमणिका गुप्ता और महादेव टोप्पो, अपनी रचनाओं में आदिवासी लोक कथाओं, गीतों और जीवन शैली को शामिल करते हैं, जिससे उनके साहित्य में एक अद्वितीय सांस्कृतिक रंग आता है। आदिवासी विमर्श का संघर्ष केवल भूमि के लिए नहीं, बल्कि सांस्कृतिक पहचान को संरक्षित रखने के लिए है, जो उन्हें अन्य समूहों से अलग करती है। यह विमर्श स्थापित करता है कि विकास का अर्थ केवल औद्योगीकरण नहीं, बल्कि स्थानीय समुदायों की जीवन शैली का सम्मान भी है।

अल्पसंख्यक विमर्श: सामाजिक सुरक्षा, प्रतिनिधित्व और हाशिए के समूहों का प्रश्न

अल्पसंख्यक विमर्श भी अस्मिता विमर्श का एक महत्वपूर्ण घटक है, जो भारत के धार्मिक और भाषाई अल्पसंख्यकों के सामाजिक सुरक्षा, न्याय और राजनीतिक प्रतिनिधित्व के प्रश्नों पर केंद्रित है। भारत जैसे बहुलतावादी देश में, यह विमर्श उन समुदायों की असुरक्षा की भावना, पहचान के संकट, और सामाजिक पूर्वाग्रहों को साहित्य में लाता है। यह विमर्श विशेष रूप से मुस्लिम, सिख और ईसाई समुदायों के अनुभवों पर केंद्रित है, जिन्होंने देश विभाजन, सांप्रदायिक हिंसा, और राजनीतिक ध्रुवीकरण के कारण पहचान का गहरा संकट झेला है। अल्पसंख्यक साहित्य यह दिखाता है कि कैसे सामाजिक पूर्वाग्रह और राज्य की नीतियाँ इन समुदायों को हाशिए पर धकेलती हैं। यह विमर्श धर्मनिरपेक्षता के वास्तविक अर्थों को स्थापित करने और बहुसंख्यकवादी संस्कृति के प्रभुत्व को चुनौती देने का प्रयास करता है। अल्पसंख्यक विमर्श से जुड़े लेखक सांप्रदायिक सद्भाव, न्याय और समान अवसर की वकालत करते हैं। उनका लेखन अक्सर इतिहास की पुनर्व्याख्या, वर्तमान की विसंगतियों और अल्पसंख्यक समुदायों की समृद्ध विरासत को सामने लाने पर जोर देता है। इस विमर्श ने हिंदी साहित्य को राष्ट्रीय एकता, समावेशी लोकतंत्र और सामाजिक न्याय जैसे महत्वपूर्ण विषयों पर गहन चिंतन के लिए प्रेरित किया है।

विमर्श साहित्य का सामूहिक प्रभाव: साहित्य की विषयवस्तु और शिल्प पर पुनर्विचार

विमर्श साहित्य का सामूहिक प्रभाव हिंदी साहित्य की विषयवस्तु, शिल्प और आलोचना पद्धति पर अत्यंत व्यापक और क्रांतिकारी रहा है। इन विमर्शों ने साहित्य में नए पात्रों को जन्म दिया—संघर्षरत स्त्री, आक्रोशित दलित, विस्थापित आदिवासी—जो पहले कभी मुख्यधारा में नहीं थे। इससे साहित्य की विषयवस्तु का लोकतांत्रिकरण हुआ। अब साहित्य केवल उच्च वर्ग या सवर्ण पुरुषों के जीवन तक सीमित नहीं रहा। शिल्प के स्तर पर, विमर्श साहित्य ने आत्मकथा (Autobiography), संस्मरण, और साक्षात्कार जैसी विधाओं को सामाजिक-राजनीतिक महत्व दिया। दलित आत्मकथाओं ने साहित्यिक प्रामाणिकता का एक नया मानक स्थापित किया। भाषा के स्तर पर, स्त्री

विमर्श ने स्त्री-सुलभ भाषा और दैनिक जीवन की बोलचाल को साहित्य में स्थान दिया, जबकि दलित विमर्श ने लोक और ग्रामीण बोलियों को प्रतिरोध के हथियार के रूप में प्रयोग किया। इस साहित्य ने आलोचना पद्धति पर भी पुनर्विचार करने को मजबूर किया, जहाँ अब 'कला कला के लिए' जैसे सिद्धांतों की जगह 'कला समाज के लिए' और 'सामाजिक प्रतिबद्धता' को महत्व दिया जाने लगा। विमर्श साहित्य ने साहित्य को केवल सत्यम्, शिवम्, सुंदरम् के पारंपरिक दायरे से बाहर निकालकर संघर्ष, यथार्थ, और न्याय के कठोर धरातल पर उतारा।

4.6 सारांश

विमर्श साहित्य ने परंपरागत साहित्यिक मानकों को चुनौती दी और उत्पीड़ित समूहों को वाणी प्रदान की। स्त्री विमर्श ने महिला अस्मिता स्थापित की, दलित विमर्श ने जातिवाद पर प्रहार किया और अस्मिता विमर्श ने समावेशी साहित्य की नींव रखी। इन विमर्शों ने हिंदी साहित्य को विविधता और सामाजिक प्रतिबद्धता प्रदान की।

4.7 इकाई अंत अभ्यास

1. स्त्री विमर्श में चित्रित पितृसत्ता के विभिन्न रूपों का विश्लेषण करते हुए समकालीन प्रासंगिकता बताइए।
2. दलित आत्मकथाओं के माध्यम से जातिगत यथार्थ के चित्रण का मूल्यांकन 'जूठन' के संदर्भ में कीजिए।
3. अस्मिता विमर्श की व्यापकता को आदिवासी और अल्पसंख्यक विमर्श के उदाहरणों से स्पष्ट कीजिए।

4.8 संदर्भ एवं अनुसंशित पठन सामाग्री

1. डॉ. रजनीसिंह, समकालीन हिंदी साहित्य में स्त्री विमर्श, अंकित पब्लिकेशन, रायपुर 2019.
2. रजनी पाठक, *स्त्री विमर्श और हिंदी साहित्य*, अकादमिक पब्लिकेशन नई दिल्ली2016
3. कृष्णादत्त पालीवाल, आधुनिक हिंदी साहित्य : सामाजिक-सांस्कृतिक विमर्श, सस्ता साहित्य मंडल, दिल्ली 2022.

अपनी प्रगति की जाँच करें

1. **स्त्री विमर्श से आप क्या समझते हैं? हिंदी साहित्य में इसके प्रमुख उद्देश्य और स्वरूप का वर्णन कीजिए।**

---

2. **दलित विमर्श की प्रमुख विशेषताओं का उल्लेख कीजिए तथा हिंदी कथा साहित्य में इसके योगदान पर प्रकाश डालिए।**

इकाई 5 कथा साहित्य और समाज

संरचना

5.1 परिचय
5.2 उद्देश्य
5.3 कथा साहित्य और समाज का संबंध समस्याओं का चित्रण
5.4 सारांश
5.5 इकाई अंत अभ्यास
5.6 संदर्भ एवं अनुसंशित पठन सामाग्री

5.1 परिचय

कथा साहित्य और समाज का संबंध अटूट है। साहित्य समाज का दर्पण, चेतना का निर्माता और परिवर्तन का वाहक है। गरीबी, शोषण, जातिवाद और स्त्री समस्याओं का यथार्थ चित्रण कथा साहित्य में मिलता है। यह विधा सामाजिक विमर्श और जागरूकता का सशक्त माध्यम बनी है।

5.2 उद्देश्य

- कथा साहित्य और समाज के सैद्धांतिक संबंध को समझना तथा समाज के दर्पण के रूप में इसकी भूमिका जानना।
- गरीबी, सामंती-पूँजीवादी शोषण और जातिवाद के चित्रण का अध्ययन करना और इसके सामाजिक प्रभाव को समझना।
- स्त्री समस्या के परंपरागत और आधुनिक चित्रण का विश्लेषण करना तथा सामाजिक परिवर्तन में योगदान जानना।

5.3 कथा साहित्य और समाज का संबंध समस्याओं का चित्रण

1. कथा साहित्य और समाज का संबंध: सैद्धांतिक आधार

कथा साहित्य और समाज का संबंध इतना गहरा और अंतर्निहित है कि एक को दूसरे से अलग करके देखना संभव नहीं है। साहित्य, जिसमें कथा विधा सबसे अधिक लोकव्यापी है, समाज की उपज है, उसकी अभिव्यक्ति है और साथ ही उसका मार्गदर्शक भी है। साहित्य और समाज के बीच यह संबंध एक द्वि-ध्रुवीय प्रक्रिया के रूप में कार्य करता है।

कला और जीवन का सिद्धांत

भारतीय काव्यशास्त्र में साहित्य के उद्देश्य को चतुर्वर्ग फल प्राप्ति (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष) से जोड़ा गया है, जिसका सीधा अर्थ है कि साहित्य जीवन के नैतिक उत्थान से जुड़ा है। पश्चिमी साहित्य में भी, यथार्थवादी आंदोलन (Realism) ने साहित्य को सीधे समाज के सामने खड़ा कर दिया। कथा साहित्य समाज का अपरिहार्य अंग है। यह न केवल उसके अतीत और वर्तमान को सुरक्षित रखता है, बल्कि उसके भविष्य के निर्माण में भी एक नैतिक शक्ति के रूप में कार्य करता है। यह विधा समाज को आत्म-चिंतन और आत्म-सुधार के लिए प्रेरित करती है।

2. समाज का दर्पण: यथार्थवाद की कसौटी पर कथा साहित्य

कथा साहित्य को अक्सर 'समाज का दर्पण' कहा जाता है, लेकिन यह उपमा केवल सतही प्रतिबिंबन (Superficial reflection) तक सीमित नहीं है। यह दर्पण समाज के बाह्य रूप के साथ-साथ उसकी आंतरिक आत्मा, विकृतियों और सपनों को भी दर्शाता है।

दर्पण सिद्धांत का विस्तार: कथा साहित्य का दर्पण दो प्रकार से कार्य करता है:

1. वस्तुनिष्ठ प्रतिबिंब (Objective Reflection): यह समाज में घटित होने वाली घटनाओं, रीति-रिवाजों, रहन-सहन, वेशभूषा और भाषा का निष्पक्ष चित्रण करता है। जैसे फणीश्वरनाथ 'रेणु' का आंचलिक उपन्यास 'मैला आँचल' किसी विशिष्ट क्षेत्र की भौगोलिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक सच्चाइयों को ज्यों का त्यों प्रस्तुत करता है।
2. आत्मनिष्ठ अंतर्दर्शन (Subjective Introspection): साहित्य केवल वही नहीं दिखाता जो है, बल्कि वह दिखाता है कि इन सामाजिक परिस्थितियों का व्यक्ति के मन पर क्या प्रभाव पड़ रहा है। यह सामाजिक यथार्थ को मनोवैज्ञानिक यथार्थ में रूपांतरित करता है। उदाहरण के लिए, एक गरीब किसान का चित्रण केवल उसकी गरीबी नहीं दिखाता, बल्कि उस गरीबी से उपजी उसकी आत्मग्लानि, संघर्ष और टूटी हुई आशाओं को भी दर्शाता है।

यथार्थवाद की कसौटी

यथार्थवाद ही वह कसौटी है जिस पर कथा साहित्य के दर्पण की प्रामाणिकता को परखा जाता है।

- आदर्शोन्मुख यथार्थवाद: प्रेमचंद ने यथार्थवाद को अपनाया, लेकिन कहानी को निराशावादी अंत से बचाने के लिए आदर्शों (हृदय परिवर्तन, नैतिक विजय) का समावेश किया। 'गोदान' में होरी का दुख यथार्थ है, लेकिन अंत में धनिया का होरी की ओर से किया गया गऊदान आदर्श की स्थापना है।
- शुद्ध यथार्थवाद: प्रगतिवादी लेखकों (यशपाल, रांगेय राघव) ने सामाजिक यथार्थ को उसके कठोरतम रूप में प्रस्तुत किया, बिना किसी आदर्श या मीठे अंत के। उनकी रचनाएँ समाज की विडंबनाओं और अन्याय को नग्न रूप में सामने रखती हैं।
- मनोवैज्ञानिक यथार्थवाद: जैनेंद्र और अज्ञेय जैसे लेखकों ने बाहरी सामाजिक यथार्थ से हटकर व्यक्ति के आंतरिक, मानसिक यथार्थ का चित्रण किया, जहाँ सामाजिक दबाव व्यक्ति के मन में किस तरह द्वंद्व पैदा करते हैं।

कथा साहित्य का दर्पण इसलिए भी महत्त्वपूर्ण है क्योंकि यह समाज के उन कोनों को भी प्रकाशित करता है जो मुख्यधारा की राजनीति या मीडिया से अछूते रह जाते हैं। यह हाशिए पर पड़े लोगों (Marginalized) के जीवन को केंद्रीय विमर्श में लाता है।

3. सामाजिक चेतना का निर्माण: कथा साहित्य की भूमिका

कथा साहित्य का कार्य केवल समाज के यथार्थ को प्रतिबिंबित करना नहीं है, बल्कि उस यथार्थ के प्रति लोगों में जागरूकता उत्पन्न करना और सामूहिक चेतना का निर्माण करना भी है। यह साहित्य का सृजनात्मक पक्ष है।

चेतना निर्माण के तीन स्तर

1. पहचान की चेतना: कथा साहित्य हाशिए पर पड़े वर्गों को यह एहसास कराता है कि वे अकेले नहीं हैं। जब कोई दलित या स्त्री पात्र अपने संघर्षों को कथा में

देखता है, तो उसे अपनी सामूहिक पहचान का बोध होता है। दलित साहित्य ने दलितों में अपनी अस्मिता और अधिकारों के प्रति इसी चेतना का निर्माण किया है।

2. प्रश्न करने की चेतना : कथा साहित्य रूढ़िवादिता और स्थापित सामाजिक मूल्यों पर प्रश्नचिह्न लगाता है। 'गोदान' केवल किसान का जीवन नहीं, बल्कि यह प्रश्न करता है कि होरी जैसे मेहनती और ईमानदार व्यक्ति को क्यों मरना पड़ता है? यह प्रश्न व्यवस्था, धर्म और समाज की जड़ता पर एक प्रहार है, जो पाठक को सोचने पर विवश करता है।
3. परिवर्तन की चेतना: चेतना का अंतिम चरण है क्रिया (Action)। साहित्य सीधे क्रांति नहीं ला सकता, लेकिन वह क्रांति के लिए मनुष्य के मन को तैयार करता है। प्रेमचंद और प्रगतिवादी लेखकों ने यह चेतना दी कि यह शोषणकारी व्यवस्था स्थायी नहीं है और इसे बदला जा सकता है।

कथा साहित्य और नैतिक मूल्य

कथा साहित्य अक्सर पात्रों के माध्यम से नैतिक दुविधाओं को प्रस्तुत करता है। पाठक पात्रों के संघर्ष, सही-गलत के उनके चयन और उनके परिणामों को देखकर सामूहिक रूप से नैतिक मूल्यों को आत्मसात करता है। जब पाठक किसी नायक के त्याग और बलिदान को देखता है, तो वह सहानुभूति (Empathy) विकसित करता है, जो सामाजिक चेतना का मूल आधार है। कथा साहित्य एक निष्क्रिय दर्पण नहीं, बल्कि एक सक्रिय प्रयोगशाला है, जहाँ सामाजिक चेतना का निर्माण होता है और मानवीय मूल्यों को पुनर्जीवित किया जाता है।

4. भारतीय कथा साहित्य में गरीबी का महाकाव्यिक चित्रण

भारतीय समाज की सबसे मूलभूत और व्यापक समस्या गरीबी रही है। कथा साहित्य ने इस गरीबी को केवल एक आर्थिक समस्या के रूप में नहीं, बल्कि मानवीय त्रासदी और सांस्कृतिक विडंबना के रूप में चित्रित किया है।

प्रेमचंद और गरीबी का राष्ट्रीय दस्तावेज

प्रेमचंद ने गरीबी को भारतीय कथा साहित्य का केंद्रीय विषय बनाया। उनके लिए गरीबी केवल पैसे का अभाव नहीं, बल्कि मानवीय गरिमा का पतन था।

- 'गोदान': यह भारतीय गरीबी का महाकाव्य है। होरी का जीवन इस बात का प्रतीक है कि भारतीय किसान अपनी पूरी मेहनत, ईमानदारी और जीवन को दाँव पर लगाने के बावजूद कर्ज, शोषण और अपमान से मुक्ति नहीं पा सकता। होरी का 'गऊदान' करने का सपना केवल आर्थिक नहीं, बल्कि सामाजिक सम्मान प्राप्त करने का सपना है, जो अंततः टूट जाता है।
- 'पूस की रात': यह कहानी दिखाती है कि गरीबी कैसे व्यक्ति को सर्दी से बचने के लिए अपने खेती के अधिकार (फसल) को छोड़ने पर मजबूर कर देती है। हल्कू की स्थिति भौतिक गरीबी के साथ मानसिक पराजय को दर्शाती है।
- 'कफन': यह कहानी गरीबी के चरम और विकृत रूप का चित्रण करती है, जहाँ भूख और निराशा मनुष्य को नैतिकता से भी वंचित कर देती है। घीसू और माधव गरीबी की उस अवस्था में पहुँच चुके हैं, जहाँ उनके लिए बेटी के कफन से ज्यादा जरूरी पेट की आग बुझाना हो जाता है।

प्रेमचंदोत्तर कथाओं में गरीबी

प्रेमचंद के बाद भी लेखकों ने गरीबी का चित्रण जारी रखा, लेकिन अब फोकस ग्रामीण गरीबी से हटकर शहरी गरीबी और उसके मनोवैज्ञानिक प्रभावों पर केंद्रित हो गया।

- शहरी गरीबी: अमरकांत की कहानियों में मध्यम वर्ग की गरीबी का चित्रण है, जहाँ व्यक्ति ईमानदारी और स्वाभिमान बनाए रखने के लिए संघर्ष करता है।
- भूख का आतंक: कमलेश्वर की 'राजा निरबंसिया' और भीष्म साहनी की 'चीफ की दावत' जैसी कहानियाँ दिखाती हैं कि गरीबी और भूख किस तरह पारिवारिक रिश्तों और मानवीय मूल्यों को तोड़ने पर मजबूर कर देती है। कथा साहित्य में गरीबी का चित्रण न केवल एक समस्या का बयान है, बल्कि यह अर्थव्यवस्था, शोषण और सामाजिक संरचना के बीच के जटिल संबंधों को भी उजागर करता है।

5. सामंती और पूँजीवादी शोषण: कथा साहित्य में विरोध का स्वर

शोषण भारतीय सामाजिक संरचना का एक अभिन्न अंग रहा है। कथा साहित्य ने इस शोषण को **सामंती व्यवस्था** (जमींदार, महाजन) और **आधुनिक पूँजीवादी व्यवस्था** (मिल मालिक, ठेकेदार) दोनों रूपों में चित्रित किया है, जिससे समाज में **वर्ग-चेतना** का उदय हुआ।

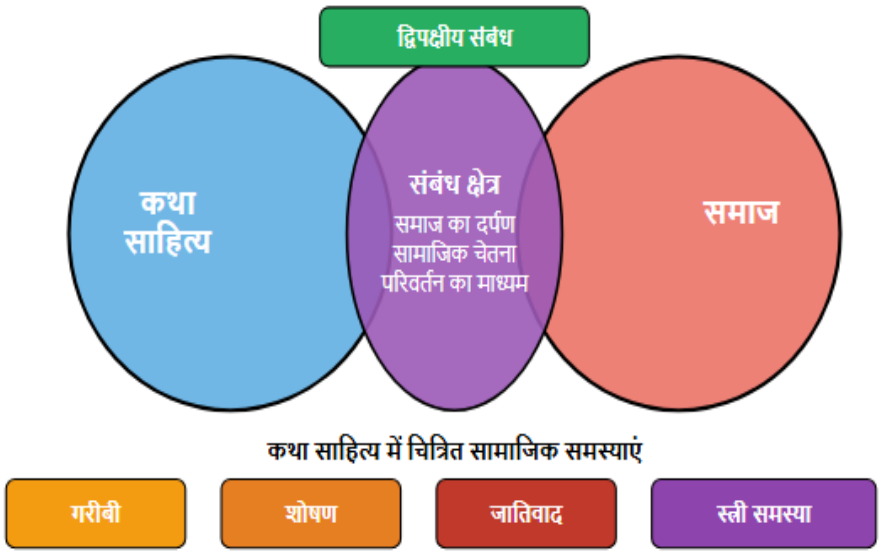

चित्र 1.9: कथा साहित्य और समाज का संबंध

सामंती शोषण का चित्रण

सामंती शोषण कथा साहित्य का सबसे प्रारंभिक और व्यापक विषय रहा है।

- जमींदार और महाजन: प्रेमचंद की कहानियाँ और उपन्यास जमींदारों की क्रूरता, महाजनों की सूदखोरी और सरकारी अधिकारियों की मिलीभगत से बने उस शोषणकारी त्रिकोण का चित्रण करते हैं, जिसने किसान को जन्म से मृत्यु तक कर्ज और गुलामी में बांध रखा था।
  - 'गोदान' में रायसाहब (सामंत) और दातादीन (महाजन) जैसे पात्र किसानों का खून चूसने वाले उन सामाजिक प्रतिनिधियों के प्रतीक हैं, जिन्होंने धर्म और न्याय की आड़ में शोषण किया।

- **बेगारी और अपमान: रांगेय राघव** की कथाएँ भी इस शोषणकारी व्यवस्था के तहत किसानों पर होने वाले **अमानवीय व्यवहार**, **बेगारी** (बिना मजदूरी के काम) और **सामाजिक अपमान** को दर्शाती हैं।

पूँजीवादी शोषण का चित्रण

आधुनिक काल में, कथा साहित्य ने सामंती शोषण से हटकर पूँजीवादी शोषण की ओर ध्यान केंद्रित किया, जहाँ शोषण का तरीका बदल गया, लेकिन उसका सार वही रहा।

- मिल मजदूर और श्रमिक: यशपाल और उग्र जैसे प्रगतिवादी लेखकों ने कारखानों और मिलों में काम करने वाले मजदूरों के जीवन, उनकी अमानवीय कार्य दशाओं, कम वेतन और हड़तालों का चित्रण किया।
- नौकरशाही और भ्रष्टाचार: शहरी जीवन पर आधारित कथाओं में, शोषण अब केवल पैसे का नहीं, बल्कि अधिकार का भी हो गया। सरकारी दफ्तरों में व्याप्त भ्रष्टाचार, अयोग्य लोगों का सत्ता में आना और ईमानदार व्यक्ति की घुटन (जैसे राजेन्द्र यादव की कहानियों में) पूँजीवादी व्यवस्था के ही विकृत रूप हैं।
- सांकेतिक शोषण: अज्ञेय और निर्मल वर्मा ने उस मनोवैज्ञानिक शोषण को दर्शाया जहाँ व्यक्ति बाजार और उपभोक्तावाद की अंधी दौड़ में अपनी पहचान खो देता है।

कथा साहित्य ने शोषण को केवल एक समस्या के रूप में नहीं, बल्कि एक वर्ग की दूसरे वर्ग पर शक्ति के रूप में चित्रित किया, जिससे पाठक में व्यवस्था-विरोधी चेतना विकसित हुई।

6. जातिवाद की जड़ें और कथा साहित्य का प्रहार

जातिवाद भारतीय समाज की सबसे गहरी और कलंकित समस्या है। कथा साहित्य ने सदियों से चली आ रही इस सामाजिक विषमता को उजागर करने और इसके विरुद्ध जनमत तैयार करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

प्रारंभिक कथाओं में जातिवाद का चित्रण: शुरुआती कथाकारों ने जातिवाद को छुआछूत और रूढ़िगत परंपरा के रूप में दर्शाया।

- प्रेमचंद: प्रेमचंद ने जातिवाद को मानवीय समस्या के रूप में देखा। उनकी कहानी 'सद्गति' में, दुखिया नामक पात्र की मृत्यु केवल भुखमरी से नहीं होती, बल्कि ब्राह्मणों की जातिवादी क्रूरता और छुआछूत के कारण होती है, जो उस दलित को इतनी भी जगह नहीं देते कि वह जीवित रह सके।
- सामाजिक सुधार: भारतेंदु युग के सुधारवादी उपन्यासों में भी बाल विवाह और अस्पृश्यता जैसी कुरीतियों पर प्रहार किया गया, हालांकि ये प्रहार ऊपरी और आदर्शवादी अधिक थे।

दलित विमर्श और कथा साहित्य का क्रांतिकारी रूप

1990 के दशक के बाद कथा साहित्य में दलित विमर्श (Dalit Discourse) का उदय हुआ, जिसने जातिवाद पर सबसे तीखा और प्रामाणिक प्रहार किया।

1. अनुभूत सत्य: दलित लेखकों ने अपने वास्तविक, भोगे हुए अनुभवों को कथा के केंद्र में रखा। ओमप्रकाश वाल्मीकि की आत्मकथात्मक कृति 'जूठन' केवल एक कहानी नहीं है, बल्कि दलित जीवन के अपमान, हिंसा और शैक्षणिक संघर्ष का एक ज्वलंत दस्तावेज है।
2. सवर्ण कथाकारों का आत्म-चिंतन: समकालीन सवर्ण लेखकों ने भी अब जातिवाद को ब्राह्मणवादी वर्चस्व के रूप में देखते हुए आत्म-चिंतन करना शुरू किया है, जहाँ वे अपने समाज की इस विकृति पर प्रश्न उठाते हैं। विभूति नारायण राय और संजीव जैसे लेखकों ने जातिगत हिंसा और राजनीतिकरण को दर्शाया है।

कथा साहित्य का प्रहार

कथा साहित्य ने जातिवाद पर प्रहार करके निम्नलिखित चेतना दी:

- जातिवाद केवल एक व्यक्तिगत समस्या नहीं, बल्कि एक संरचनात्मक समस्या है जो शिक्षा, अर्थव्यवस्था और राजनीति में गहराई से पैठी हुई है।

- इसने दलितों की आवाज को मुख्यधारा में लाकर उन्हें शोषित से संघर्षशील नायक के रूप में स्थापित किया।

कथा साहित्य ने सिद्ध किया कि जातिवाद भारतीय समाज का सबसे बड़ा अंतर्विरोध है, और जब तक यह समाप्त नहीं होता, तब तक भारतीय समाज का पूर्ण विकास संभव नहीं है।

7. स्त्री समस्या: पितृसत्ता और अस्मिता का संघर्ष (परंपरागत चित्रण)

भारतीय कथा साहित्य का एक बड़ा हिस्सा स्त्री समस्याओं के चित्रण पर केंद्रित रहा है। पितृसत्ता (Patriarchy) भारतीय समाज की वह केंद्रीय शक्ति रही है जिसने स्त्री को हमेशा अधीनस्थ और द्वितीयक बनाकर रखा।

प्रेमचंद युग में स्त्री का चित्रण

प्रेमचंद ने स्त्री समस्याओं को दहेज, बाल विवाह, विधवा जीवन और पुरुषों द्वारा शोषण के रूप में देखा।

- आदर्श नारी: प्रेमचंद की शुरुआती कहानियों में तुलसी या सीता जैसी आदर्शवादी नारियाँ हैं जो पति के लिए त्याग करती हैं।
- पीड़ित नारी: बाद के उपन्यासों में निर्मला (दहेज, बेमेल विवाह) और धनिया (गोदान में किसान स्त्री का संघर्ष) जैसी नारियाँ हैं जो सामाजिक बुराइयों और गरीबी की शिकार हैं। उनकी चेतना पुरुष पात्रों के संघर्ष से जुड़ी हुई है।
- वेश्या समस्या: 'सेवासदन' जैसे उपन्यासों में वेश्यावृत्ति को सामाजिक समस्या के रूप में चित्रित किया गया, जहाँ समाज और पुरुष ही स्त्री को इस दलदल में धकेलते हैं।

छायावादोत्तर कथाओं में वैयक्तिक समस्या

प्रेमचंद के बाद स्त्री समस्या का चित्रण सामाजिक से अधिक मनोवैज्ञानिक हो गया।

- जैनेंद्र कुमार: जैनेंद्र ने स्त्री के मनोभावों, प्रेम, ईर्ष्या और पुरुष से अलग पहचान बनाने के आंतरिक संघर्ष पर ध्यान दिया (सुनीता, त्यागपत्र, कल्याणी)।

- मनुष्य के रूप में स्त्री: इस काल के लेखकों ने स्त्री को केवल पत्नी या माँ के रूप में नहीं, बल्कि एक स्वतंत्र इच्छा वाली मनुष्य के रूप में चित्रित करना शुरू किया।

इस दौर में, कथा साहित्य ने पहली बार प्रश्न उठाया कि क्या स्त्री का अस्तित्व केवल पारिवारिक भूमिकाओं तक सीमित है, या उसकी अपनी कोई स्वतंत्र अस्मिता भी है।

8. आधुनिक कथा में नारी की नई पहचान और विमर्श (समकालीन नारीवाद)

सन् 1960 के बाद से समकालीन कथा साहित्य में स्त्री विमर्श (Feminist Discourse) का उदय हुआ, जिसने स्त्री समस्याओं के चित्रण को एक नया, क्रांतिकारी आयाम दिया।

स्त्री विमर्श का केंद्रीय विषय

अब स्त्री समस्या केवल दहेज या विधवापन तक सीमित नहीं रही, बल्कि वह समान अधिकार, कामुकता, शरीर पर अधिकार, यौन हिंसा और आंतरिक स्वतंत्रता के मुद्दों पर केंद्रित हो गई।

1. पितृसत्ता की जड़ें: कृष्णा सोबती (मित्रो मरजानी), मन्नू भंडारी (आपका बंटी), और मृदुला गर्ग (चित्तकोबरा) जैसे लेखकों ने पितृसत्ता की उन सूक्ष्म जड़ों पर प्रहार किया जो घर, रसोई और बेडरूम में छिपी हुई हैं। आपका बंटी' में, माता-पिता के तलाक में बच्चे की उपेक्षा को दर्शाया गया, जहाँ माँ का कैरियर और पिता का अहंकार बच्चे के जीवन को तोड़ देता है।
2. यौनिकता और देह का विमर्श: लेखिकाओं ने स्त्री की कामुकता को एक स्वस्थ मानवीय इच्छा के रूप में चित्रित किया, जिसे पुरुषवादी समाज ने हमेशा वर्जित माना। कृष्णा सोबती की कथाओं में स्त्री को अपनी देह और इच्छाओं के प्रति मुखर दिखाया गया है।
3. संबंधों की टूटन: उषा प्रियंवदा (रुकोगी नहीं राधिका) और कमलेश्वर ने दांपत्य जीवन के टूटते संबंधों, शहरी अकेलेपन और अजनबीपन को दर्शाया, जहाँ आधुनिक स्त्री अपनी स्वतंत्रता और पारिवारिक जिम्मेदारी के बीच संघर्ष करती है।

कथा साहित्य का योगदान

स्त्री विमर्श पर आधारित कथा साहित्य ने समाज को यह चेतना दी कि:

- पुरुष और स्त्री के बीच का संबंध अधिकार का नहीं, बल्कि समानता और सहभागिता का होना चाहिए।
- स्त्री केवल भावनात्मक उपमान नहीं, बल्कि एक बौद्धिक और आर्थिक रूप से स्वतंत्र इकाई है।

कथा साहित्य ने स्त्री को पीड़ित से संघर्षशील और अंततः निर्णय लेने वाली नायिका के रूप में रूपांतरित किया।

9. सामाजिक परिवर्तन के वाहक के रूप में कथा साहित्य

कथा साहित्य समाज का केवल दर्पण नहीं है, बल्कि यह सामाजिक परिवर्तन (Social Change) का एक शक्तिशाली और सूक्ष्म वाहक भी है। यह परिवर्तन बाहरी दबाव से नहीं, बल्कि आंतरिक बोध से शुरू होता है।

साहित्य और समाजशास्त्रीय परिवर्तन

1. जनमत का निर्माण: कथा साहित्य कहानियों और पात्रों के माध्यम से एक सामूहिक चेतना (Collective Opinion) का निर्माण करता है। जब लाखों लोग गोदान पढ़ते हैं, तो उनके मन में किसान के शोषण के प्रति सहानुभूति और रोष उत्पन्न होता है। यह रोष अंततः राजनीतिक और सामाजिक सुधारों की माँग को जन्म देता है।
2. मानसिकता में बदलाव: सबसे बड़ा परिवर्तन व्यक्ति की मानसिकता में आता है। जब साहित्य अंधविश्वास, जातिवाद या पितृसत्ता का चित्रण करता है, तो पाठक आत्म-समीक्षा करता है। उदाहरण के लिए, स्त्री विमर्श पर आधारित कथाएँ पुरुषों को अपनी पितृसत्तात्मक आदतों पर प्रश्न उठाने के लिए विवश करती हैं।
3. आंदोलनों को प्रेरणा: कथा साहित्य ने कई सामाजिक और राजनीतिक आंदोलनों को वैचारिक आधार दिया है। प्रगतिशील लेखक संघ ने साहित्य को क्रांति का एक हिस्सा माना।

कथा साहित्य का धीमा, किंतु गहरा प्रभाव

इतिहास या राजनीति की तुलना में, कथा साहित्य का प्रभाव धीमा होता है, लेकिन वह ज्यादा गहरा होता है। यह व्यक्ति के हृदय में प्रवेश करता है और भावनाओं को आंदोलित करता है। एक अच्छी कहानी तर्कों से ज्यादा विश्वास पैदा कर सकती है, जो सामाजिक परिवर्तन के लिए सबसे जरूरी है। कथा साहित्य समाज को उस स्वप्न से परिचित कराता है जिसे वह देखना चाहता है—एक न्यायपूर्ण, समतामूलक और मानवीय समाज का स्वप्न।

5.4 सारांश

कथा साहित्य समाज की समस्याओं का प्रामाणिक दस्तावेज है और सामाजिक चेतना का निर्माण करता है। गरीबी, शोषण, जातिवाद और स्त्री उत्पीड़न का यथार्थ चित्रण इसमें मिलता है। प्रेमचंद से लेकर समकालीन लेखकों ने कथा साहित्य को सामाजिक परिवर्तन का माध्यम बनाया और हाशिए के समूहों को वाणी दी।

5.5 इकाई अंत अभ्यास

1. कथा साहित्य को 'समाज का दर्पण' कहना कहाँ तक उचित है? तर्क सहित विवेचना कीजिए।
2. प्रेमचंद के साहित्य में गरीबी और शोषण के चित्रण का विश्लेषण प्रासंगिक उदाहरणों से कीजिए।
3. परंपरागत और आधुनिक कथा साहित्य में स्त्री समस्या के चित्रण की तुलनात्मक समीक्षा प्रस्तुत कीजिए।

5.6 संदर्भ एवं अनुसंशित पठन सामाग्री

1. सिंह दिनकर रामधारी, साहित्य और समाज, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबादप्रकाशन वर्ष 2008.
2. सिंह बच्चन,साहित्य का समाजशास्त्र, , दिल्ली लोकभारती प्रकाशन प्रकाशन वर्ष 2010.
3. मुंशी प्रेमचंद. मानसरोवर (भाग 1–8). वाराणसी: सरस्वतीप्रेस, 1932।

अपनी प्रगति की जाँच करें

1. **आधुनिक कथा साहित्य में यथार्थवाद की प्रवृत्ति का मूल्यांकन कीजिए**

---

2. **आधुनिक हिंदी कथा साहित्य में स्त्री-चेतना और नारी-विमर्श की अभिव्यक्ति पर विचार कीजिए।**

इकाई 6 कथा साहित्य में मनोवैज्ञानिक एवं समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण

संरचना

6.1 परिचय
6.2 उद्देश्य
6.3 मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण
6.4 समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण
6.5 सारांश
6.6 इकाई अंत अभ्यास
6.7 संदर्भ एवं अनुसंशित पठन सामाग्री

6.1 परिचय

साहित्यिक आलोचना में मनोवैज्ञानिक और समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण मानव मन की जटिलताओं को समझता है जबकि समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण सामाजिक संरचना और वर्ग संबंधों पर केंद्रित है। दोनों दृष्टिकोण साहित्य की गहन व्याख्या में सहायक हैं।

6.2 उद्देश्य

- मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण की अवधारणा, फ्रायड और यूंग के सिद्धांतों का साहित्य में अनुप्रयोग समझना।
- चरित्र विश्लेषण, मनोद्वंद्व और चेतना प्रवाह तकनीक का अध्ययन करना और इसके साहित्यिक महत्व को जानना।
- समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण, वर्ग संरचना और सामाजिक संबंधों के चित्रण का विश्लेषण करना तथा दोनों का समन्वय समझना।

6.3 मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण

मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण साहित्यिक आलोचना की वह पद्धति है जो साहित्यकृति की व्याख्या, विश्लेषण और मूल्यांकन के लिए मानव मनोविज्ञान के सिद्धांतों और निष्कर्षों का सहारा लेती है।

चरित्र विश्लेषण : फ्रायड और यूंग के सिद्धांतों का अनुप्रयोग

मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण का सबसे प्रभावी अनुप्रयोग चरित्र विश्लेषण (Character Analysis) में दिखाई देता है। इस पद्धति में पात्रों के कार्य और व्यवहार को उनके अवचेतन प्रेरणाओं के आधार पर समझा जाता है।

उसके ईड के प्रभुत्व का संकेत हो सकता है। पात्रों के असाधारण भय (Phobias), स्वप्न और ज़ुबान फिसलने (Slips of the Tongue) जैसी चीज़ों का विश्लेषण करके उनके दबे हुए मनोद्वंद्वों को उजागर किया जाता है। यूँग का योगदान आर्केटाइप (Archetype) या आदिम-रूप की अवधारणा में है। यूंग के अनुसार, मानव जाति की सामूहिक अवचेतन (Collective Unconscious) में कुछ आदिम छवियाँ (जैसे नायक, छाया, बूढ़ा समझदार, माता) बसी हुई हैं, जो विभिन्न संस्कृतियों के साहित्य में पुनरावृत्त होती रहती हैं। मनोवैज्ञानिक चरित्र विश्लेषण पात्रों को केवल व्यक्ति न मानकर उन्हें इन आर्केटाइपों के प्रतिनिधि के रूप में देखता है। उदाहरण के लिए, किसी साहित्यकृति में अंधेरे और रहस्यमय पात्र को 'छाया आर्केटाइप' का प्रकटीकरण माना जा सकता है। यह दृष्टिकोण चरित्रों की जटिलता को मनोवैज्ञानिक गहराई प्रदान करता है, जिससे उनकी प्रेरणाएँ केवल सामाजिक या नैतिक न होकर अस्तित्वगत और आंतरिक हो जाती हैं।

मनोद्वंद्व (Inner Conflict) का अध्ययन: व्यक्तित्व की आंतरिक जटिलताएँ और रचनात्मकता

मनोद्वंद्व (Inner Conflict) मनोवैज्ञानिक आलोचना का एक अनिवार्य विषय है, जो पात्रों के मन में चल रहे आंतरिक संघर्षों का सूक्ष्म अध्ययन करता है। यह द्वंद्व अक्सर ईड और सुपरईगो के बीच, कर्तव्य और इच्छा के बीच, या प्रेम और घृणा जैसी विरोधाभासी भावनाओं के बीच उत्पन्न होता है। यह मनोद्वंद्व ही चरित्र को गतिशील और मानवीय बनाता है। महान साहित्य, चाहे वह शेक्सपियर का हैमलेट हो या प्रेमचंद का होरी, अपने पात्रों के तीव्र आंतरिक संघर्षों के कारण ही अमर होते हैं। मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण इस द्वंद्व को केवल भावनात्मक उथल-पुथल न मानकर इसे मानसिक ऊर्जा के प्रवाह के रूप में देखता है। मनोद्वंद्व के माध्यम से ही मानसिक रक्षा तंत्र (Defense Mechanisms) जैसे दमन (Repression), प्रक्षेपण (Projection) और उदात्तीकरण (Sublimation) का अध्ययन किया जाता है। उदात्तीकरण (Sublimation) का सिद्धांत तो सीधे तौर पर रचनात्मकता से जुड़ता है। इसके अनुसार, कलाकार अपनी अस्वीकृत या दबी हुई यौन/आक्रामक ऊर्जा को सकारात्मक और सामाजिक रूप से प्रशंसनीय कलात्मक अभिव्यक्ति में बदल देता है। इस प्रकार, कवि या लेखक का सृजन कर्म उसके अनसुलझे मनोद्वंद्वों को

कलात्मक रूप से हल करने का प्रयास बन जाता है। मनोद्वंद्व का अध्ययन यह भी दर्शाता है कि आधुनिक साहित्य में नायक अक्सर बाह्य संघर्षों (जैसे युद्ध या गरीबी) से अधिक आंतरिक अनिश्चितता, अकेलेपन और पहचान के संकट से जूझते हैं, जो आधुनिक मनुष्य की मनोवैज्ञानिक स्थिति को प्रतिबिंबित करता है।

चेतना प्रवाह: शिल्प और तकनीक के रूप में मनोवैज्ञानिक अभिव्यक्ति

चेतना प्रवाह (Stream of Consciousness) एक विशिष्ट साहित्यिक तकनीक है जो मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण की सीधी और प्रत्यक्ष अभिव्यक्ति है। यह वह शिल्प है जिसके माध्यम से लेखक पात्र के मन में चल रही विचारों, भावनाओं, स्मृतियों और संवेदी अनुभवों की अव्यवस्थित और निरन्तर प्रवाहमान धारा को हूबहू प्रस्तुत करता है। यह तकनीक इस मनोवैज्ञानिक मान्यता पर आधारित है कि मानव मन तार्किक और सुव्यवस्थित ढंग से नहीं सोचता, बल्कि विचारों का प्रवाह हमेशा अव्यवस्थित, टूटे हुए और अचानक बदलता रहता है। इस तकनीक का प्रयोग मुख्य रूप से जेम्स जॉयस (James Joyce), वर्जीनिया वूल्फ (Virginia Woolf) और हिंदी में अज्ञेय जैसे लेखकों ने किया। चेतना प्रवाह के प्रयोग से कहानी की कथावस्तु अक्सर अरेखीय (Non-linear) हो जाती है, और समय का बोध आंतरिक अनुभव पर निर्भर करता है, न कि घड़ी की सुई पर। यह तकनीक पात्रों के अवचेतन तक पहुँचने का सबसे सीधा रास्ता खोलती है। इसके माध्यम से, पाठक पात्र के निजी, अनफ़िल्टर्ड और तात्कालिक विचारों का साक्षी बनता है, जिससे उसके मनोवैज्ञानिक सत्य को अधिक गहराई से समझा जा सकता है। चेतना प्रवाह, इसलिए, केवल एक शिल्पगत कौशल नहीं है, बल्कि यह मनोवैज्ञानिक यथार्थवाद को व्यक्त करने का एक मौलिक तरीका है, जो साहित्य को मानवीय मन की प्रयोगशाला में बदल देता है, जहाँ तर्क और व्यवस्था के बजाय अनुभूति और अंतर्ज्ञान का राज होता है।

6.4 समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण

समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण साहित्यिक आलोचना की वह पद्धति है जो साहित्यकृति को उसके सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक संदर्भ में विश्लेषित करती है। यह दृष्टिकोण इस मूलभूत सिद्धांत पर आधारित है कि साहित्य समाज से उत्पन्न होता है, समाज को प्रतिबिंबित करता है, और बदले में समाज को प्रभावित भी करता है। यह

संबंध एकतरफा नहीं, बल्कि द्वंद्वात्मक (Dialectical) होता है। समाजशास्त्रीय आलोचना का आधार मुख्य रूप से कार्ल मार्क्स (Karl Marx) के सिद्धांतों पर टिका है, लेकिन इसमें समाजशास्त्रियों जैसे मैक्स वेबर (Max Weber) और एमिल दुर्खीम (Emile Durkheim) की अंतर्दृष्टि भी शामिल है। यह दृष्टिकोण साहित्य में चित्रित वर्ग संघर्ष, सामाजिक संस्थाएँ, शक्ति संबंध, विचारधारा (Ideology) और सामाजिक परिवर्तन के तत्वों पर ध्यान केंद्रित करता है। यह प्रश्न करता है कि साहित्य किस वर्ग के हितों का प्रतिनिधित्व करता है, यह सामाजिक विषमताओं को कैसे दिखाता है, और यह स्थापित सामाजिक मानदंडों को चुनौती देता है या उनका समर्थन करता है। समाजशास्त्रीय आलोचना यह मानती है कि कोई भी साहित्यकृति अपने समय और समाज से अलग नहीं हो सकती। चाहे लेखक का इरादा कुछ भी हो, उसकी रचना अनिवार्य रूप से उसके सामाजिक परिवेश की छाप लिए होती है। इस पद्धति का उद्देश्य साहित्य को कला के स्वायत्त क्षेत्र से निकालकर उसे सामाजिक शक्तियों के अंतःक्रिया के रूप में देखना है, जिससे यह सिद्ध होता है कि साहित्य मानव इतिहास और सामाजिक विकास का एक महत्वपूर्ण दस्तावेज है।

समाज और साहित्य: रचना पर सामाजिक परिस्थितियों का प्रभाव

समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण में समाज और साहित्य का संबंध केंद्रीय है, जहाँ साहित्य को सामाजिक परिस्थितियों का उत्पाद और व्याख्याता माना जाता है। किसी भी युग का साहित्य उस युग के आर्थिक ढांचे, राजनीतिक वातावरण, धार्मिक विश्वासों और नैतिक मूल्यों से अनिवार्य रूप से प्रभावित होता है। उदाहरण के लिए, भक्ति काल का साहित्य उस समय के सामंती उत्पीड़न और धार्मिक रूढ़िवादिता के विरुद्ध जन-असंतोष और सामाजिक समानता की भावना को दर्शाता है। प्रेमचंद का लेखन सामंती व्यवस्था के पतन और पूँजीवाद के उदय के दौरान भारतीय किसान और मजदूर के शोषण का सीधा परिणाम था। समाजशास्त्रीय आलोचक यह विश्लेषण करते हैं कि लेखक का सामाजिक वर्ग उसकी रचनाओं को कैसे प्रभावित करता है। वे लेखक को 'जनता का प्रवक्ता' या 'वर्ग चेतना का वाहक' मानते हैं। वे यह भी देखते हैं कि किसी साहित्यकृति का उत्पादन, वितरण और उपभोग किस प्रकार होता है, क्योंकि यह प्रक्रिया भी सामाजिक संरचना द्वारा नियंत्रित होती है। साहित्य न केवल वर्तमान समाज को प्रतिबिंबित करता है, बल्कि वह सामाजिक परिवर्तन की संभावनाओं को भी जन्म

देता है। यह लोगों को उनके उत्पीड़न के बारे में जागरूक करता है, उन्हें प्रतिरोध के लिए प्रेरित करता है, और इस प्रकार समाज सुधार में एक सक्रिय भूमिका निभाता है। समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण साहित्य को केवल व्यक्तिगत प्रतिभा का चमत्कार नहीं मानता, बल्कि एक सामूहिक सामाजिक प्रक्रिया के परिणाम के रूप में देखता है।

वर्ग संरचना (Class Structure) का चित्रण: मार्क्सवादी सिद्धांत और साहित्य

वर्ग संरचना (Class Structure) का अध्ययन समाजशास्त्रीय आलोचना का एक सबसे सशक्त और विवादास्पद पहलू है, जो मुख्य रूप से मार्क्सवादी साहित्य सिद्धांत से प्रेरित है। कार्ल मार्क्स के अनुसार, इतिहास वर्ग संघर्ष का इतिहास है, और समाज अनिवार्य रूप से शोषक (पूँजीपति) और शोषित (मजदूर/सर्वहारा) वर्ग में विभाजित है। मार्क्सवादी आलोचना साहित्य को 'अधिरचना (Superstructure)' का हिस्सा मानती है, जो 'आधार (Base)' यानी आर्थिक उत्पादन संबंधों द्वारा निर्धारित होता है। इस दृष्टिकोण के तहत साहित्यकृति में वर्गों के बीच के संघर्ष, आर्थिक असमानता और विचारधारा का चित्रण कैसे किया गया है, इसका विश्लेषण किया जाता है। आलोचक यह देखते हैं कि साहित्यकृति पूँजीवादी विचारधारा को वैधता प्रदान करती है या उसे चुनौती देती है। वे उन पात्रों और स्थितियों पर जोर देते हैं जो सामाजिक अन्याय और शोषण को दर्शाते हैं। उदाहरण के लिए, प्रगतिवादी साहित्य पूरी तरह से वर्ग संरचना और वर्ग संघर्ष पर केंद्रित रहा है, जहाँ किसान और मजदूर नायक के रूप में उभरते हैं। इस दृष्टिकोण की आलोचना अक्सर इस बात के लिए की जाती है कि यह साहित्य के कलात्मक और सौंदर्यवादी मूल्यों की उपेक्षा करता है और उसे केवल राजनीतिक या प्रचार माध्यम तक सीमित कर देता है। हालाँकि, इस दृष्टिकोण ने हिंदी साहित्य में दलित विमर्श, आदिवासी विमर्श और जनवादी लेखन जैसी महत्वपूर्ण धाराओं को सैद्धांतिक आधार प्रदान किया है, जिसने साहित्य को हाशिए के वर्गों की आवाज बनने की शक्ति दी है। यह दृष्टिकोण साहित्य में छिपी हुई वर्ग चेतना और उत्पादन संबंधों की जटिलताओं को उजागर करता है।

8. सामाजिक संबंध (Social Relations) और मानवीय व्यवहार की मीमांसा

समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण सामाजिक संबंध (Social Relations) को साहित्य के अध्ययन का एक अत्यंत महत्वपूर्ण केंद्र मानता है। साहित्य में चित्रित पारिवारिक

संबंध, सामुदायिक बंधन, जातिगत संपर्क, और स्त्री-पुरुष संबंध केवल व्यक्तिगत मामले नहीं होते, बल्कि वे सामाजिक संरचना, शक्ति समीकरण और सांस्कृतिक मानदंडों का प्रतिबिंब होते हैं। इस दृष्टिकोण से, किसी उपन्यास में परिवार का टूटना केवल दो व्यक्तियों की असफलता नहीं है, बल्कि यह बदलते आर्थिक परिवेश और सामाजिक मूल्यों के कारण पारंपरिक संस्थाओं पर पड़ रहे दबाव का संकेत है। आलोचक साहित्य में चित्रित जातिगत संबंधों का विश्लेषण करते हैं, यह देखते हैं कि किस प्रकार जाति व्यवस्था ने मानवीय संपर्क को अमानवीय और श्रेणीबद्ध बना दिया है। इसी तरह, लैंगिक संबंध (Gender Relations) का अध्ययन यह दिखाता है कि कैसे पितृसत्तात्मक समाज ने स्त्री और पुरुष के बीच शक्ति का असंतुलन पैदा किया है। साहित्य में विवाह, प्रेम और दोस्ती के संबंध भी सामाजिक रीति-रिवाजों और वर्जनाओं से गहरे रूप से प्रभावित होते हैं। समाजशास्त्रीय आलोचना इन मानवीय व्यवहारों को सामाजिक संस्थाओं के दबाव और प्रभाव के संदर्भ में व्याख्यायित करती है, जिससे यह पता चलता है कि व्यक्ति का व्यवहार कितना सामाजिक रूप से निर्मित (Socially Constructed) होता है। यह दृष्टिकोण साहित्य को समाज के सूक्ष्म ताने-बाने को समझने और मानवीय संबंधों की जटिलता का वैज्ञानिक और व्यवस्थित तरीके से विश्लेषण करने का अवसर प्रदान करता है।

9. मनोवैज्ञानिक और समाजशास्त्रीय दृष्टिकोणों का अंतर्संबंध और समन्वय

मनोवैज्ञानिक और समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण यद्यपि अलग-अलग आधारों पर खड़े हैं (मनोवैज्ञानिक: व्यक्ति का मन; समाजशास्त्रीय: सामाजिक संरचना), वे वास्तव में एक-दूसरे के पूरक हैं। महान साहित्य अक्सर उन बिंदुओं पर केंद्रित होता है जहाँ व्यक्ति का आंतरिक संघर्ष (मनोविज्ञान) सामाजिक दबावों (समाजशास्त्र) से टकराता है। उदाहरण के लिए, किसी पात्र का मनोद्वंद्व (जैसे हीन भावना) केवल उसकी व्यक्तिगत समस्या नहीं है, बल्कि यह उसकी जाति, वर्ग या लिंग के कारण समाज द्वारा उस पर थोपी गई अधीनस्थता का परिणाम भी हो सकता है। आधुनिक आलोचना में समन्वयात्मक दृष्टिकोण पर जोर दिया जाता है, जो साहित्यकृति की व्याख्या करते समय व्यक्तिगत मनोविज्ञान को सामाजिक संदर्भ से अलग नहीं करता। इसे मनो-सामाजिक आलोचना भी कहा जा सकता है। यह दृष्टिकोण देखता है कि सामाजिक नियम और विचारधाराएँ कैसे व्यक्ति के अवचेतन को आकार देती हैं (सुपरईगो का

विकास)। इसी तरह, यह भी देखा जाता है कि किस प्रकार एक लेखक का अद्वितीय मनोविज्ञान (जैसे उसका विद्रोह या उसकी निराशा) सामाजिक परिवर्तन को जन्म दे सकता है। फ्रायड ने स्वयं अपनी पुस्तक 'टोटेम और टैबू' में मनोविज्ञान और मानवशास्त्रीय समाजशास्त्र के बीच संबंध स्थापित किया था। यह समन्वयवादी दृष्टिकोण साहित्यकृति को जटिल और बहुआयामी बनाता है, जहाँ आंतरिक सत्य को बाहरी यथार्थ के आलोक में समझा जाता है, और सामाजिक यथार्थ को मानव मन पर उसके प्रभाव के माध्यम से महसूस किया जाता है।

6.5 सारांश

मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण पात्रों की अवचेतन प्रेरणाओं और मनोद्वंद्वों को उजागर करता है जबकि समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण वर्ग संघर्ष और सामाजिक शक्ति संबंधों पर केंद्रित है। दोनों दृष्टिकोण एक-दूसरे के पूरक हैं और साहित्य की बहुआयामी व्याख्या प्रस्तुत करते हैं, जो आधुनिक आलोचना के लिए अनिवार्य है।

6.6 इकाई अंत अभ्यास

1. फ्रायड के मनोविश्लेषण सिद्धांत का साहित्यिक आलोचना में उपयोग उदाहरण सहित समझाइए।
2. मार्क्सवादी साहित्य सिद्धांत और वर्ग संरचना के चित्रण का विस्तृत विवेचन प्रस्तुत कीजिए।
3. मनोवैज्ञानिक और समाजशास्त्रीय दृष्टिकोणों के अंतर्संबंध को स्पष्ट करते हुए समन्वयात्मक दृष्टिकोण की आवश्यकता बताइए।

6.7 संदर्भ एवं अनुसंशित पठन सामाग्री

1. उपाध्यायदेवराज , *कथा-साहित्य के मनोवैज्ञानिक समीक्षा-सिद्धान्त,* सौभाग्य प्रकाशन, इलाहाबाद 1989
2. अग्रवाल उषा, *मन्नू भण्डारी का कथा साहित्य मनोवैज्ञानिक विश्लेषण,* ई-पुस्तकालय1963
3. गर्ग मृदुला, *साहित्य का मनोसंधान,* पेंगुइन रैंडम हाउस इंडिया, नई दिल्ली 1925

स्व-मूल्यांकन प्रश्न

बहुविकल्पीय प्रश्न (MCQs):

1. आधुनिक हिंदी कथा साहित्य का जनक किसे माना जाता है?

क) भारतेंदु हरिश्चंद्र

ख) प्रेमचंद

ग) जयशंकर प्रसाद

घ) महावीर प्रसाद द्विवेदी

उत्तर: ख) प्रेमचंद

2. यथार्थवाद का मुख्य लक्षण है:

क) काल्पनिक चित्रण

ख) जीवन का यथार्थ और वास्तविक चित्रण

ग) रहस्यवादी भावना

घ) कल्पनाशीलता

उत्तर: ख) जीवन का यथार्थ और वास्तविक चित्रण

3. प्रगतिवाद का मुख्य स्वर है:

क) प्रेम

ख) वर्ग संघर्ष और सामाजिक परिवर्तन

ग) प्रकृति चित्रण

घ) व्यक्तिवाद

उत्तर: ख) वर्ग संघर्ष और सामाजिक परिवर्तन

4. 'नई कहानी' आंदोलन किस दशक में प्रारंभ हुआ?

क) 1930 के दशक में

ख) 1950-60 के दशक में

ग) 1970 के दशक में

घ) 1980 के दशक में

उत्तर: ख) 1950-60 के दशक में

5. स्त्री विमर्श का केंद्रीय विषय है:

क) केवल धार्मिक मुद्दे

ख) स्त्री अधिकार, समानता और स्वतंत्रता

ग) केवल पारिवारिक मुद्दे

घ) केवल राजनीति

उत्तर: ख) स्त्री अधिकार, समानता और स्वतंत्रता

6. दलित विमर्श का मुख्य उद्देश्य है:

क) मनोरंजन

ख) जातिगत उत्पीड़न के विरुद्ध आवाज़

ग) केवल आत्मकथा लेखन

घ) धार्मिक प्रचार

उत्तर: ख) जातिगत उत्पीड़न के विरुद्ध आवाज़

7. मनोवैज्ञानिक कथा लेखन में प्रमुखता होती है:

क) केवल घटनाओं की

ख) पात्रों के मनोविज्ञान और आंतरिक द्वंद्व की

ग) केवल वर्णन की

घ) केवल संवाद की

उत्तर: ख) पात्रों के मनोविज्ञान और आंतरिक द्वंद्व की

8. प्रयोगवाद की विशेषता है:

क) पारंपरिक शैली

ख) नई शैली, तकनीक और प्रयोग

ग) केवल यथार्थ चित्रण

घ) केवल प्रेम कहानियाँ

उत्तर: ख) नई शैली, तकनीक और प्रयोग

9. कथा साहित्य समाज का दर्पण कैसे है?

क) केवल मनोरंजन करके

ख) सामाजिक यथार्थ और समस्याओं का चित्रण करके

ग) केवल कल्पना करके

घ) केवल इतिहास लिखकर

उत्तर: ख) सामाजिक यथार्थ और समस्याओं का चित्रण करके

10. नई संवेदना का मुख्य विषय है:

क) केवल गाँव

ख) मध्यवर्गीय जीवन, अकेलापन, संत्रास

ग) केवल इतिहास

घ) केवल प्रकृति

उत्तर: ख) मध्यवर्गीय जीवन, अकेलापन, संत्रास

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. आधुनिक हिंदी कथा साहित्य की उत्पत्ति के प्रमुख कारण बताइए।
2. यथार्थवाद और प्रगतिवाद में क्या अंतर है?
3. नई कहानी की प्रमुख विशेषताएँ बताइए।
4. स्त्री विमर्श और दलित विमर्श में क्या समानता है?
5. कथा साहित्य और समाज के संबंध को संक्षेप में समझाइए।

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. आधुनिक हिंदी कथा साहित्य की उत्पत्ति और विकास का विस्तार से वर्णन कीजिए।
2. कथा साहित्य की प्रमुख प्रवृत्तियों (यथार्थवाद, प्रगतिवाद, प्रयोगवाद) का विस्तृत विवेचन कीजिए।
3. नई कहानी आंदोलन और नई संवेदना का विस्तार से परिचय दीजिए।
4. स्त्री विमर्श, दलित विमर्श और अस्मिता विमर्श का विस्तृत विश्लेषण कीजिए।
5. कथा साहित्य में मनोवैज्ञानिक और समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण का महत्व समझाते हुए विस्तार से वर्णन कीजिए।

सारांश

आधुनिक कथा साहित्य हिंदी साहित्य का महत्वपूर्ण अंग है, जिसने सामाजिक, मनोवैज्ञानिक और यथार्थपरक दृष्टि से मानव जीवन को अभिव्यक्त किया। इसकी उत्पत्ति भारतेंदु युग से हुई और यह द्विवेदी, प्रेमचंद, प्रयोगवादी व नई कहानी आंदोलनों से गुजरकर आधुनिक संवेदना तक पहुँचा। यथार्थवाद, प्रगतिवाद और प्रयोगवाद ने कथा साहित्य को नई दिशा दी। स्त्री, दलित और अस्मिता विमर्शों ने समाज के वंचित वर्गों की आवाज़ को सामने लाया। कथा साहित्य ने समाज के परिवर्तन, वर्ग-संघर्ष और मानवीय मूल्यों के प्रतिबिंब के रूप में अपनी भूमिका सशक्त रूप से निभाई।

शब्दावली

1. यथार्थवाद – जीवन के वास्तविक रूप का चित्रण।
2. प्रगतिवाद – सामाजिक परिवर्तन और वर्ग संघर्ष की प्रवृत्ति।
3. प्रयोगवाद – नई शैली, तकनीक और दृष्टिकोण का प्रयोग।
4. नई कहानी – मध्यवर्गीय जीवन की समस्याओं पर केंद्रित आंदोलन।
5. नई संवेदना – मनोवैज्ञानिक द्वंद्व और अकेलेपन की अभिव्यक्ति।
6. स्त्री विमर्श – स्त्री अधिकारों और समानता की चर्चा।
7. दलित विमर्श – जातिगत उत्पीड़न और सामाजिक न्याय पर केंद्रित दृष्टिकोण।
8. अस्मिता विमर्श – पहचान और अस्तित्व की खोज।
9. मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण – पात्रों के आंतरिक जीवन का अध्ययन।
10. समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण – साहित्य में समाज की संरचना और संबंधों का विश्लेषण।

याद रखने योग्य 5 मुख्य बिंदु:

1. आधुनिक कथा साहित्य पाश्चात्य प्रभाव और भारतीय परंपरा का मिश्रण है।

2. प्रेमचंद ने यथार्थवादी कथा साहित्य की नींव रखी।

3. नई कहानी आंदोलन ने व्यक्ति की आंतरिक संवेदनाओं को महत्व दिया।

4. स्त्री, दलित और अस्मिता विमर्श ने साहित्य को सामाजिक विविधता दी।

5. कथा साहित्य समाज का दर्पण बनकर सामाजिक समस्याओं को उजागर करता है।

अपनी प्रगति की जाँच करें

1. **प्रेमचंद से लेकर समकालीन कथाकारों तक हिंदी कथा साहित्य के विकास-क्रम की विवेचना कीजिए।**

   ---

2. **आधुनिक हिंदी कथा साहित्य में मध्यवर्गीय जीवन की समस्याओं का चित्रण कीजिए।**

खंड 2 उपन्यास

इकाई 7 आधुनिक हिंदी उपन्यास की परंपरा और प्रवृत्तियाँ

संरचना

7.1 परिचय
7.2 उद्देश्य
7.3 हिंदी उपन्यास की परंपरा
7.4 उपन्यास की प्रवृत्तियाँ
7.5 सारांश
7.6 इकाई अंत अभ्यास
7.7 संदर्भ एवं अनुसंशित पठन सामाग्री

7.1 परिचय

हिंदी उपन्यास की परंपरा 19वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में पश्चिमी साहित्य के प्रभाव से विकसित हुई। प्रारंभिक तिलिस्मी-ऐयारी उपन्यासों से लेकर प्रेमचंद के यथार्थवादी उपन्यासों तक यह यात्रा सामाजिक परिवर्तन की गवाह रही है। विभिन्न प्रवृत्तियों ने इस विधा को समृद्ध किया है।

7.2 उद्देश्य

- हिंदी उपन्यास की परंपरा का अध्ययन करना और प्रारंभिक उपन्यासों से प्रेमचंद युग तक विकास समझना।
- सामाजिक, ऐतिहासिक, मनोवैज्ञानिक और आंचलिक उपन्यास की प्रमुख प्रवृत्तियों का विस्तृत परिचय प्राप्त करना।
- प्रयोगधर्मी उपन्यास और समकालीन अस्मिता विमर्श की विशेषताओं को जानना तथा उनके साहित्यिक महत्व को समझना।

7.3 हिंदी उपन्यास की परंपरा

हिंदी उपन्यास की परंपरा का अध्ययन हमें आधुनिक गद्य साहित्य के उस आधार स्तंभ तक ले जाता है, जिसने भारतीय समाज के जटिल यथार्थ को सबसे अधिक गहराई से व्यक्त किया। हिंदी में उपन्यास विधा का आगमन 19वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में हुआ, जो मुख्य रूप से पश्चिमी साहित्य के प्रभाव और नवजागरणकालीन आवश्यकताओं का परिणाम था।

आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने हिंदी का प्रथम मौलिक उपन्यास माना, क्योंकि इसमें नव-शिक्षित मध्यवर्ग की समस्याओं, पाश्चात्य संस्कृति के अंधानुकरण और व्यावहारिक ज्ञान के महत्व को कथा का केंद्र बनाया गया था। इसकी शैली भले ही उपदेशात्मक थी, किंतु इसने चरित्रों के मनोविज्ञान और सामाजिक यथार्थ को छूने का प्रयास किया। इसके बाद देवकीनंदन खत्री के तिलस्मी-ऐयारी उपन्यास (जैसे 'चंद्रकांता') और किशोरी लाल गोस्वामी के ऐतिहासिक एवं सामाजिक उपन्यासों ने इस विधा को जन-प्रियता दिलाई, जिससे पाठकों का एक विशाल वर्ग तैयार हुआ। यह प्रारंभिक चरण, जो एकांगी, शिक्षाप्रद और जादुई कथाओं पर केंद्रित था, आगे आने वाले यथार्थवादी और गंभीर लेखन के लिए आवश्यक जमीन तैयार कर रहा था।

प्रेमचंद युग (1918-1936): आदर्शोन्मुख यथार्थवाद का स्वर्णकाल

प्रेमचंद युग हिंदी उपन्यास की परंपरा का सर्वाधिक महत्वपूर्ण और निर्णायक चरण है। प्रेमचंद (धनपत राय श्रीवास्तव) ने उपन्यास को तिलस्मी और मनोरंजन के दायरे से निकालकर जनजीवन के यथार्थ से जोड़ा। उनका लेखनकाल, विशेष रूप से 'सेवा सदन' (1918) से लेकर 'गोदान' (1936) तक, आदर्शोन्मुख यथार्थवाद (Adarshonmukh Yartharthvad) के नाम से जाना जाता है। प्रेमचंद का लक्ष्य सामाजिक बुराइयों का चित्रण करना था, लेकिन उनका समाधान हमेशा मानवीय सद्भाव और नैतिक आदर्श के माध्यम से होता था, यही उनके यथार्थवाद को 'आदर्शोन्मुख' बनाता है। प्रेमचंद ने अपने उपन्यासों में भारतीय किसान, मजदूर, ग्रामीण जीवन, नारी की दयनीय स्थिति, जाति व्यवस्था और सामंती शोषण जैसे ज्वलंत मुद्दों को केंद्र में रखा। 'गोदान' भारतीय किसान जीवन की महागाथा है, जिसमें होरी के माध्यम से कर्ज, शोषण और अभाव के चक्र में फँसे किसान की त्रासदी को अमर कर दिया गया। 'गबन' में मध्यवर्गीय विसंगतियाँ और 'निर्मला' में दहेज प्रथा की समस्या का चित्रण है। प्रेमचंद ने हिंदी उपन्यास को एक सामाजिक जिम्मेदारी दी, उसे युग का दस्तावेज बनाया और साहित्य तथा जीवन के बीच की दूरी को समाप्त किया। उनके समकालीन लेखक जैसे जयशंकर प्रसाद ('कंकाल', 'तितली') और विश्वंभर नाथ शर्मा 'कौशिक' ने भी सामाजिक समस्याओं को उठाया, किंतु प्रेमचंद का प्रभाव सर्वाधिक गहरा और व्यापक रहा। इस युग ने उपन्यास को गंभीर साहित्यिक विधा के रूप में स्थापित किया।

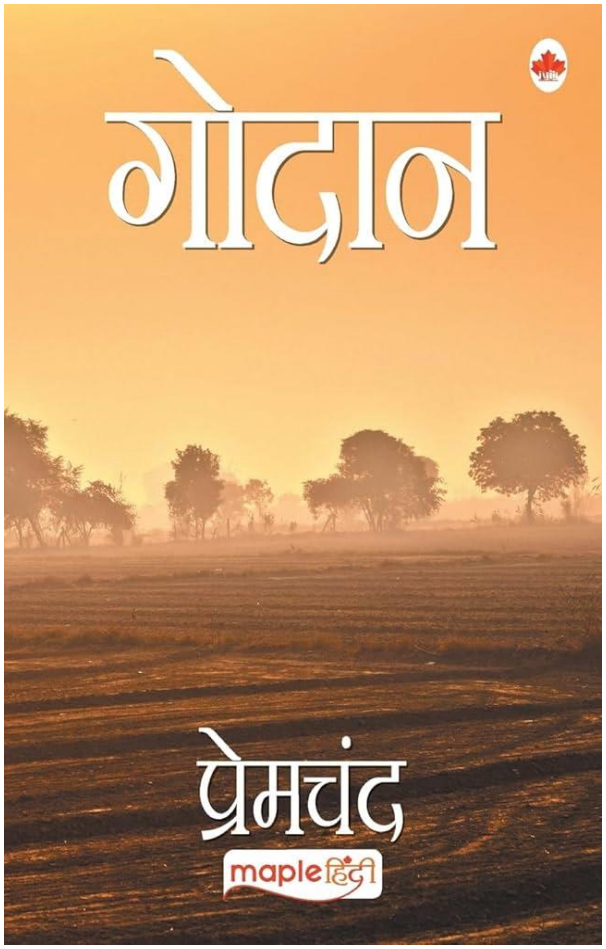

चित्र 2.1: प्रेमचंद हिंदी उपन्यास 'गोदान'

प्रेमचंदोत्तर युग: यथार्थ के विविध आयामों की खोज और मनोवैज्ञानिकता का प्रवेश

1936 में प्रेमचंद की मृत्यु के बाद और स्वतंत्रता प्राप्ति तक का कालखंड प्रेमचंदोत्तर युग कहलाता है, जो उपन्यास की परंपरा में महत्वपूर्ण बदलाव लाता है। यह वह समय था जब आदर्शोन्मुख यथार्थवाद की जगह यथार्थ के विविध और अधिक जटिल आयामों की खोज शुरू हुई। इस युग में तीन प्रमुख धाराएँ स्पष्ट रूप से उभरीं: प्रगतिवादी/मार्क्सवादी यथार्थवाद, मनोवैज्ञानिक अंतर्दृष्टि, और सामाजिक-राजनीतिक चेतना। इस युग में यशपाल, उपेंद्रनाथ 'अश्क', अमृतलाल नागर, और जैनेंद्र, इलाचंद्र जोशी तथा अज्ञेय की मनोवैज्ञानिक त्रयी का उदय हुआ। यशपाल ने मार्क्सवादी विचारधारा से प्रेरित होकर सामाजिक असमानता और वर्ग संघर्ष पर केंद्रित उपन्यास लिखे, जैसे 'दादा कामरेड'। वहीं, जैनेंद्र, जोशी और अज्ञेय ने उपन्यास को बाहरी

समाज से हटाकर व्यक्ति के अंतर्मन की ओर मोड़ा, जिससे मनोवैज्ञानिक प्रवृत्ति का बीजारोपण हुआ। उपेंद्रनाथ 'अश्क' ने शहरी मध्यवर्गीय जीवन की विसंगतियों और यौन कुंठाओं को चित्रित किया। इस कालखंड में सामाजिक उद्देश्य तो बना रहा, लेकिन वह अधिक कटु, आलोचनात्मक और वैयक्तिक हो गया। लेखक अब समस्याओं के समाधान देने के बजाय उन्हें जटिलता के साथ प्रस्तुत करने लगे। यह विविधता हिंदी उपन्यास को आधुनिकता, प्रयोग और गहरी अंतर्दृष्टि की ओर ले गई।

7.4 उपन्यास की प्रवृत्तियाँ

हिंदी उपन्यास की सबसे केंद्रीय और दीर्घकालिक प्रवृत्ति सामाजिक यथार्थवाद रही है। प्रारंभिक उपन्यासों में सामाजिकता का उद्देश्य सुधार और उपदेश था, किंतु प्रेमचंद युग में यह शोषक-शोषित संबंधों के चित्रण के माध्यम से गहन यथार्थ में बदल गया। प्रेमचंदोत्तर युग में सामाजिक उपन्यास स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद के मोहभंग, भ्रष्टाचार, राजनीतिक अवसरवाद और तेजी से टूटते सामाजिक मूल्यों पर केंद्रित हुआ। इस प्रवृत्ति के तहत अमृतलाल नागर ने 'बूंद और समुद्र' में लखनऊ के सामाजिक-सांस्कृतिक जीवन का चित्रण किया, तो भगवती चरण वर्मा ने 'चित्रलेखा' और 'टेढ़े-मेढ़े रास्ते' में नैतिकता और विचारधाराओं पर प्रश्न उठाए। रांगेय राघव ने 'कब तक पुकारूँ' में दलित और वंचित समाज के जीवन को प्रस्तुत किया। 1970 के दशक के बाद, सामाजिक यथार्थवाद में स्त्री विमर्श, दलित विमर्श और आदिवासी विमर्श जैसे अस्मितामूलक दृष्टिकोण शामिल हो गए। मन्नू भंडारी ('महाभोज') ने राजनीति में अपराधीकरण और सामाजिक विडंबना को उकेरा। इस प्रकार, सामाजिक उपन्यास की प्रवृत्ति ने भारतीय समाज के प्रत्येक परिवर्तन, संघर्ष और चेतना को निरंतर आत्मसात किया है, जिससे यह विधा युग-जीवन की सबसे प्रामाणिक टिप्पणी बनी रही है।

ऐतिहासिक उपन्यास की धारा: अतीत का पुनर्सृजन और सांस्कृतिक चेतना

ऐतिहासिक उपन्यास हिंदी उपन्यास की एक महत्वपूर्ण धारा रही है, जिसका उद्देश्य इतिहास के गौरवशाली या उपेक्षित अध्यायों को कल्पना और यथार्थ के समन्वय से पुनर्जीवित करना रहा है। यह प्रवृत्ति न केवल मनोरंजन करती है, बल्कि राष्ट्रीय और सांस्कृतिक चेतना को मजबूत बनाने का कार्य भी करती है। इस प्रवृत्ति के प्रमुख

हस्ताक्षर वृंदावन लाल वर्मा हैं, जिन्हें ऐतिहासिक उपन्यास सम्राट कहा जाता है। उनके उपन्यास, जैसे 'विराटा की पद्मिनी', 'झाँसी की रानी' और 'मृगनयनी', बुंदेलखंड के इतिहास और सामाजिक जीवन को चित्रित करते हैं। वर्मा जी ने इतिहास की घटनाओं को रोमांचक कथावस्तु और सशक्त चरित्रों के साथ प्रस्तुत किया। दूसरे महत्वपूर्ण लेखक आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी हैं, जिनके उपन्यास, जैसे 'बाणभट्ट की आत्मकथा' और 'चारु चंद्र लेख', संस्कृत साहित्य और प्राचीन भारतीय संस्कृति की पृष्ठभूमि पर आधारित हैं। द्विवेदी जी के उपन्यास केवल घटनाओं का चित्रण नहीं करते, बल्कि युग-चेतना, दार्शनिक चिंतन और सांस्कृतिक मूल्यों का सूक्ष्म विश्लेषण करते हैं। हाल के वर्षों में, धार्मिक, मिथकीय और उपेक्षित इतिहास पर आधारित उपन्यास भी लिखे गए हैं, जो अतीत को समकालीन प्रश्नों के आलोक में समझने का प्रयास करते हैं, जिससे यह प्रवृत्ति अतीत की पुनर्रचना के माध्यम से वर्तमान को समझने का मार्ग प्रशस्त करती है।

मनोवैज्ञानिक उपन्यास: अंतर्मन की गहराइयों और चेतना का प्रवाह

मनोवैज्ञानिक उपन्यास वह प्रवृत्ति है जिसने हिंदी उपन्यास को मनुष्य के आंतरिक जगत की ओर मोड़ा, जिससे यह विधा प्रेमचंद के सामाजिक यथार्थवाद की सीमा से आगे निकल गई। इस धारा के केंद्र में मनुष्य के अवचेतन (Subconscious), कुंठाएँ, मनोद्वंद्व, और व्यक्तित्व की आंतरिक जटिलताएँ होती हैं। इस प्रवृत्ति का नेतृत्व जैनेंद्र कुमार, इलाचंद्र जोशी और अज्ञेय की त्रयी ने किया। जैनेंद्र कुमार ने अपने उपन्यास 'त्यागपत्र', 'सुनीता' और 'परख' में नैतिकता, नारी की मुक्ति और व्यक्तित्व के आत्म-संघर्ष पर जोर दिया। उनका लेखन संवादात्मक और दार्शनिक होता था। इलाचंद्र जोशी ने फ्रायड के मनोविश्लेषणवाद को गहराई से अपनाया। उनके उपन्यासों, जैसे 'सन्यासी', 'पर्दे की रानी' और 'मुक्तिपथ', में पात्रों की यौन कुंठाओं, हीन भावना और मनोरोग का चित्रण मिलता है। अज्ञेय ने 'शेखर: एक जीवनी' के माध्यम से युवा विद्रोही मन के संत्रास और संघर्ष को चेतना प्रवाह (Stream of Consciousness) शैली में प्रस्तुत किया। अज्ञेय के उपन्यास व्यक्ति की स्वतंत्रता, अस्तित्ववादी चिंता और आंतरिक अनिश्चितता पर केंद्रित हैं। मनोवैज्ञानिक उपन्यास ने साहित्य में मनोविश्लेषण को एक आलोचनात्मक उपकरण के रूप में स्थापित किया और यह

सिद्ध किया कि बाहरी घटनाएं उतनी महत्वपूर्ण नहीं हैं, जितना कि उनका पात्र के मन पर पड़ने वाला प्रभाव। इस प्रवृत्ति ने उपन्यास को यथार्थ के नए आयाम दिए।

आंचलिक उपन्यास: धरती की सुगंध, लोकजीवन और संस्कृति का उद्घोष

आंचलिक उपन्यास 1950 के दशक में उभरी एक महत्वपूर्ण और विशिष्ट प्रवृत्ति है, जिसने हिंदी उपन्यास की परंपरा में क्षेत्रीयता, लोक संस्कृति और बोली को केंद्रीय स्थान दिया। इस प्रवृत्ति ने उपन्यास को दिल्ली-पटना-लखनऊ के शहरी दायरे से निकालकर गाँव, जंगल और विशेष अंचल के जीवन की ओर मोड़ दिया। फणीश्वर नाथ 'रेणु' को आंचलिक उपन्यास का प्रवर्तक माना जाता है। उनका उपन्यास 'मैला आँचल' (1954) पूर्णिया जिले (बिहार) के मेरीगंज गाँव के जीवन का जीवंत, संपूर्ण और प्रामाणिक चित्रण करता है। रेणु ने लोक भाषा, लोक गीत, अंधविश्वास, उत्सव और राजनीतिक चेतना को एक साथ मिलाकर एक महाकाव्यात्मक कथा बुनी। आंचलिक उपन्यास की विशेषता यह है कि इसमें पात्रों से अधिक महत्वपूर्ण वह 'अंचल' होता है, जो स्वयं एक चरित्र की तरह उभरता है। नागार्जुन ने अपने उपन्यासों में मिथिलांचल के जीवन और किसानों की पीड़ा को आवाज़ दी। शिवप्रसाद सिंह ('अलग-अलग वैतरणी') और रामदरश मिश्र ('पानी के प्राचीर') ने भी ग्रामीण यथार्थ को पकड़ा। आंचलिक उपन्यासों ने यह स्थापित किया कि भारतीय संस्कृति का वास्तविक स्वरूप महानगरीय चकाचौंध में नहीं, बल्कि गाँवों की मिट्टी और लोकजीवन में निहित है। इस प्रवृत्ति ने हिंदी साहित्य को समृद्ध शब्दावली और लोक-संवेदना प्रदान की।

प्रयोगधर्मी उपन्यास: शिल्प, कथा और कथ्य की नवीनता

प्रयोगधर्मी उपन्यास वह प्रवृत्ति है जो 1960 के दशक के बाद अधिक मुखर हुई और जिसने पारंपरिक कथा संरचना, भाषा और विषय वस्तु को चुनौती दी। प्रयोगधर्मी लेखन का मुख्य उद्देश्य जीवन की विसंगति (Absurdity), आधुनिक मनुष्य के संत्रास और संवादहीनता को व्यक्त करने के लिए नए साहित्यिक शिल्प की खोज करना था। इस प्रवृत्ति में कथा की रेखीयता टूटी, और उपन्यास अक्सर खंडित, असंबंधित और पहेलीनुमा दिखने लगे। निर्मल वर्मा के लेखन में स्मृति, निर्वासन और अकेलेपन की भावना प्रमुख है, जहाँ कथावस्तु आंतरिक चेतना के सहारे चलती है। कृष्णा सोबती ने अपनी भाषा और शैली में नया प्रयोग किया। ज्ञानरंजन के लेखन में शहरी जीवन की

ऊब और विडंबना मिलती है। इस प्रवृत्ति के तहत उपन्यास के अंत को अक्सर खुला छोड़ दिया जाता है ताकि पाठक स्वयं निष्कर्ष निकाले। प्रयोगधर्मी उपन्यास ने अस्तित्ववादी दर्शन, विसंगतिवाद और उत्तर-आधुनिक (Post-Modern) तत्वों को हिंदी साहित्य में प्रवेश दिया। इसने यह सिद्ध किया कि उपन्यास को केवल कहानी कहने तक सीमित नहीं रहना चाहिए, बल्कि उसे मानव अनुभव की जटिलता को नए और साहसिक तरीकों से अभिव्यक्त करना चाहिए। यह प्रवृत्ति हिंदी उपन्यास को वैश्विक साहित्यिक मानचित्र पर लाने में सहायक हुई।

समकालीन प्रवृत्तियाँ: अस्मिता विमर्श (दलित, स्त्री, आदिवासी) और महानगरीय जीवन

आधुनिक हिंदी उपन्यास की सबसे समकालीन और गतिशील प्रवृत्तियाँ अस्मिता विमर्श (Identity Discourse) और महानगरीय जीवन की नई विसंगतियाँ हैं। 1980 के दशक के बाद से, उपन्यास साहित्य में हाशिए के समुदायों की आवाजें अत्यंत मुखर हुईं। दलित विमर्श ने जातिगत उत्पीड़न का क्रूर यथार्थ प्रस्तुत किया, जिसमें ओमप्रकाश वाल्मीकि जैसे लेखकों का योगदान महत्वपूर्ण है। स्त्री विमर्श के तहत मृदुला गर्ग, चित्रा मुद्गल और अलका सरावगी जैसी लेखिकाओं ने स्त्री के आत्म-निर्णय, यौनिकता, और पितृसत्तात्मक समाज के विरोध को केंद्रित किया। आदिवासी विमर्श ने जल, जंगल, जमीन और सांस्कृतिक पहचान के संघर्ष को कहानी का विषय बनाया। इन विमर्शों ने उपन्यास को सामाजिक न्याय का सबसे सशक्त हथियार बना दिया। दूसरी ओर, महानगरीय उपन्यास की प्रवृत्ति में शहरी अलगाव, उपभोक्तावाद, प्रवासी जीवन और वैश्विकरण के प्रभाव को दर्शाया गया। अल्पसंख्यक विमर्श से जुड़े उपन्यासों में सांप्रदायिक सद्भाव और पहचान का संकट प्रमुख विषय बना। ये समकालीन प्रवृत्तियाँ यह दर्शाती हैं कि हिंदी उपन्यास एक स्थिर विधा नहीं है, बल्कि यह बदलते सामाजिक-राजनीतिक यथार्थ के साथ निरंतर संवाद और आत्म-परिवर्तन करता रहता है।

आधुनिक हिंदी उपन्यास की परंपरा तिलस्मी-ऐयारी से शुरू होकर सामाजिक-मनोवैज्ञानिक यथार्थवाद तक, और वहाँ से आंचलिकता, प्रयोगधर्मिता और अस्मिता विमर्श तक एक लंबी और समृद्ध यात्रा तय कर चुकी है। इस विकासक्रम ने उपन्यास

को केवल एक कथा-कहानी का माध्यम नहीं, बल्कि भारतीय नवजागरण, स्वतंत्रता संघर्ष, आधुनिकता और सामाजिक न्याय के आंदोलनों का साहित्यिक इतिहास बना दिया है। श्रद्धाराम फुल्लौरी और लाला श्रीनिवास दास ने नींव रखी, प्रेमचंद ने उसे यथार्थ की मज़बूती दी, जैनेंद्र, जोशी और अज्ञेय ने उसे मनोवैज्ञानिक गहराई दी, और रेणु ने उसे लोकजीवन की सुगंध से भर दिया।

7.5 सारांश

हिंदी उपन्यास ने भारतेंदु युग से प्रारंभ होकर प्रेमचंद युग में यथार्थवाद की चरम सीमा प्राप्त की। मनोवैज्ञानिक, आंचलिक और प्रयोगधर्मी प्रवृत्तियों ने विधा को विविधता प्रदान की। समकालीन दलित, स्त्री और आदिवासी विमर्श ने उपन्यास को सामाजिक न्याय का सशक्त माध्यम बनाया है।

हैदराबाद

7.6 इकाई अंत अभ्यास

1. हिंदी उपन्यास की परंपरा में प्रेमचंद युग के योगदान को विस्तार से समझाइए और आदर्शोन्मुख यथार्थवाद की व्याख्या कीजिए।
2. आंचलिक उपन्यास की विशेषताओं को स्पष्ट करते हुए 'मैला आँचल' के महत्व का विवेचन कीजिए।
3. समकालीन हिंदी उपन्यास में अस्मिता विमर्श की भूमिका का मूल्यांकन करते हुए प्रमुख प्रवृत्तियों की चर्चा कीजिए।

7.7 संदर्भ एवं अनुसंशित पठन सामाग्री

1. राजेन्द्र कुमार सेन,हिन्दी के प्रमुख आंचलिक उपन्यास: सांस्कृतिक पिछड़ापन और जागृति कल्पना प्रकाशन हैदराबाद ,2022
2. पाण्डेय प्रकाशइन्दु, हिन्दी के प्रयोगधर्मी उपन्यास, हिन्दी बुक सेन्टर,दिल्ली 2008.
3. साहनीभीष्म)संपादक(, आधुनिक हिन्दी उपन्यास)वॉल्यूम 2), राजकमल प्रकाशन, दिल्ली 2010.
4. सिंहनामवर, आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियाँ, लोकभारती प्रकाशन, दिल्ली 2018.

अपनी प्रगति की जाँच करें

1. **आधुनिक हिंदी उपन्यास की विकास-परंपरा का संक्षेप में वर्णन कीजिए।**

---

2. **आधुनिक हिंदी उपन्यास की प्रमुख प्रवृत्तियों का उल्लेख कीजिए तथा उदाहरण सहित स्पष्ट कीजिए।**

इकाई 8 प्रतिनिधि उपन्यासकार

संरचना

8.1 परिचय
8.2 उद्देश्य
8.3 प्रेमचंद
8.4 यशपाल
8.5 फणीश्वरनाथ रेणु
8.6 मन्नू भंडारी
8.7 सारांश
8.8 इकाई अंत अभ्यास
8.9 संदर्भ एवं अनुसंशित पठन सामाग्री

8.1 परिचय

प्रेमचंद, यशपाल, रेणु और मन्नू भंडारी हिंदी उपन्यास साहित्य के प्रतिनिधि रचनाकार हैं। इन्होंने क्रमशः आदर्शोन्मुख यथार्थवाद, प्रगतिशील विचारधारा, आंचलिकता और स्त्री-विमर्श को स्थापित किया।

8.2 उद्देश्य

- प्रेमचंद के 'गोदान' का अध्ययन करना और किसान जीवन की त्रासदी, सामाजिक शोषण के चित्रण को समझना।
- यशपाल के 'झूठा सच' में प्रगतिशील विचारधारा, विभाजन की त्रासदी और वर्ग संघर्ष का विश्लेषण करना।
- रेणु के 'मैला आँचल' की आंचलिकता और मन्नू भंडारी के 'आपका बंटी' में बाल मनोविज्ञान का अध्ययन करना।

8.3 प्रेमचंद

प्रेमचंद (धनपत राय श्रीवास्तव) मात्र एक कहानीकार या उपन्यासकार नहीं थे; वे अपने युग के सामाजिक यथार्थ के सबसे सजग और मुखर प्रवक्ता थे। उनके साहित्य का मूल उद्देश्य मनोरंजन करना नहीं, बल्कि जीवन की समस्याओं को उजागर करना, शोषित वर्ग के दुख को स्वर देना और समाज में नैतिक तथा सामाजिक चेतना जगाना था। प्रेमचंद ने आदर्शोन्मुखी यथार्थवाद से अपनी यात्रा शुरू की—जिसमें समस्याओं को चित्रित करने के बाद एक आदर्शवादी समाधान प्रस्तुत किया जाता था—लेकिन 'गोदान' (१९३६) तक आते-आते वे पूर्ण यथार्थवाद की ओर मुड़ गए। इस अंतिम दौर में, समाधान गौण हो गया और समस्या की भयावहता तथा शोषण की जड़ें स्वयं प्रमुख विषय बन गईं।

प्रेमचंद के यथार्थवाद की मूल चेतना

प्रेमचंद का यथार्थवाद कोरा चित्रण नहीं, बल्कि सशस्त्र आलोचना था। उनकी यथार्थवादी चेतना का मूल आधार भारतीय ग्राम्य जीवन था, जिसे उन्होंने अत्यंत निकट से जिया और समझा था। वे केवल गरीबी का ब्यौरा नहीं देते, बल्कि गरीबी के कारणों की पड़ताल करते हैं। यह यथार्थवाद केवल बाह्य परिस्थितियों (सूखा, बाढ़, कर्ज) तक सीमित नहीं था, बल्कि मनुष्य के आंतरिक मनोभावों, नैतिकता के पतन, और रूढ़ियों के बंधन को भी दर्शाता था। प्रेमचंद ने अपने साहित्य में उस अंधविश्वास, सामाजिक पाखंड और धार्मिक रूढ़िवादिता को भी यथार्थ का हिस्सा माना, जो शोषण को बनाए रखने में परोक्ष रूप से मदद करते थे। 'गोदान' में होरी की कथा इस चेतना का चरम बिंदु है, जहाँ किसान अपनी परम्परागत नैतिकता (जैसे, गाय की इच्छा) के चलते शोषण की चक्की में पिसता रहता है और अंत तक शोषण को ईश्वर का विधान मानकर स्वीकार कर लेता है। प्रेमचंद का यथार्थवाद वस्तुतः मानववादी यथार्थवाद है, जिसका केंद्र बिंदु मानवीय पीड़ा और उसकी गरिमा को स्थापित करने का संघर्ष है।

गोदान: कथावस्तु का केंद्रीय आधार (होरी और धनिया की कहानी)

'गोदान' की कथावस्तु दो समानांतर धाराओं में प्रवाहित होती है: ग्रामीण जीवन (होरी, धनिया) और नगरीय जीवन (मिस्टर मेहता, मालती, राय साहब)। इन दोनों कथाओं का आर्थिक शोषण और प्रेम की जटिलता के सूत्र से संबंध है, लेकिन उपन्यास का हृदय होरी और धनिया की कहानी में धड़कता है। होरी एक साधारण किसान है जिसकी जीवनभर की एकमात्र आकांक्षा एक गाय पालना है, क्योंकि वह मानता है कि गाय पालना ही किसानी की प्रतिष्ठा है और मरने पर गोदान (गाय का दान) ही उसे मुक्ति दिलाएगा। यह इच्छा ही उसके जीवन की त्रासदी का आधार बनती है। वह आजीवन ईमानदारी, कर्तव्यपरायणता और प्रेमचंद की आदर्शवादी नैतिकता का पालन करता है, लेकिन उसे लगातार धोखा, कर्ज और सामाजिक बहिष्कार ही मिलता है। वहीं, धनिया सशक्त, विद्रोहिणी और यथार्थवादी नारी है। वह होरी की भोली-भाली आज्ञाकारिता और परंपरावादी कमजोरियों पर क्रोधित होती है। होरी और धनिया की कहानी वस्तुतः उस भारतीय किसान दम्पति की कहानी है, जो एक ओर सामाजिक

ढाँचे से और दूसरी ओर अपनी आर्थिक विवशता से जूझते हुए तिल-तिल कर मिट जाते हैं।

पात्र विश्लेषण: होरी, धनिया, गोबर और झुनिया

'गोदान' के पात्र प्रेमचंद के यथार्थवाद की कुंजी हैं। होरी भारतीय किसान का आदर्श प्रतीक है—वह विनम्र, ऋणग्रस्त, और रूढ़िबद्ध है। उसकी सबसे बड़ी कमजोरी उसकी मर्यादा और प्रतिष्ठा की झूठी भावना है, जिसके कारण वह हर तरह के अपमान और शोषण को चुपचाप सहता है। उसका जीवन गाय की अधूरी इच्छा और कर्ज चुकाने के संघर्ष में समाप्त होता है, जो उसकी दैववादी मानसिकता का परिणाम है। इसके विपरीत, धनिया उपन्यास की सबसे जीवंत और विद्रोही पात्र है। वह शोषण के विरुद्ध आवाज उठाती है, पति की निष्क्रियता पर उसे धिक्कारती है, और अपने बच्चों (विशेषकर गोबर) का स्वाभिमान बचाए रखने के लिए लड़ती है। धनिया ही वह पात्र है जो अंत में, होरी की मृत्यु पर, मजबूरीवश उसके अंतिम गोदान के लिए दो आने उसके हाथ पर रखती है, जो उपन्यास का सबसे मार्मिक और निर्मम यथार्थवादी क्षण है। गोबर होरी की नई पीढ़ी का प्रतीक है। वह विद्रोही, साहसी और आधुनिक है। वह जाति-बंधन को तोड़ता है (झुनिया को अपनाकर) और शोषण का विरोध करने के लिए गाँव छोड़कर शहर भाग जाता है। गोबर दिखाता है कि परंपरागत किसान अब प्रतिरोध करना सीख रहा है। झुनिया, एक विधवा जिसकी कोई सामाजिक प्रतिष्ठा नहीं है, गोबर के प्रेम और साहस से जीवन पाती है। वह अपने दुःख और संघर्ष को चुपचाप सहने वाली लेकिन दृढ़ स्त्री का प्रतिनिधित्व करती है।

किसान जीवन की त्रासदी: कर्ज, सम्मान और 'गोदान'

प्रेमचंद ने 'गोदान' में किसान जीवन की त्रासदी को 'कर्ज की फाँसी' के माध्यम से चित्रित किया है। होरी का पूरा जीवन केवल शोषण की एक अंतहीन शृंखला है—पंडित दातादीन (धर्म का शोषण), साहूकार (आर्थिक शोषण), और राय साहब (सामंती शोषण)। ये तीनों शक्तियाँ मिलकर होरी को कभी ऊपर उठने नहीं देतीं। त्रासदी यह है कि होरी को अपना श्रम बेचकर भी कर्ज चुकाना पड़ता है, जिससे उसकी आर्थिक स्वतंत्रता पूरी तरह समाप्त हो जाती है और वह मजदूर बनकर रह जाता है। उपन्यास का शीर्षक 'गोदान' इस त्रासदी को चरम पर ले जाता है। होरी की अंतिम इच्छा गोदान

करने की है, लेकिन उसके पास एक मरियल गाय भी नहीं है। उसकी मृत्यु के बाद, जब पंडित जी गोदान की बात करते हैं, तो धनिया अपने हाथ के अंतिम दो आने निकालकर उनके हाथों पर रखती है, यह कहते हुए कि "यही उनका गोदान था।" यह दो आने केवल गरीबी नहीं दिखाते; यह धार्मिक पाखंड पर प्रहार करते हैं और बताते हैं कि जिस किसान ने जीवन भर श्रम से गो-तुल्य सेवा की, उसे मरने पर कर्ज और दरिद्रता के सिवा कुछ नहीं मिला। यह त्रासदी बताती है कि भारतीय किसान का जीवन जन्म से मृत्यु तक शोषण का एक चक्र है।

सामाजिक यथार्थ और शोषण का चित्रण

'गोदान' में प्रेमचंद ने भारतीय समाज के जटिल शोषण तंत्र का व्यापक और यथार्थवादी चित्रण किया है। शोषण केवल जमींदार (राय साहब) और महाजन (साहूकार) तक सीमित नहीं है, बल्कि यह धर्म (पंडित जी) और कानून तक फैला हुआ है। राय साहब एक ऐसा जमींदार है जो किसान प्रेम का ढोंग करता है, लेकिन अपने स्वार्थ के लिए होरी को दबाने में कभी संकोच नहीं करता। वह पूंजीवादी व्यवस्था में बदल रहे सामंतवाद का प्रतिनिधित्व करता है, जो शोषण के नए, मीठे तरीके अपनाता है। पंडित दातादीन धर्म की आड़ में किसानों का आर्थिक और नैतिक शोषण करते हैं। उनका चरित्र यह दर्शाता है कि कैसे धर्म और पाखंड गरीबों के अंधविश्वास का फायदा उठाते हैं। शोषक वर्ग (जमींदार, महाजन, पंडित) एक-दूसरे से जुड़े हुए हैं, जो गाँव में एक अभेद जाल बनाते हैं, जिससे गरीब किसान होरी कभी बाहर नहीं निकल पाता। यह उपन्यास केवल व्यक्तिगत दुख नहीं, बल्कि एक व्यवस्थित, संस्थागत शोषण को उजागर करता है जो भारतीय ग्राम्य समाज की बुनियादी सच्चाई थी।

नगरीय जीवन की पार्श्व कथा: मिस्टर मेहता, मालती और प्रेम का आदर्श

'गोदान' में ग्रामीण जीवन की त्रासदी के समानांतर लखनऊ शहर की एक कहानी भी चलती है, जिसके मुख्य पात्र मिस्टर मेहता (दर्शनशास्त्र के प्रोफेसर), मालती (डॉक्टर), और राय साहब जैसे बुद्धिजीवी और पूंजीवादी वर्ग के लोग हैं। यह नगरीय कथा ग्रामीण कथा की पृष्ठभूमि और विपरीत ध्रुव का काम करती है। मेहता और मालती के बीच का बुद्धिवादी प्रेम और विचारधारात्मक बहस (जैसे, स्त्री-पुरुष संबंध, कर्तव्य, और भोगवाद पर चर्चा) ग्रामीण जीवन की सीधी-सादी, लेकिन कठोर वास्तविकता से

विपरीत है। यह कथा प्रेमचंद के 'आदर्शोन्मुखी' विचारों को दर्शाने का माध्यम भी बनती है। मिस्टर मेहता एक आदर्शवादी हैं जो श्रम और दर्शन को महत्व देते हैं, जबकि मालती शुरू में एक आधुनिक, भोगवादी स्त्री के रूप में दिखाई देती हैं, जो बाद में मेहता के प्रभाव से समाजसेवा की ओर उन्मुख होती हैं। यह नगरीय कथा यह दिखाती है कि गाँव का शोषण ही शहर की समृद्धि का आधार है (राय साहब और खन्ना के माध्यम से), और बुद्धिजीवियों का जीवन गाँव की वास्तविकता से कितना विच्छिन्न है। इस प्रकार, 'गोदान' संपूर्ण भारतीय समाज का चित्र प्रस्तुत करता है, जहाँ गरीब का रक्त अमीर के पूंजीवाद को सींचता है।

प्रेमचंद की भाषा और शैली का वैशिष्ट्य

प्रेमचंद की भाषा और शैली उनकी यथार्थवादी चेतना का सीधा परिणाम हैं। उनकी भाषा शुद्ध और सरल हिन्दुस्तानी है, जो हिंदी, उर्दू और स्थानीय बोलियों (जैसे अवधी) के शब्दों का एक सहज मिश्रण है। यह भाषा पाठक को सीधे ग्रामीण परिवेश से जोड़ती है और उसे सत्य की निकटता का अनुभव कराती है। 'गोदान' में मुहावरों, लोकोक्तियों और ठेठ ग्रामीण शब्दों का इतना स्वाभाविक प्रयोग है कि पात्रों के संवाद अत्यंत प्रामाणिक लगते हैं। उदाहरण के लिए, धनिया के संवादों में जो तीखापन और विद्रोह है, वह उसकी ग्रामीण भाषा शैली के कारण और भी प्रभावी हो जाता है। शैली की दृष्टि से, प्रेमचंद की कथा-प्रस्तुति प्रत्यक्ष, सीधी और नाटकीय है। वे विवरण और संवाद दोनों का कुशलता से उपयोग करते हैं। उनकी वर्णनात्मक शैली गाँव के दृश्य, मौसम की मार और किसान के दुख को साकार करती है, जबकि उनके संवादात्मक कौशल पात्रों के मनोविज्ञान को उजागर करते हैं। उनकी सबसे बड़ी शैलीगत विशेषता है निर्मम यथार्थ को भी सहज करुणा के साथ प्रस्तुत करना, जिससे पाठक केवल दुखी नहीं होता, बल्कि प्रेरित भी होता है।

नारी जीवन की समस्याएँ और मुक्ति का प्रश्न

प्रेमचंद के उपन्यासों में नारी जीवन की समस्याएँ एक केंद्रीय विषय रही हैं (जैसा कि 'सेवासदन' में सुमन की कहानी में वेश्यावृत्ति के रूप में दिखाई देता है)। 'गोदान' में भी धनिया, झुनिया, रूपा, सोना जैसी महिलाएँ पुरुष-प्रधान समाज के भीतर शोषण के दोहरे भार को उठाती हैं। धनिया अपने पति के आदर्शवादी समर्पण की कीमत

चुकाती है और भूख, गरीबी तथा सामाजिक निंदा का सामना करती है। वह नारी मुक्ति का प्रश्न विद्रोह के माध्यम से उठाती है—वह आवाज उठाती है, जबकि होरी चुपचाप सहता है। झुनिया समाज द्वारा तिरस्कृत होने के बावजूद गोबर के साथ अपने रिश्ते को मान्यता दिलाकर अपनी गरिमा बचाती है। हालाँकि, 'गोदान' सीधे तौर पर नारी मुक्ति का कोई सरल समाधान नहीं देता, जैसा कि 'सेवासदन' या 'निर्मला' में एक समय दिया गया था। इसके बजाय, यह दिखाता है कि ग्रामीण नारी की मुक्ति सीधे तौर पर आर्थिक मुक्ति और जाति-धर्म के पाखंड को तोड़ने पर निर्भर करती है। धनिया का अंतिम विरोध (दो आने फेंकना) यह दर्शाता है कि नारी अब शोषक धर्म और परंपरावादी पुरुष दोनों के बंधन को चुनौती देने को तैयार है।

गोदान का महत्व और प्रेमचंद की विरासत

'गोदान' हिंदी साहित्य में एक मील का पत्थर है। इसका महत्व केवल यह नहीं है कि यह किसान जीवन की त्रासदी का महाकाव्य है, बल्कि यह समग्र भारतीय सामाजिक-आर्थिक संरचना का एक यथार्थवादी विश्लेषण प्रस्तुत करता है। यह उपन्यास दिखाता है कि गरीबी कोई व्यक्तिगत असफलता नहीं, बल्कि सामंती-पूंजीवादी-धार्मिक शोषण की एक सुनियोजित प्रणाली का परिणाम है। उपन्यास का अंत (होरी की दयनीय मृत्यु) प्रेमचंद के आदर्शोन्मुखी यथार्थवाद के अंत और गहन यथार्थवाद की विजय को चिह्नित करता है—एक ऐसा यथार्थ जिसमें परिवर्तन की आशा के लिए कोई जगह नहीं बची है, केवल शोषण की अनिवार्यता ही शेष है। 'गोदान' की विरासत यह है कि इसने साहित्य को सामाजिक परिवर्तन से जोड़ा। प्रेमचंद ने अपने साहित्य के माध्यम से किसान, मजदूर, और नारी के दुःख और संघर्ष को साहित्य की मुख्यधारा में लाकर खड़ा कर दिया। आज भी, ग्रामीण भारत की आर्थिक असमानता, जातिगत भेदभाव और कर्ज का दबाव समझने के लिए 'गोदान' एक अद्वितीय और प्रासंगिक दस्तावेज बना हुआ है, जो हमें मानव गरिमा के मूल्यों को कभी न भूलने की प्रेरणा देता है।

8.4 यशपाल

यशपाल (१९०३-१९७६) हिंदी साहित्य के प्रगतिशील युग के अग्रणी हस्ताक्षर थे। उनका साहित्य केवल कथा कहने का माध्यम नहीं था, बल्कि वर्ग संघर्ष और सामाजिक विषमता के विरुद्ध एक सचेत राजनीतिक क्रिया था। उनका मूल उद्देश्य

मार्क्सवादी-लेनिनवादी विचारधारा के आधार पर सामाजिक यथार्थ का नग्न चित्रण करना, शोषक वर्गों (पूँजीपति, सामंत, धर्मगुरु) के पाखंड को उजागर करना और शोषित, वंचित तथा सर्वहारा वर्ग को मुक्ति के मार्ग (संघर्ष और क्रांति) के प्रति जागरूक करना था। प्रारंभिक दौर में वे स्वयं क्रांतिकारी गतिविधियों से जुड़े रहे, जिसका सीधा प्रभाव उनके लेखन पर पड़ा। उनके उपन्यासों में, विशेषकर 'झूठा सच' (दो खंड, १९५८-१९६०) में, यह उद्देश्य अपनी पराकाष्ठा पर पहुँचता है। इस उपन्यास के माध्यम से, यशपाल ने भारतीय स्वतंत्रता और विभाजन जैसी महत्वपूर्ण ऐतिहासिक घटनाओं को मात्र राजनीतिक त्रासदी के रूप में नहीं, बल्कि सामंतशाही और पूंजीवादी स्वार्थों के परिणामस्वरूप हुई मानवीय त्रासदी के रूप में चित्रित किया। उनका उद्देश्य स्पष्ट है: इतिहास के 'झूठे सच' को बेनकाब करना और उस वास्तविक, प्रगतिशील 'सच' को सामने लाना जो जनता के हितों में निहित है। यशपाल का यथार्थवाद प्रेमचंद के मानववादी यथार्थवाद से आगे बढ़कर विश्लेषणात्मक और सैद्धांतिक यथार्थवाद बन जाता है, जहाँ हर घटना की व्याख्या भौतिकवादी दर्शन के आधार पर की जाती है।

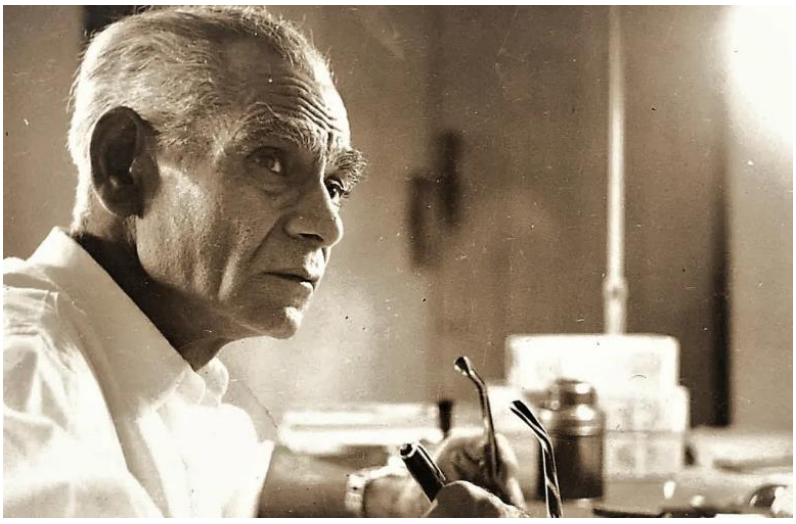

चित्र 2.2: यशपाल (१९०३-१९७६)

प्रगतिशील विचारधारा: सिद्धांत और यशपाल का मार्क्सवादी दृष्टिकोण

यशपाल की साहित्यिक दृष्टि का आधार प्रगतिशील विचारधारा थी, जो १९३० के दशक में भारतीय साहित्य में मार्क्सवादी दर्शन से प्रेरित होकर उभरी। इस विचारधारा के

मुख्य सिद्धांत थे: यथार्थ का द्वंद्वात्मक भौतिकवादी विश्लेषण, कला को जीवन के लिए मानना, वर्ग संघर्ष को इतिहास की प्रेरक शक्ति मानना, और श्रम तथा सर्वहारा वर्ग का महिमामंडन करना। यशपाल ने इन सिद्धांतों को अत्यंत कठोरता से अपने लेखन में लागू किया। वे मानते थे कि कला केवल मनोरंजन या सौंदर्यबोध के लिए नहीं है, बल्कि सामाजिक परिवर्तन का एक शक्तिशाली औज़ार है। 'झूठा सच' में, यशपाल विभाजन को ईश्वरीय इच्छा या अपरिहार्य नियति के रूप में नहीं देखते, बल्कि साम्राज्यवादी षड्यंत्रों और भारतीय पूंजीपति वर्ग की सत्ता लोलुपता के परिणाम के रूप में देखते हैं। वे स्पष्ट रूप से दिखाते हैं कि कैसे धर्म और सांप्रदायिकता को केवल आर्थिक और राजनीतिक हितों की पूर्ति के लिए इस्तेमाल किया गया। उनके पात्रों (जैसे तारा) के माध्यम से, वह यह भी दर्शाते हैं कि मानवीय रिश्ते और नैतिकता कैसे पूंजीवादी समाज के भीतर टूटते हैं और कैसे शोषित वर्ग (जैसे गरीब शरणार्थी) ही सबसे अधिक पीड़ा झेलता है, भले ही वे किसी भी धर्म या राष्ट्र के हों। इस प्रकार, यशपाल का प्रगतिवाद मानववाद नहीं, बल्कि संघर्षशील, चेतनामय भौतिकवाद था।

'झूठा सच': कथावस्तु का व्यापक फलक (वतन और देश का भविष्य)

'झूठा सच' की कथावस्तु एक व्यक्ति या परिवार की कहानी न होकर, संपूर्ण उपमहाद्वीप के एक महत्वपूर्ण ऐतिहासिक संक्रमण काल (१९४२ से स्वतंत्रता प्राप्ति और उसके बाद) की कहानी है। यह उपन्यास दो खंडों में विभाजित है: पहला खंड 'वतन और देश', जो १९४७ के विभाजन और लाहौर से लोगों के विस्थापन की क्रूर कहानी कहता है; और दूसरा खंड 'देश का भविष्य', जो विभाजन के बाद दिल्ली में शरणार्थियों के पुनर्वास, संघर्ष और नवगठित भारतीय राज्य के भीतर पनपते भ्रष्टाचार, पूंजीवादी शोषण और राजनीतिक पाखंड का चित्रण करता है। उपन्यास का केंद्रीय कथानक जयदेव पूरी (बुद्धिजीवी पत्रकार) और उसकी बहन तारा के माध्यम से आगे बढ़ता है। पूरी परिवार लाहौर में एक मध्यमवर्गीय जीवन जीता है, जो विभाजन की आग में झुलस जाता है। तारा को विभाजन के दंगों में भीषण यातनाएँ झेलनी पड़ती हैं, जबकि जयदेव राजनीतिक महत्त्वाकांक्षाओं और आदर्शवाद के बीच संघर्ष करता है। यशपाल ने जानबूझकर यह कथावस्तु इतनी व्यापक रखी ताकि वह व्यष्टि (व्यक्ति) के दुख को समष्टि (समाज) की व्यापक राजनीतिक और आर्थिक विडंबनाओं से जोड़

सकें। यह उपन्यास भारतीय इतिहास की एक विराट भित्ति-चित्र है, जिसके केंद्र में मानवीय संवेदना और परिधि पर राजनीतिक अवसरवाद है।

विभाजन की त्रासदी: मानवीय संवेदना और विस्थापन का क्रूर यथार्थ

'झूठा सच' भारतीय विभाजन पर लिखे गए उपन्यासों में अपनी निर्मम यथार्थवादिता के कारण अद्वितीय स्थान रखता है। यशपाल ने विभाजन के दौरान हुई हत्याओं, लूटपाट, बलात्कार और सामूहिक विस्थापन का अत्यंत सजीव और हृदय-विदारक चित्रण किया है। उनकी दृष्टि में, यह त्रासदी केवल दो धर्मों के बीच का झगड़ा नहीं था, बल्कि सामान्य जनता के प्रति सत्ता की घोर उदासीनता का प्रमाण था। उपन्यास दिखाता है कि कैसे धार्मिक उन्माद ने सदियों से साथ रह रहे पड़ोसियों को क्रूर हत्यारों में बदल दिया और कैसे निरीह, गरीब लोग अपनी जन्मभूमि छोड़कर अनिश्चित भविष्य की ओर धकेल दिए गए। तारा का दंगे में फंसना, उसका अपमान और संघर्ष, विभाजन की त्रासदी का स्त्री-केंद्रित सबसे मार्मिक अध्याय है। यशपाल ने विस्थापन के बाद शरणार्थी शिविरों में पनपी बेबसी, भूख, और शोषण को भी विस्तार से दर्शाया है। विस्थापित लोगों की यह क्रूर नियति दर्शाती है कि स्वतंत्रता की कीमत सत्ता लोलुप नेताओं ने नहीं, बल्कि गरीब और साधारण जनता ने चुकाई, जिनकी मानवीय संवेदनाएँ और जीवन दोनों ही राजनीति की वेदी पर चढ़ गए।

ऐतिहासिक यथार्थ और कालखंड का चित्रण (१९४२-१९४७)

यशपाल 'झूठा सच' को केवल एक सामाजिक उपन्यास तक सीमित नहीं रखते, बल्कि इसे द्वितीय विश्व युद्ध के बाद और भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन के अंतिम चरण का एक प्रामाणिक ऐतिहासिक दस्तावेज बनाते हैं। उपन्यास १९४२ के 'भारत छोड़ो आंदोलन' के संदर्भ से शुरू होता है और १९४७ के विभाजन पर केंद्रित होता है। यशपाल उन राजनीतिक समझौतों, गुटबाजी और ब्रिटिश हुकूमत की 'बांटो और राज करो' की नीति का पर्दाफाश करते हैं, जिसने विभाजन को अपरिहार्य बना दिया। वे राष्ट्रीय नेताओं के सार्वजनिक आदर्शवाद और उनके निजी स्वार्थों के बीच के विरोधाभास को भी उजागर करते हैं। उनका ऐतिहासिक यथार्थ केवल बड़ी घटनाओं का ब्यौरा नहीं है, बल्कि जनमानस पर इन घटनाओं के मनोवैज्ञानिक और आर्थिक प्रभाव का सूक्ष्म अध्ययन है। उदाहरण के लिए, वे दिखाते हैं कि कैसे जंग के मुनाफे से पैदा हुआ एक

नया पूंजीपति वर्ग विभाजन की अराजकता का फायदा उठाकर शरणार्थियों की संपत्ति लूटने में संलग्न हो जाता है। इस प्रकार, 'झूठा सच' उस दौर की सामाजिक संरचना, आर्थिक विषमताओं, और राजनीतिक चालों का एक बहुआयामी, निर्भीक और ऐतिहासिक रूप से सटीक चित्रण प्रस्तुत करता है, जिसे यशपाल ने द्वंद्वात्मक भौतिकवाद की कसौटी पर कसकर लिखा है।

पात्र विश्लेषण: तारा, जयदेव, और सामाजिक-राजनीतिक संघर्ष

'झूठा सच' के पात्र दो मुख्य वैचारिक ध्रुवों का प्रतिनिधित्व करते हैं। जयदेव पूरी, उपन्यास का केंद्रीय पुरुष पात्र, एक आदर्शवादी लेकिन भ्रमित बुद्धिजीवी है। वह एक पत्रकार है जो सामाजिक न्याय की बात करता है, लेकिन व्यक्तिगत जीवन में वह अवसरवाद का शिकार होता है, और धीरे-धीरे राजनीतिक महत्त्वाकांक्षाओं और मध्यवर्गीय नैतिकता के दलदल में फंसता जाता है। उसका आदर्शवाद भौतिकवादी संघर्ष के सामने कमजोर पड़ता है। इसके विपरीत, तारा, जयदेव की बहन, उपन्यास की सर्वाधिक संघर्षशील और प्रगतिशील पात्र है। विभाजन की त्रासदी में वह भयंकर शारीरिक और मानसिक यातना झेलती है, लेकिन वह टूटती नहीं, बल्कि अपनी अस्मिता को बचाने के लिए संघर्ष करती है। तारा का चरित्र विभाजन के दौरान पीड़ित भारतीय नारी का प्रतीक है, लेकिन वह अंततः रूढ़िवादी नैतिकता को त्यागकर, अपने श्रम और स्वाभिमान के बल पर खड़ी होती है। उसका जीवन यह दर्शाता है कि सच्चा संघर्ष और मुक्ति किसी पुरुष या सरकारी व्यवस्था पर निर्भर नहीं, बल्कि स्वयं के श्रम और चेतना पर आधारित है। नय्यर जैसे पात्र नवधनाढ्य, भ्रष्ट पूंजीपति वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हैं, जो विभाजन के बाद की अस्थिरता का लाभ उठाकर समाज को दूषित करते हैं। यशपाल इन पात्रों के माध्यम से प्रगतिशील दृष्टि से व्यक्तिगत नैतिकता और सामाजिक राजनीति के अंतर्संबंधों को उजागर करते हैं।

वर्ग संघर्ष और पूंजीवादी-सामंती शक्तियों का विघटन

यशपाल की प्रगतिशील विचारधारा का सबसे मुखर अभिव्यक्ति वर्ग संघर्ष के चित्रण में होती है। 'झूठा सच' यह स्थापित करता है कि विभाजन का मूल कारण धार्मिक नहीं, बल्कि आर्थिक था। उपन्यास दिखाता है कि कैसे सामंती शक्तियाँ (जैसे पुराने जमींदार) और उभरता पूंजीपति वर्ग (जैसे नय्यर) एक-दूसरे के साथ मिलकर जनता

के शोषण के लिए एक नया गठजोड़ बनाते हैं। विभाजन के बाद, शरणार्थी शिविरों और दिल्ली के बाज़ारों में पूंजीवादी व्यवस्था की क्रूरता स्पष्ट दिखाई देती है, जहाँ शरणार्थियों की बेबसी को ** मुनाफा कमाने** का अवसर माना जाता है। जयदेव पूरी जैसे बुद्धिजीवी वर्ग को भी यशपाल ने वर्ग विश्लेषण से बाहर नहीं रखा; वे दिखाते हैं कि कैसे यह वर्ग भी अंततः आर्थिक सुरक्षा और सामाजिक प्रतिष्ठा के सामने अपने आदर्शों से समझौता कर लेता है। यशपाल का चित्रण यह दिखाता है कि स्वतंत्रता ने केवल सत्ता का हस्तांतरण किया है, जबकि शोषण की प्रणाली (वर्ग विभाजन) जस की तस बनी रही है और यहाँ तक कि और अधिक जटिल और व्यापक हो गई है। यह वर्ग संघर्ष का चित्रण उपन्यास को एक महान सामाजिक-आर्थिक आलोचना का दर्जा देता है।

स्त्री स्वतंत्रता और अस्मिता का प्रश्न: 'झूठा सच' के आईने में

'झूठा सच' यशपाल के उपन्यासों में स्त्री स्वतंत्रता के प्रश्न को अत्यंत गंभीर और क्रांतिकारी तरीके से उठाता है। उपन्यास का सर्वाधिक महत्वपूर्ण योगदान तारा के चरित्र में निहित है। विभाजन के दौरान जब तारा को समाज द्वारा 'भ्रष्ट' या 'अशुद्ध' मानकर तिरस्कृत किया जाता है, तो वह पितृसत्तात्मक रूढ़ियों को अस्वीकार कर देती है। उसकी मुक्ति का मार्ग किसी आदर्शवादी पति या समाज सुधारक के माध्यम से नहीं, बल्कि स्वयं के श्रम, आर्थिक स्वतंत्रता और आत्म-सम्मान के द्वारा प्रशस्त होता है। तारा का संघर्ष केवल जीवनयापन का नहीं, बल्कि अपनी अस्मिता को पुनर्स्थापित करने का है। यशपाल इस बात पर जोर देते हैं कि स्त्री की सच्ची स्वतंत्रता आर्थिक परतंत्रता और सामाजिक पाखंड से मुक्ति पाने में है। वह दिखाती है कि नारी मुक्ति का प्रश्न सीधे तौर पर प्रगतिशील राजनीतिक चेतना और वर्ग संघर्ष से जुड़ा हुआ है। उपन्यास में अन्य महिला पात्र (जैसे जयदेव की पत्नी) भी मध्यवर्गीय नैतिकता और दिखावटी जीवन की सीमाओं को दर्शाती हैं, जबकि तारा एक नई, संघर्षशील, और आत्म-निर्भर नारी का प्रतीक बनकर उभरती है।

यशपाल की भाषा, शैली और संवादों की धार

यशपाल की भाषा उनकी प्रगतिशील विचारधारा की तरह ही स्पष्ट, सीधी और प्रखर है। उन्होंने जानबूझकर ऐसी भाषा का प्रयोग किया जो जनता तक सीधे पहुँचे—इसमें

उर्दू, हिंदी और स्थानीय बोलियों का सामंजस्यपूर्ण मिश्रण है, जो उनके समकालीन प्रेमचंद की हिन्दुस्तानी से कुछ अधिक राजनीतिक और विश्लेषणात्मक है। उनकी शैली की सबसे बड़ी विशेषता तथ्यात्मकता और विवरण की सटीकता है। विभाजन और दंगे के दृश्यों का उनका चित्रण डरावना, लेकिन आवश्यक रूप से सजीव है। यशपाल वर्णनात्मक शैली का प्रयोग करते हुए भी सूक्ष्म सामाजिक विश्लेषण प्रस्तुत करते जाते हैं, जिससे उनका उपन्यास केवल एक कहानी न रहकर एक सैद्धांतिक पाठ बन जाता है। उनके संवाद अत्यंत तीखे, उद्देश्यपूर्ण और विचारधारात्मक होते हैं। पात्र केवल बात नहीं करते, बल्कि वर्ग और राजनीति पर टिप्पणी करते हैं। विहंगम दृष्टिकोण (omniscient narrator) का प्रयोग करते हुए, यशपाल लगातार कहानी में राजनीतिक-आर्थिक टिप्पणियाँ जोड़ते चलते हैं, जिससे पाठक घटना के साथ-साथ उसके कारणों और परिणामों को भी समझता चलता है। यह शैलीगत प्रयोग ही 'झूठा सच' को एक युग-परिवर्तनकारी दस्तावेज बनाता है।

'झूठा सच' का महत्व और यशपाल की साहित्यिक विरासत

'झूठा सच' हिंदी साहित्य में एक अद्वितीय महाकाव्य है, जिसने विभाजन की त्रासदी को उसकी संपूर्ण राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक जटिलता के साथ चित्रित किया। इसका महत्व केवल यह नहीं है कि यह एक ऐतिहासिक कालखंड का सजीव चित्र है, बल्कि यह स्वतंत्रता के बाद की भारतीय व्यवस्था पर एक मूलभूत प्रश्नचिह्न लगाता है। यशपाल ने सिद्ध किया कि साहित्य इतिहास की आलोचना करने का सबसे शक्तिशाली माध्यम हो सकता है। 'झूठा सच' की विरासत इस बात में निहित है कि इसने प्रगतिशील यथार्थवाद को एक नई ऊँचाई दी, जहाँ कला और क्रांति एक-दूसरे से अविभाज्य रूप से जुड़ गए। तारा का संघर्ष नारी मुक्ति के लिए एक प्रेरणा स्रोत बना, और उपन्यास ने भारतीय समाज के भीतर पल रहे भ्रष्टाचार, पूंजीवाद और अवसरवाद के 'झूठे सच' को बेनकाब किया। आज भी, जब भारत विभाजन के परिणामों और साम्प्रदायिक राजनीति की पड़ताल करता है, तब 'झूठा सच' एक आवश्यक पाठ के रूप में प्रासंगिक बना रहता है, जो हमें इतिहास की असली कीमत—साधारण जनता का दुख—को कभी न भूलने की प्रेरणा देता है।

8.5 फणीश्वरनाथ रेणु

फणीश्वरनाथ रेणु (१९२१-१९७७) हिंदी उपन्यास साहित्य में एक नया युग लेकर आए, जिसे आंचलिक साहित्य के नाम से जाना जाता है। प्रेमचंद और यशपाल जैसे उपन्यासकारों ने जहाँ क्रमशः सामाजिक-नैतिक यथार्थवाद और राजनीतिक-प्रगतिशील यथार्थवाद को स्थापित किया, वहीं रेणु ने साहित्य का केंद्र बिंदु ग्राम्य समाज के राजनीतिक-आर्थिक शोषण से हटाकर उसके समग्र लोकजीवन, संस्कृति और विशिष्ट क्षेत्रीय पहचान पर केंद्रित कर दिया। उनका मूल उद्देश्य किसी आदर्श या विचारधारा का प्रचार करना नहीं था, बल्कि भारत के गाँव की आत्मा को उसकी संपूर्ण गंदगी (मैलापन) और सुंदरता के साथ कला में उतारना था। रेणु के अनुसार, उनके लेखन का नायक कोई व्यक्ति नहीं, बल्कि पूरा का पूरा 'अंचल' (क्षेत्र) होता है। 'मैला आँचल' (१९५४) के प्रकाशन ने साहित्य को एक नई दिशा दी, जहाँ लेखक ने अपनी जमीनी अनुभव को श्रृंगार और नग्नता दोनों के साथ प्रस्तुत किया। यह उपन्यास आंचलिकता का घोषणा पत्र बन गया, जिसने साहित्य में लोकभाषा, लोकगीत और लोकसंस्कृति के समावेश को अनिवार्य बना दिया। रेणु की दृष्टि में, गाँव केवल कर्ज और गरीबी का केंद्र नहीं था, बल्कि एक जीता-जागता, श्वास लेता हुआ सांस्कृतिक संसार था, जिसे समझने के लिए केवल अर्थव्यवस्था ही नहीं, बल्कि भाषा और लोकश्रुतियों की भी आवश्यकता थी। उन्होंने भारतीय ग्रामीण जीवन की उस कोमलता और क्रूरता को एक साथ चित्रित किया, जो महानगरों की चकाचौंध से अप्रभावित थी, लेकिन फिर भी आंतरिक और बाह्य दोनों प्रकार के संघर्षों से जूझ रही थी।

आंचलिकता की अवधारणा और 'मैला आँचल' का सैद्धांतिक आधार

आंचलिकता (Regionalism) केवल किसी कहानी को गाँव में स्थापित करना नहीं है; यह एक विशिष्ट साहित्यिक विचारधारा है जो किसी विशिष्ट भू-भाग (अंचल) की भौगोलिक, सांस्कृतिक, भाषाई और सामाजिक विशेषताओं को कथा का केंद्रीय तत्त्व बनाती है। रेणु ने स्वयं 'मैला आँचल' की भूमिका में इस बात पर जोर दिया था कि उन्होंने केवल अंचल को चित्रित नहीं किया, बल्कि उसे नायक बनाया है। आंचलिकता के तीन मुख्य तत्त्व होते हैं: क्षेत्रीय भू-दृष्टि (Landscape), जो कहानी के वातावरण को निर्धारित करती है; लोकभाषा और लोकसंस्कृति (Dialect and Folk Culture), जो

पात्रों की पहचान और उपन्यास की प्रामाणिकता स्थापित करती है; और बहुस्तरीय यथार्थ (Multi-layered Reality), जिसमें शोषण के साथ-साथ अंधविश्वास, जादू-टोना, सामूहिक उत्सव और व्यक्तिगत प्रेम भी शामिल होता है।

चित्र 2.3: फणीश्वरनाथ रेणु

'मैला आँचल' इस सैद्धांतिक आधार पर खरा उतरता है। इसका अंचल है 'मेरीगंज' नामक एक काल्पनिक गाँव, जो बिहार के पूर्णिया ज़िले (कोसी क्षेत्र) के एक विशेष भौगोलिक और सांस्कृतिक खंड का प्रतिनिधित्व करता है। उपन्यास में मलेरिया, बाढ़, दलदल, और टूटी सड़कों का विवरण केवल पृष्ठभूमि नहीं है, बल्कि जीवन की विवशता है। रेणु का आंचलिक यथार्थवाद प्रेमचंद के आदर्शोन्मुखी यथार्थवाद से इसलिए भिन्न है क्योंकि रेणु समस्याओं के समाधान में नहीं उलझते, बल्कि जीवन के सहज प्रवाह और उसके अंतर्विरोधों को स्वीकार करते हैं। इस उपन्यास में मिट्टी की गंध, विशिष्ट उच्चारण और रीति-रिवाज इतने गहरे तक समाए हुए हैं कि पाठक को महसूस होता है कि वह उस क्षेत्र के अंतरंग संसार का हिस्सा बन गया है।

कथावस्तु: मेरीगंज की कहानी और कथानक का विरल विस्तार

'मैला आँचल' की कथावस्तु पारंपरिक उपन्यासों की तरह किसी एक रैखिक सूत्र (जैसे गोदान में होरी की गाय की इच्छा) में नहीं बंधी है, बल्कि यह मेरीगंज गाँव के सामूहिक और छितराए हुए जीवन का समग्र चित्रण है। कहानी का आरंभ डॉ. प्रशांत नामक एक

युवा, आदर्शवादी डॉक्टर के आगमन से होता है, जो शहर से आकर इस मलेरिया और पिछड़ेपन से ग्रस्त गाँव में स्वास्थ्य केंद्र खोलता है। डॉ. प्रशांत का आगमन गाँव के स्थिर, सदियों पुराने सामाजिक जीवन में एक बाहरी हस्तक्षेप के रूप में कार्य करता है, जो गाँव की समस्याओं को उजागर करता है। कथा का मुख्य विषय किसी घटना पर केंद्रित न होकर अंचल के चरित्र पर केंद्रित है। इसमें तीन मुख्य सूत्र समानांतर चलते हैं: सामाजिक सूत्र (जातिगत संघर्ष, जमींदारी उन्मूलन); राजनीतिक सूत्र (कांग्रेस, सोशलिस्ट, कम्युनिस्ट दलों का प्रवेश); और सांस्कृतिक सूत्र (लोकजीवन, अंधविश्वास, प्रेम)। इन सूत्रों के माध्यम से, रेणु ने केवल एक गाँव की कहानी नहीं, बल्कि पूरे पिछड़े ग्रामीण भारत के जीवन की कहानी को चित्रित किया है, जहाँ प्रेम, राजनीति, जातिवाद और बीमारी सब एक साथ एक ही गंदगी भरे आँचल में लिपटे हुए हैं। मेरीगंज स्वयं एक जीवित पात्र है जिसके पास अपनी स्मृति, दर्द और हँसी है।

बहुकेंद्रिक उपन्यास (Multi-centric Novel) की संरचना और नवीनता

'मैला आँचल' की सबसे बड़ी संरचनात्मक नवीनता उसका बहुकेंद्रिक (Polycentric) होना है। यह उपन्यास पात्र-प्रधान या घटना-प्रधान नहीं है, बल्कि अंचल-प्रधान है। इसका अर्थ है कि इसमें कोई एक नायक (हीरो) नहीं है; बल्कि गाँव के विभिन्न तबकों के सैकड़ों पात्र—डॉ. प्रशांत, बावनदास, कालीचरण, लक्ष्मी, बालदेव, सहदेव मिसिर, रामदास—मिलकर एक सामूहिक नायकत्व का निर्माण करते हैं। रेणु ने उपन्यास को एपिसोडिक (प्रकरणों में विभाजित) शैली में लिखा है, जहाँ एक घटना या पात्र से कहानी दूसरे पात्र या घटना की ओर सहजता से मुड़ जाती है। इस संरचनात्मक स्वतंत्रता ने रेणु को गाँव के जीवन की अराजकता और विविधता को प्रामाणिक रूप से प्रस्तुत करने की अनुमति दी। उदाहरण के लिए, एक क्षण कथा बावनदास के गांधीवादी आदर्श पर केंद्रित होती है, तो अगले ही क्षण लछमी और कोहरी के प्रेम पर या जादू-टोना करने वाले रामकिशन बाबू पर। यह बहुकेंद्रिकता यह दर्शाती है कि ग्रामीण समाज एक सरल इकाई नहीं है, बल्कि अनगिनत अंतर्विरोधों, छोटे-छोटे संघर्षों और बिखरी हुई इच्छाओं का एक जटिल ताना-बाना है। इस संरचना ने हिंदी उपन्यास को व्यक्ति-केंद्रितता से निकालकर समाज-केंद्रितता की ओर मोड़ दिया, जिससे यह उपन्यास केवल कथा नहीं, बल्कि एक सोशल क्रॉनिकल (सामाजिक वृत्तांत) बन गया।

ग्रामीण जीवन का समग्र चित्रण: शोषण और सामाजिक विखण्डन

रेणु ने 'मैला आँचल' में ग्रामीण जीवन का समग्र और बहुआयामी चित्रण किया है। उन्होंने केवल आर्थिक शोषण (जैसा कि प्रेमचंद करते थे) तक स्वयं को सीमित नहीं रखा, बल्कि सामाजिक, धार्मिक, जातिगत और राजनीतिक शोषण के जटिल अंतर्संबंधों को भी उजागर किया। उपन्यास में जाति-प्रथा का चित्रण अत्यंत सूक्ष्म है—विभिन्न जातियों (राजपूत, यादव, ब्राह्मण, मुसहर) के बीच के सूक्ष्म तनाव, भूमि विवाद और सामाजिक बहिष्कार के नियम स्पष्ट दिखाई देते हैं। ज़मींदारी उन्मूलन के बाद गाँव में एक नई तरह की राजनीतिक गुटबाज़ी का जन्म होता है, जहाँ सत्ता के लिए चरित्रहीनता और पाखंड ही प्रमुख हथियार बन जाते हैं। रेणु ने गरीबी और बीमारी (कालाज़ार, मलेरिया) के भयावह रूप को भी चित्रित किया है, जो बताता है कि मेरीगंज जैसे गाँव में भौगोलिक पिछड़ापन किस तरह सामाजिक पिछड़ेपन को बढ़ाता है। ग्रामीण जीवन का यह समग्र चित्रण केवल नकारात्मक नहीं है; रेणु आपसी प्रेम, त्यौहारों में सामूहिकता, और विपत्ति में एकजुटता को भी स्थान देते हैं। यह समग्रता 'मैला आँचल' को एक ऐसी कृति बनाती है जो गाँव के सकारात्मक और नकारात्मक, मैला और आँचल (गंदा और पवित्र) दोनों पहलुओं को एक साथ आत्मसात करती है।

लोकजीवन, संस्कृति और लोकश्रुतियों का समावेश

रेणु की आंचलिकता का प्राण लोकजीवन और लोकसंस्कृति में बसता है। 'मैला आँचल' केवल घटनाओं का क्रम नहीं है, बल्कि पूर्वी बिहार की सांस्कृतिक आत्मा का दस्तावेजीकरण है। उपन्यास में लोकगीतों, कथाओं, किंवदंतियों (लोकश्रुतियों), और सामूहिक नृत्यों (जैसे जतरा) का प्रयोग इतने सहजता से किया गया है कि वे कथा का अविभाज्य अंग बन जाते हैं। गाँव के लोगों की आस्था, अंधविश्वास (जादू-टोना, भूत-प्रेत का भय), और धार्मिक अनुष्ठान (पूजा-पाठ) उपन्यास को एक अद्वितीय सांस्कृतिक गहराई प्रदान करते हैं। लोकजीवन के ये तत्त्व पात्रों के मनोविज्ञान और निर्णयों को प्रभावित करते हैं। उदाहरण के लिए, बीमारी से जूझते लोग डॉक्टर की दवा से पहले ओझा-गुनी के टोटके पर विश्वास करते हैं। रेणु ने ग्रामीण समाज के नैतिक मापदंडों को भी लोकजीवन के माध्यम से प्रस्तुत किया है, जहाँ शहर की नैतिकता काम नहीं करती, और सामुदायिक राय ही अंतिम सत्य होती है। इन सांस्कृतिक तत्त्वों का

समावेश उपन्यास को एक इतिहासकार या समाजशास्त्री की रिपोर्ट से अधिक कलात्मक और जीवंत बनाता है, क्योंकि ये लोकतत्त्व न केवल मनोरंजन करते हैं, बल्कि जीवन-दर्शन को भी अभिव्यक्त करते हैं।

लोकभाषा, शैली और विशिष्ट शब्दावली का प्रयोग

रेणु की सबसे बड़ी साहित्यिक देन लोकभाषा (Dialect) को हिंदी साहित्य के मुख्य मंच पर प्रतिष्ठापित करना है। उन्होंने मैथिली और कोसी क्षेत्र की विशिष्ट शब्दावली, मुहावरों, लोकोक्तियों, और वाक्यों की ध्वनि-संरचना को सीधे उपन्यास में उतार दिया। यह लोकभाषा केवल पात्रों के संवाद तक सीमित नहीं है, बल्कि वर्णन की भाषा भी बन जाती है। रेणु की भाषा में एक अद्वितीय संगीतात्मकता और नाद-सौंदर्य है, जो लोकगीतों की लय से प्रभावित है। विशिष्ट क्षेत्रीय शब्दों (जैसे *जमीनदारी*, *जायदाद*, *गंजेड़ी*, *गंजेड़ी* की विशिष्ट गालियाँ) का प्रयोग पात्रों के वर्ग और स्थान को तुरंत स्थापित करता है। इस प्रयोग के कारण, उपन्यास की भाषा मानक हिंदी से कुछ कठिन ज़रूर हो जाती है, लेकिन उसकी प्रामाणिकता और रसात्मकता कई गुना बढ़ जाती है। रेणु की शैली में ध्वन्यात्मकता का विशेष महत्व है—पशुओं की आवाजें, जतरा की धुन, और नदी की कलकल, सब कुछ भाषा के माध्यम से साकार हो उठता है। लोकभाषा का यह उपयोग यह भी दर्शाता है कि रेणु ग्रामीण जनता की अभिव्यक्ति की शक्ति पर कितना विश्वास करते थे और कैसे उन्होंने उनके मौखिक इतिहास को लिखित साहित्य का रूप दिया।

परंपरा और आधुनिकता का द्वंद्व: डॉ. प्रशांत की भूमिका

'मैला आँचल' में परंपरा (अंधविश्वास, जाति-व्यवस्था, रूढ़ियाँ) और आधुनिकता (विज्ञान, शिक्षा, राजनीतिक चेतना) के बीच एक गहरा और जटिल द्वंद्व दिखाई देता है। इस द्वंद्व का केंद्रीय प्रतीक हैं डॉ. प्रशांत। डॉ. प्रशांत, जो स्वयं अवैध संतान होने के कारण अपनी जड़ें तलाशने गाँव आते हैं, आधुनिक चिकित्सा विज्ञान और समाज सेवा के आदर्श को लेकर मेरीगंज पहुँचते हैं। उनका उद्देश्य गाँव को मलेरिया और पिछड़ेपन से मुक्त करना है। हालाँकि, उन्हें शीघ्र ही यह एहसास होता है कि गाँव का वास्तविक रोग केवल शारीरिक नहीं, बल्कि सामाजिक और सांस्कृतिक है। उनकी आधुनिकता रूढ़ियों और अंधविश्वासों के सामने बार-बार असफल होती है, और उन्हें

यह स्वीकार करना पड़ता है कि परिवर्तन केवल बाहरी शक्ति से नहीं, बल्कि आंतरिक चेतना से ही संभव है। दूसरी ओर, कालीचरण (सोशलिस्ट कार्यकर्ता) और बालदेव (कांग्रेसी कार्यकर्ता) जैसे पात्र राजनीतिक आधुनिकता का प्रतिनिधित्व करते हैं, जो गाँव में जागरूकता लाते हैं, लेकिन स्वयं भी सत्ता की गुटबाज़ी और भ्रष्टाचार के शिकार हो जाते हैं। इस द्वंद्व के माध्यम से, रेणु यह निष्कर्ष निकालते हैं कि शुद्ध, आयातित आधुनिकता भारतीय गाँव को सीधे तौर पर बदल नहीं सकती; बल्कि इसे स्थानीय संस्कृति और परंपरा के साथ समन्वय स्थापित करना होगा, जैसा कि अंत में डॉ. प्रशांत स्वयं करते हैं।

रेणु की विशिष्ट शैली और कथात्मक तकनीक

रेणु की कथात्मक शैली अत्यंत अद्वितीय और प्रयोगधर्मी है। उनकी शैली को अक्सर 'सिनेमाई' कहा जाता है, क्योंकि वे छोटे-छोटे दृश्य (एपिसोड) बनाते हैं जो किसी कैमरे की आँख की तरह गाँव के जीवन को कैप्चर करते हैं। उनकी तकनीक की प्रमुख विशेषताएँ हैं: प्रवाहमानता (Flowing Narrative), जिसमें कथा एक घटना से दूसरी घटना की ओर तेज़ी से और बिना किसी औपचारिक संक्रमण के मुड़ती है; एपिसोडिक संरचना, जो गाँव के जीवन की अनायासता और अराजकता को दर्शाती है; और तटस्थ कथावाचक (Impartial Narrator), जो घटनाएँ तो दिखाता है, लेकिन उन पर कोई स्पष्ट नैतिक निर्णय नहीं देता (यशपाल के विपरीत)। रेणु दृश्य, श्रव्य और घ्राण (गंध) की इमेजरी का भरपूर उपयोग करते हैं। मलेरिया के मच्छरों की भिनभिनाहट, बाढ़ के पानी की गंध, और खेत की सोंधी खुशबू उनके वर्णन को अत्यंत संवेदी बना देती है। उनकी शैली लोककथाओं के कथा कहने के तरीके से भी प्रभावित है, जिसमें अतिशयोक्ति, सहज हास्य और करुणा का मिश्रण होता है। यह कथात्मक तकनीक 'मैला आँचल' को एक ऐसा बहु-स्तरीय पाठ बनाती है जो एक साथ सामाजिक दस्तावेज़, सांस्कृतिक इतिहास और मार्मिक कलाकृति के रूप में कार्य करता है।

'मैला आँचल' का महत्व और रेणु की साहित्यिक विरासत

'मैला आँचल' हिंदी उपन्यास साहित्य के इतिहास में एक क्रांतिकारी और विभाजक कृति है। इसका महत्व केवल यह नहीं है कि इसने आंचलिकता जैसी नई विधा को

जन्म दिया, बल्कि यह कि इसने साहित्य के केंद्र को शहर और महानगरों से हटाकर भारत के वास्तविक ग्रामीण हृदय की ओर मोड़ दिया। 'मैला आँचल' ने सिद्ध किया कि साहित्य में लोकभाषा और लोकसंस्कृति का समावेश उसकी सार्थकता और सुंदरता को बढ़ाता है। यह उपन्यास स्वतंत्र भारत के गाँवों की समस्याओं—ज़मींदारी उन्मूलन के बाद उत्पन्न नए राजनीतिक पाखंड, जातिवाद का नया रूप, और शिक्षा तथा स्वास्थ्य जैसी मूलभूत सुविधाओं की कमी—का एक प्रामाणिक ऐतिहासिक और सामाजिक दस्तावेज़ है। रेणु की विरासत हिंदी साहित्य में संवेदना और प्रामाणिकता को वापस लाने में निहित है। उन्होंने अपने लेखन से यह दिखाया कि गाँव का जीवन केवल गरीबी ही नहीं है, बल्कि असीम लोकशक्ति, सांस्कृतिक विविधता, और मानवीय जिजीविषा का भी स्रोत है। 'मैला आँचल' आज भी भारतीय समाज के जड़ों को समझने, और साहित्य में यथार्थ के नए आयामों को तलाशने के लिए एक अपरिवर्तनीय मानक बना हुआ है।

8.6 मन्नू भंडारी

मन्नू भंडारी (1931-2021) आधुनिक हिंदी साहित्य की उन मूर्धन्य लेखिकाओं में से हैं, जिन्होंने स्त्री लेखन (Women's Writing) की जमीन तैयार की और उसे एक नई दिशा दी। उनका लेखन केवल नारी-विमर्श तक सीमित नहीं रहा, बल्कि उन्होंने आधुनिक समाज, बदलते पारिवारिक मूल्य और मध्यवर्गीय जीवन की विडंबनाओं को अत्यंत बारीकी से चित्रित किया। भंडारी, राजेंद्र यादव के साथ 'एक इंच मुस्कान' जैसे उपन्यास लिखकर नई कहानी आंदोलन से जुड़ी रहीं, लेकिन उनका स्वतंत्र लेखन, विशेषकर 'आपका बंटी' और 'महाभोज' में, सामाजिक यथार्थ और मनोवैज्ञानिक गहराई की दृष्टि से अद्वितीय है। उनका मुख्य उद्देश्य केवल कहानी सुनाना नहीं, बल्कि पाठकों को सामाजिक और पारिवारिक संरचनाओं की खामियों पर विचार करने के लिए प्रेरित करना रहा है। उनके पात्र जीवन की सच्चाइयों से जूझते हैं और यह संघर्ष ही उनके साहित्य को कालजयी बनाता है। उनका स्त्री दृष्टिकोण (Stree Drishtikon) परंपरागत मान्यताओं को चुनौती देता है, जहाँ स्त्री को केवल त्याग और सहनशीलता की मूर्ति के रूप में प्रस्तुत करने के बजाय, उसे आत्म-संघर्ष करती, नौकरी करती और अपने अस्तित्व को तलाशती हुई व्यक्ति के रूप में दिखाया गया है। भंडारी का मानना था कि परिवार और समाज की संरचना में बदलाव अपरिहार्य है,

और इस बदलाव का सबसे बड़ा शिकार मध्यवर्ग का संवेदनशील व्यक्ति होता है, जिसका सर्वश्रेष्ठ उदाहरण 'आपका बंटी' का बाल पात्र बंटी है। उनका लेखन एक सामाजिक दस्तावेज़ है, जो दिखाता है कि व्यक्तिगत मुक्ति और पारंपरिक संस्थाओं का टकराव किस प्रकार मानवीय संबंधों की जटिलता को बढ़ाता है। उन्होंने अपने समय की उन समस्याओं को उठाया, जिन्हें समाज में दबे-छिपे रूप में ही स्वीकार किया जाता था, जैसे कि तलाक, बच्चों पर उसका असर, और कामकाजी महिला की द्वंद्वात्मक स्थिति। इस प्रकार, मन्नू भंडारी भारतीय कथा साहित्य में न केवल एक लेखिका हैं, बल्कि एक समाजशास्त्रीय टिप्पणीकार भी हैं, जिन्होंने अपनी कलम से एक पूरे युग के मध्यवर्गीय जीवन (Madhyavargiya Jeevan) का लेखा-जोखा तैयार किया।

मन्नू भंडारी के उपन्यासों का अध्ययन: समाज, संबंध और संघर्ष

मन्नू भंडारी का कथा-साहित्य तीन प्रमुख स्तंभों पर टिका है: समाज, संबंध और संघर्ष। उनके उपन्यासों का अध्ययन करने पर यह स्पष्ट होता है कि वे केवल व्यक्तिगत जीवन की कहानियाँ नहीं रचतीं, बल्कि उनके माध्यम से तत्कालीन सामाजिक और राजनीतिक विसंगतियों को भी उजागर करती हैं। उनके प्रारंभिक लेखन में जहाँ व्यक्ति के मनोभावों और संबंधों की सूक्ष्मता पर ज़ोर था, वहीं बाद के लेखन में सामाजिक और राजनीतिक फलक का विस्तार हुआ। 'आपका बंटी' (1971) और 'महाभोज' (1979) उनके लेखन की दो विशिष्ट शैलियों का प्रतिनिधित्व करते हैं। 'महाभोज' में उन्होंने सत्ता, राजनीति और जातिवाद के गठजोड़ को केंद्र में रखकर सामाजिक-राजनीतिक विकृतियों का विस्तृत चित्रण किया, जबकि 'आपका बंटी' पूरी तरह से पारिवारिक संबंधों की मनोवैज्ञानिक जटिलता पर केंद्रित है। इस विरोधाभासी प्रस्तुति से यह पता चलता है कि भंडारी की दृष्टि कितनी बहुआयामी थी। उनके उपन्यासों में संबंध हमेशा गतिमान होते हैं; वे स्थिर नहीं रह सकते। पति-पत्नी, माता-पिता-संतान, और समाज-व्यक्ति के बीच के संबंध लगातार परीक्षा की कसौटी पर कसे जाते हैं। यह संघर्ष अक्सर मध्यवर्गीय नैतिकताओं और आधुनिक आकांक्षाओं के बीच उत्पन्न होता है। उनके पात्रों में आर्थिक स्वतंत्रता की चाहत होती है, लेकिन वे सामाजिक बंधनों से पूरी तरह मुक्त नहीं हो पाते। यह आंतरिक संघर्ष ही उनके साहित्य को गहराई प्रदान करता है। भंडारी का लेखन उस संक्रमण काल को दर्शाता

है, जब भारतीय समाज पश्चिमी उदारवादी मूल्यों और भारतीय परंपराओं के बीच संतुलन बनाने की कोशिश कर रहा था। उनके उपन्यास यह सिद्ध करते हैं कि समाज की सबसे छोटी इकाई—परिवार—में होने वाला विघटन ही बड़े सामाजिक विघटन का कारण बनता है।

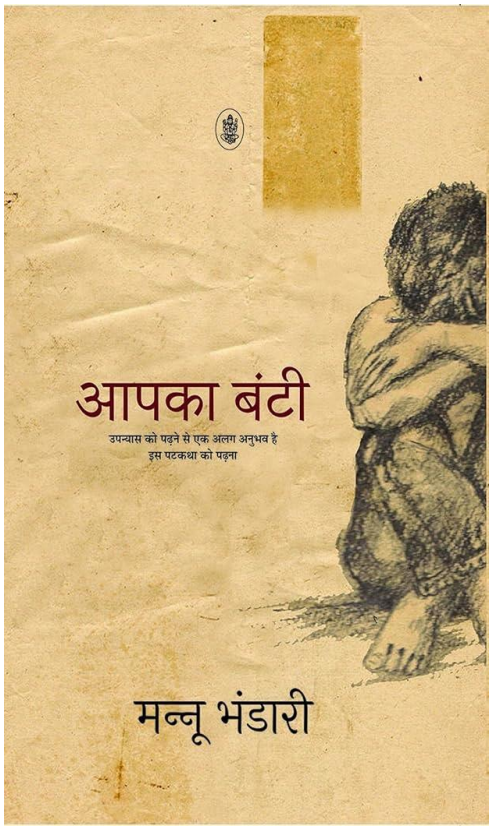

चित्र 2.4: मन्नू भंडारी उपन्यास 'आपका बंटी' (1971)

'आपका बंटी' की कथावस्तु: तलाक की त्रासदी का केंद्र

'आपका बंटी' उपन्यास की कथावस्तु (Kathavastu) एक विवाह विच्छेद (तलाक) के इर्द-गिर्द बुनी गई है, लेकिन इसका मुख्य फोकस तलाक के कारणों या परिणामों पर नहीं, बल्कि उस तलाक के शिकार हुए एक सात-आठ साल के बच्चे बंटी पर है। उपन्यास की शुरुआत में ही बंटी अपने माता-पिता—शकुन (कॉलेज में प्रिंसिपल) और अजय (यूनिवर्सिटी में प्रोफेसर और शिक्षाशास्त्री)—के बीच चल रहे गहरे मनमुटाव और वैचारिक टकराव को महसूस करता है। कथावस्तु दो समानांतर पटरियों पर चलती है: एक ओर शकुन और अजय का अहंकारी और जटिल वैवाहिक जीवन, और

दूसरी ओर बंटी का मासूम, परंतु खंडित होता बाल मनोविज्ञान (Baal Manovigyan)। जब शकुन और अजय अलग होकर क्रमशः डॉक्टर जोशी और मीरा के साथ दूसरा विवाह करते हैं, तो बंटी दोनों के जीवन का एक 'अवांछित' हिस्सा बन जाता है। वह गर्मियों की छुट्टियों में अजय के पास और बाकी दिनों में शकुन के पास रहता है, जिससे वह खुद को एक 'सामान' या 'फुटबॉल' की तरह महसूस करता है। उपन्यास की कथावस्तु की विशेषता यह है कि यह किसी भी पक्ष को पूरी तरह दोषी नहीं ठहराती। शकुन अपनी नौकरी, आत्मसम्मान और नए संबंध (डॉक्टर जोशी) में उलझी है, वहीं अजय अपनी शैक्षणिक प्रतिष्ठा और नए परिवार (मीरा से जन्मी संतान) में व्यस्त है। उपन्यास का चरमोत्कर्ष बंटी के मानसिक और भावनात्मक बिखराव में निहित है, जब वह अंततः अपने माता-पिता के स्वार्थीपन से त्रस्त होकर होस्टल चला जाता है, जहाँ उसे लगता है कि शायद उसे अपना 'घर' मिल जाएगा, जबकि हकीकत में वह अपने टूटे हुए परिवार की त्रासदी का अंतिम प्रतीक बन जाता है। इस प्रकार, कथावस्तु का मूल संदेश यह है कि तलाक केवल पति-पत्नी को अलग नहीं करता, बल्कि एक बच्चे के अस्तित्व को भी खंडित कर देता है।

बंटी की कहानी: एक उपेक्षित बाल्यकाल की यात्रा

'आपका बंटी' उपन्यास का केंद्रबिंदु और उसकी आत्मा बंटी की कहानी है। यह कहानी केवल एक बच्चे की नहीं, बल्कि आधुनिक समाज के उन तमाम बच्चों की है, जिनके माता-पिता की महत्वाकांक्षाओं और आत्म-केंद्रित जीवन-शैली के कारण उनका बाल्यकाल उपेक्षित रह जाता है। बंटी का जीवन एक साधारण बच्चे की तरह शुरू होता है, जो अपने माता-पिता के बीच के तनाव को खेल-खेल में सुलझाने की कोशिश करता है। वह कभी अजय की तरफदारी करता है तो कभी शकुन की, यह सोचकर कि शायद इससे उनका झगड़ा खत्म हो जाएगा। लेकिन जैसे-जैसे माता-पिता के बीच की दूरी बढ़ती है, बंटी के मन में असुरक्षा, अपराध-बोध और भ्रम (Confusion) की भावनाएँ घर करने लगती हैं। तलाक के बाद उसका जीवन दो हिस्सों में बँट जाता है—एक हिस्से में शकुन और जोशी हैं, दूसरे हिस्से में अजय और मीरा। बंटी के लिए ये दोनों घर 'अपने' नहीं रह जाते। वह दोनों जगहों पर एक अतिथि, एक बोझ या एक रुकावट के रूप में खुद को देखता है। अजय के घर में उसे मीरा के बच्चे के प्रति ईर्ष्या होती है, और शकुन के घर में उसे जोशी का दखल पसंद नहीं

आता। उसकी उपेक्षा तब चरम पर पहुँचती है, जब वह अपनी भावनात्मक ज़रूरतें पूरी करने के लिए नौकरानी फूफी या स्कूल के मित्र टीटू की माँ की तरफ़ आकर्षित होता है। यह आकर्षण उसकी मूलभूत आवश्यकता—निष्कपट प्रेम और सुरक्षित परिवार—की कमी को दर्शाता है। बंटी की कहानी एक विडंबना है: वह अपने माता-पिता दोनों को खोए बिना भी उनसे दूर हो जाता है, क्योंकि वे शारीरिक रूप से तो मौजूद हैं, पर भावनात्मक रूप से अनुपस्थित हैं। उसकी यह उपेक्षित यात्रा उसे अंततः हॉस्टल की ओर धकेलती है, जहाँ उसे उम्मीद है कि शायद एक तटस्थ स्थान पर उसे शांति मिल सकेगी।

बाल मनोविज्ञान का मार्मिक चित्रण: बंटी के अंतर्द्वंद्व

मन्नू भंडारी ने 'आपका बंटी' में बाल मनोविज्ञान (Child Psychology) का जो चित्रण किया है, वह हिंदी साहित्य में दुर्लभ है। बंटी केवल एक पात्र नहीं है, बल्कि बाल मन की संवेदनशीलता, असुरक्षा और भ्रम का चलता-फिरता प्रतीक है। उसके मन में कई जटिल अंतर्द्वंद्व (Inner Conflicts) चलते रहते हैं: सबसे पहला अंतर्द्वंद्व प्रेम और घृणा का है। वह अपने माता-पिता से प्रेम करता है, लेकिन उनके झगड़ों और तलाक के लिए उन्हें दोषी भी मानता है, और इसलिए वह उनसे घृणा भी करता है। वह अपने मन में कल्पना करता है कि वह उन पर गुस्सा निकालेगा, लेकिन वास्तव में वह हमेशा चुप रह जाता है। दूसरा अंतर्द्वंद्व अपराध-बोध (Guilt) का है। उसे लगता है कि माता-पिता का तलाक शायद उसी की किसी गलती के कारण हुआ है। वह खुद को 'बुरा' बच्चा मानने लगता है, जिसके कारण उसके परिवार में शांति नहीं है। तीसरा अंतर्द्वंद्व आत्म-पहचान (Self-Identity) का है। तलाक के बाद, उसका नाम 'शकुन का बेटा' या 'अजय का बेटा' बन जाता है, जबकि वह सिर्फ 'बंटी' रहना चाहता है। वह दोनों घरों में अपनी पहचान खो देता है और किसी एक घर को अपना मान नहीं पाता। लेखिका ने बंटी के बाल मनोविज्ञान को दर्शाने के लिए उसकी कल्पनाओं, सपनों और प्रतिक्रियाओं का कुशलता से उपयोग किया है। वह अपने खिलौनों, विशेषकर एक टूटी हुई गुड़िया के माध्यम से अपने टूटे हुए घर का प्रक्षेपण करता है। जब उसे गुस्सा आता है या दुख होता है, तो वह बिस्तर के नीचे छिप जाता है या बिना कारण ही बीमार पड़ने का नाटक करता है—ये सभी बच्चों में सुरक्षा की भावना की कमी होने पर दिखने वाले विशिष्ट मनोवैज्ञानिक लक्षण हैं। बंटी की सबसे मार्मिक मनोवैज्ञानिक

स्थिति तब सामने आती है, जब वह दोनों घरों में अपनी भावनात्मक ज़रूरतों को पूरा करने के लिए छटपटाता है, लेकिन असफल रहता है। उसका हॉस्टल जाने का निर्णय एक विद्रोह नहीं, बल्कि आत्म-संरक्षण का एक हताश प्रयास है, जो यह साबित करता है कि पारिवारिक विखंडन ने उसके भीतर की मासूमियत को पूरी तरह से नष्ट कर दिया है।

टूटते परिवार का चित्रण: विखंडन और विकल्पहीनता

'आपका बंटी' टूटते परिवार (Broken Family) के चित्रण के माध्यम से आधुनिक समाज की एक कटु सच्चाई को उजागर करता है। उपन्यास में परिवार का टूटना केवल तलाक के कानूनी दस्तावेज़ों तक सीमित नहीं है, बल्कि यह एक लंबी, कष्टप्रद और अहंकार-जनित प्रक्रिया है। शकुन और अजय दोनों ही उच्च शिक्षित, आर्थिक रूप से स्वतंत्र और सामाजिक प्रतिष्ठा वाले हैं, लेकिन उनके व्यक्तिगत और व्यावसायिक जीवन की प्रतिस्पर्धा उनके दांपत्य जीवन को नष्ट कर देती है। अजय शकुन के प्रशासनिक प्रभुत्व को चुनौती देता है, और शकुन अजय के शैक्षणिक वर्चस्व को स्वीकार नहीं करती। इस प्रकार, उनका पारिवारिक विखंडन व्यक्तिगत महत्वाकांक्षाओं और पुरुष-स्त्री के बीच के पारंपरिक सत्ता-संघर्ष का परिणाम है।

टूटे हुए परिवार का सबसे भयावह चित्रण विकल्पहीनता के रूप में सामने आता है। जब शकुन और अजय दूसरा विवाह करते हैं, तो वे अपनी व्यक्तिगत खुशी को प्राथमिकता देते हैं, लेकिन वे यह भूल जाते हैं कि बंटी के लिए कोई दूसरा विकल्प नहीं बचा है। बंटी न तो शकुन के नए जीवन में फिट हो पाता है, न ही अजय के नए जीवन में। वह दोनों जगह पर अजनबी महसूस करता है। उपन्यास यह दिखाता है कि आधुनिक संबंध किस प्रकार अस्थायी होते जा रहे हैं, जहाँ पति-पत्नी अपने व्यक्तिगत स्वार्थों के लिए एक-दूसरे को छोड़ सकते हैं, लेकिन इस प्रक्रिया में वे एक बच्चे को एक स्थायी घाव दे जाते हैं। यह चित्रण मध्यवर्गीय परिवारों की उस नई प्रवृत्ति को दर्शाता है, जहाँ तलाक को सामाजिक रूप से स्वीकार तो कर लिया गया है, लेकिन इसके संतानों पर पड़ने वाले प्रभावों को अनदेखा किया जाता है। बंटी का हॉस्टल जाना, उस टूटे हुए परिवार की अंतिम परिणति है, जहाँ बच्चे के पास माता-पिता के प्रेम से वंचित रहने के सिवा कोई विकल्प नहीं बचता।

स्त्री दृष्टिकोण और 'आपका बंटी': शकुन और अजय का द्वंद्व

मन्नू भंडारी का लेखन हमेशा एक सशक्त स्त्री दृष्टिकोण (Woman's Perspective) प्रस्तुत करता है, और 'आपका बंटी' इस बात का एक उत्कृष्ट उदाहरण है। यह उपन्यास पारंपरिक भारतीय नारी की छवि को तोड़ता है और शकुन को एक स्वावलंबी, करियर-उन्मुख और आत्मविश्वासी महिला के रूप में प्रस्तुत करता है। शकुन का कॉलेज प्रिंसिपल होना उसकी आर्थिक स्वतंत्रता और सामाजिक शक्ति को दर्शाता है, लेकिन यही शक्ति उसके वैवाहिक जीवन में द्वंद्व पैदा करती है। पुरुष प्रधान समाज और अजय का अहंकार शकुन की सफलता को स्वीकार नहीं कर पाता। शकुन का अजय से अलगाव और दूसरा विवाह करने का निर्णय उसकी आत्म-निर्णय (Agency) की भावना को दर्शाता है। यह एक ऐसी स्त्री का चित्रण है, जो केवल त्याग और समझौते के लिए नहीं बनी है, बल्कि अपने जीवन के निर्णय स्वयं लेती है। हालांकि, भंडारी का दृष्टिकोण संतुलित है। वह शकुन के आत्म-संघर्ष को दर्शाती हैं, लेकिन उसकी मातृत्व की उपेक्षा को भी छिपाती नहीं हैं। शकुन अपने व्यक्तिगत जीवन और करियर में इतनी उलझ जाती है कि वह बंटी की भावनात्मक ज़रूरतों को समझ नहीं पाती। वह बंटी को *सामान* की तरह देखती है, जिसे एक स्थान से दूसरे स्थान पर स्थानांतरित किया जा सकता है। इस प्रकार, उपन्यास में स्त्री दृष्टिकोण दोहरा है: यह स्त्री की मुक्ति और स्वतंत्रता की आवश्यकता को स्वीकार करता है, लेकिन साथ ही यह भी प्रश्न उठाता है कि क्या आधुनिक स्त्री अपनी व्यक्तिगत मुक्ति की तलाश में मातृत्व के दायित्वों से विमुख हो रही है, और क्या वह पुरुष की तरह ही स्वार्थी हो सकती है। यह द्वंद्व, जो शकुन के जीवन में स्पष्ट है, स्त्री लेखन की जटिलता को दर्शाता है, जहाँ स्त्री को केवल 'पीड़िता' नहीं, बल्कि 'निर्णायक' और 'दोषी' भी दिखाया जा सकता है। यह दृष्टिकोण केवल पितृसत्ता की आलोचना नहीं, बल्कि आधुनिक संबंधों की आलोचना है।

मध्यवर्गीय जीवन का यथार्थवादी अंकन

'आपका बंटी' मध्यवर्गीय जीवन (Middle-Class Life) की सूक्ष्मताओं और विडंबनाओं का यथार्थवादी अंकन करता है। यह उपन्यास किसी गरीब या ग्रामीण पृष्ठभूमि पर आधारित नहीं है, जहाँ आर्थिक तंगी प्राथमिक समस्या हो, बल्कि यह उस

शिक्षित, पेशेवर मध्यवर्ग की कहानी है, जहाँ आर्थिक सुरक्षा तो है, लेकिन भावनात्मक और नैतिक अस्थिरता घर कर गई है। शकुन और अजय दोनों ही उच्च पदों पर कार्यरत हैं, जो दिखाता है कि अब मध्यवर्ग में महिला की आर्थिक भूमिका भी निर्णायक हो गई है। यह भौतिक सुरक्षा ही उन्हें व्यक्तिगत स्वतंत्रता के लिए संघर्ष करने का साहस देती है, लेकिन यही स्वतंत्रता उनके संबंधों को भी तोड़ देती है। मध्यवर्गीय जीवन के यथार्थवादी अंकन के कुछ प्रमुख बिंदु निम्नलिखित हैं: पहला, सामाजिक दिखावा—तलाक के बाद भी वे सामाजिक प्रतिष्ठा बनाए रखने की कोशिश करते हैं। दूसरा, सीमित विकल्प—तलाक के बाद भी उन्हें सामाजिक स्वीकृति और समर्थन के लिए संघर्ष करना पड़ता है। तीसरा, बच्चों पर दबाव—मध्यवर्गीय माता-पिता अक्सर अपने बच्चों पर अपनी महत्वाकांक्षाएँ थोपते हैं, और जब वे अलग होते हैं, तो बच्चे पर दोहरा दबाव पड़ता है। चौथा, भावनात्मक भूख—भौतिक समृद्धि के बावजूद, यह वर्ग भावनात्मक संबंधों, प्रेम और सुरक्षा की गहरी कमी महसूस करता है, जिसके चलते वे जोशी और मीरा जैसे नए संबंधों की ओर भागते हैं। भंडारी ने यह दर्शाया है कि आर्थिक उत्थान ने जहाँ मध्यवर्गीय महिलाओं को सशक्त किया है, वहीं पुरुष के अहंकार को भी चुनौती दी है, जिससे दांपत्य जीवन में कलह बढ़ गई है। यह उपन्यास मध्यवर्गीय समाज के भीतर की उस शून्य भावना को उजागर करता है, जहाँ सब कुछ पा लेने के बाद भी जीवन का केंद्रीय सुख—पारिवारिक सौहार्द—नष्ट हो जाता है।

स्त्री लेखन को समझना: मन्नू भंडारी का वैचारिक योगदान

मन्नू भंडारी का लेखन, विशेषकर 'आपका बंटी', स्त्री लेखन (Stree Lekhan) की अवधारणा को एक नई वैचारिक परिपक्वता प्रदान करता है। स्त्री लेखन का उद्देश्य केवल स्त्रियों की समस्याओं का रोना रोना नहीं, बल्कि स्त्री अनुभव को उसके तमाम विरोधाभासों, जटिलताओं और मुक्ति की आकांक्षाओं के साथ व्यक्त करना है। भंडारी के माध्यम से स्त्री लेखन ने निम्नलिखित वैचारिक योगदान दिए: संबंधों का पुनर्मूल्यांकन: भंडारी ने दिखाया कि संबंध (Marriage) कोई पवित्र और अटल संस्था नहीं है, बल्कि यह दो व्यक्तियों के बीच का एक समझौता है, जो अहंकार, महत्वाकांक्षा और सत्ता-संघर्ष से टूट सकता है। उन्होंने स्त्री की तरफ से भी इस रिश्ते को तोड़ने के अधिकार को स्वीकार किया। मातृत्व का आलोचनात्मक अवलोकन:

उन्होंने पहली बार स्त्री लेखन में मातृत्व को केवल 'महान' गुण के रूप में नहीं देखा, बल्कि यह दिखाया कि एक आधुनिक, करियर-उन्मुख स्त्री अपने व्यक्तिगत विकास के लिए मातृत्व के दायित्वों की उपेक्षा कर सकती है। शकुन का चित्रण यही दर्शाता है कि व्यक्तिगत स्वतंत्रता की कीमत बच्चों को चुकानी पड़ सकती है। पुरुष वर्चस्व की सूक्ष्म पड़ताल: उपन्यास में अजय का व्यवहार केवल एक बुरा पति का नहीं है, बल्कि यह पुरुष के अहं और स्त्री की सफलता से असुरक्षित होने की भावना को दर्शाता है। भंडारी ने यह दिखाया कि पुरुष केवल घर के बाहर ही नहीं, बल्कि घर के भीतर भी सत्ता का केंद्र बनना चाहता है। बच्चे की नज़र से समाज का दर्शन: बंटी के माध्यम से, स्त्री लेखन ने परिवार और समाज की समस्याओं को सबसे कमज़ोर कड़ी (बच्चे) की नज़र से देखना शुरू किया, जिससे विमर्श को एक नई भावनात्मक और नैतिक गहराई मिली। भंडारी का यह वैचारिक योगदान भारतीय स्त्री लेखन को केवल सामाजिक यथार्थ तक सीमित न रखकर, मनोवैज्ञानिक यथार्थ के धरातल पर ले आता है, जहाँ स्त्री पात्र अपनी अच्छाइयों और बुराइयों, संघर्ष और गलतियों के साथ पूर्ण मानव के रूप में उभरती हैं।

'आपका बंटी' का समग्र विश्लेषण और निष्कर्ष

'आपका बंटी' उपन्यास का समग्र विश्लेषण यह सिद्ध करता है कि यह हिंदी साहित्य में मनोवैज्ञानिक यथार्थवाद (Psychological Realism) का एक मील का पत्थर है। यह उपन्यास केवल तलाक की कहानी नहीं, बल्कि आधुनिक मध्यवर्गीय भारतीय समाज के उन द्वंद्वात्मक मूल्यों का दर्पण है, जहाँ व्यक्ति और परिवार, करियर और संबंध, स्वतंत्रता और दायित्व के बीच निरंतर टकराव होता रहता है। उपन्यास की सबसे बड़ी सफलता बंटी के चरित्र-चित्रण में निहित है। बंटी एक निष्क्रिय दर्शक नहीं है; वह अपने माता-पिता के संघर्ष का भावनात्मक थर्मामीटर है। उसकी मासूमियत और उसके अंतर्द्वंद्व पाठकों को यह सोचने पर मजबूर करते हैं कि वयस्कों के स्वार्थों की कीमत बच्चे किस प्रकार चुकाते हैं। लेखिका ने कुशलतापूर्वक बंटी के मन की निराशा, असुरक्षा और भ्रम को तीसरे व्यक्ति की तटस्थ शैली (Third Person Narrative) के माध्यम से प्रस्तुत किया है, जिससे कहानी की मार्मिकता और बढ़ जाती है। शकुन और अजय दोनों ही अपनी जगह सही और गलत हैं, और लेखिका का संतुलित दृष्टिकोण उपन्यास को प्रचारधर्मी होने से बचाता है। 'आपका बंटी' मन्नू

भंडारी के स्त्री लेखन का एक सशक्त उदाहरण है, जो स्त्री के आत्म-संघर्ष और उसके द्वारा किए गए बलिदानों के साथ-साथ उसकी गलतियों और स्वार्थों को भी उजागर करता है। यह उपन्यास आज भी उतना ही प्रासंगिक है, क्योंकि आधुनिक जीवन-शैली में पारिवारिक विखंडन और बाल मनोविज्ञान पर उसका असर एक ज्वलंत समस्या बनी हुई है। यह केवल एक कहानी नहीं, बल्कि एक चेतावनी है—एक चेतावनी उन सभी वयस्कों के लिए, जो अपने व्यक्तिगत स्वार्थों की पूर्ति में अपने बच्चों के सुरक्षित और प्रेमपूर्ण बचपन को दाँव पर लगा देते हैं।

8.7 सारांश

प्रेमचंद ने 'गोदान' में किसान शोषण का महाकाव्य रचा, यशपाल ने 'झूठा सच' में विभाजन के यथार्थ को प्रगतिशील दृष्टि से चित्रित किया। रेणु ने 'मैला आँचल' से आंचलिकता स्थापित की और मन्नू भंडारी ने 'आपका बंटी' में टूटते परिवार का मार्मिक चित्रण किया।

8.8 इकाई अंत अभ्यास

1. 'गोदान' में प्रेमचंद ने किसान जीवन की त्रासदी का कैसे चित्रण किया है? होरी के चरित्र का विश्लेषण कीजिए।
2. 'झूठा सच' में यशपाल की प्रगतिशील विचारधारा और विभाजन के चित्रण का मूल्यांकन करते हुए तारा के चरित्र की चर्चा कीजिए।
3. 'मैला आँचल' की आंचलिकता और 'आपका बंटी' में बाल मनोविज्ञान के चित्रण की तुलनात्मक समीक्षा प्रस्तुत कीजिए।

8.9 संदर्भ एवं अनुसंशित पठन सामाग्री

1. तिवारीआशीष राम, हिंदी उपन्यास: परंपरा से परिवर्तन तक, एस. जैन पब्लिकेशन, नई दिल्ली 2023।
2. सिंह नामवर, आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियाँ, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2018
3. उपाध्याय देवराज, आधुनिक हिंदी कथा-साहित्य और मनोविज्ञान, साहित्य भवन, इलाहाबाद, 1956

स्व-मूल्यांकन प्रश्न

बहुविकल्पीय प्रश्न (MCQs):

1. हिंदी का पहला उपन्यास कौन सा माना जाता है?

क) गोदान

ख) परीक्षा गुरु (श्रीनिवास दास)

ग) भाग्यवती (श्रद्धाराम फुल्लौरी)

घ) सेवासदन

उत्तर: ग) *भाग्यवती (1877)* या ख) *परीक्षा गुरु (1882)*

2. 'गोदान' का नायक कौन है?

क) गोबर

ख) होरी

ग) राय साहब

घ) मालती

उत्तर: ख) होरी

3. 'गोदान' में किस वर्ग की समस्याओं का चित्रण है?

क) जमींदार वर्ग

ख) किसान वर्ग

ग) पूंजीपति वर्ग

घ) नौकरशाह वर्ग

उत्तर: ख) किसान वर्ग

4. 'मैला आंचल' किस प्रकार का उपन्यास है?

क) ऐतिहासिक

ख) आंचलिक

ग) मनोवैज्ञानिक

घ) जासूसी

उत्तर: ख) आंचलिक

5. 'मैला आंचल' का केंद्र है:

क) दिल्ली

ख) मेरीगंज (बिहार का एक गाँव)

ग) मुंबई

घ) कलकत्ता

उत्तर: ख) मेरीगंज (बिहार का एक गाँव)

6. 'आपका बंटी' में किसका मनोविज्ञान चित्रित है?

क) वृद्ध

ख) बच्चों का (बंटी)

ग) युवा

घ) महिलाओं का

उत्तर: ख) बच्चों का (बंटी)

7. यशपाल किस विचारधारा से प्रभावित थे?

क) आदर्शवाद

ख) प्रगतिवाद / मार्क्सवाद

ग) छायावाद

घ) रहस्यवाद

उत्तर: ख) प्रगतिवाद / मार्क्सवाद

8. 'झूठा सच' उपन्यास किस घटना पर आधारित है?

क) स्वतंत्रता संग्राम

ख) भारत विभाजन (1947)

ग) प्रथम विश्व युद्ध

घ) 1857 का विद्रोह

उत्तर: ख) भारत विभाजन (1947)

9. प्रेमचंद के उपन्यासों की मुख्य विशेषता है:

क) काल्पनिकता

ख) यथार्थवादी दृष्टि और सामाजिक चेतना

ग) रहस्यवाद

घ) केवल मनोरंजन

उत्तर: ख) यथार्थवादी दृष्टि और सामाजिक चेतना

10. आंचलिक उपन्यास में प्रमुखता होती है:

क) शहरी जीवन की

ख) विशेष अंचल की भाषा, संस्कृति और जीवन की

ग) केवल मनोरंजन की

घ) केवल इतिहास की

उत्तर: ख) विशेष अंचल की भाषा, संस्कृति और जीवन की

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. 'गोदान' में किसान जीवन की समस्याओं का संक्षेप में वर्णन कीजिए।
2. 'मैला आंचल' की आंचलिकता को संक्षेप में समझाइए।
3. 'आपका बंटी' में बाल मनोविज्ञान का चित्रण कैसे हुआ है?
4. यशपाल की प्रगतिशील विचारधारा पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।
5. प्रेमचंद के यथार्थवाद की विशेषताएँ बताइए।

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. प्रेमचंद के 'गोदान' उपन्यास का विस्तृत परिचय देते हुए इसके कथानक, पात्र और सामाजिक यथार्थ का विश्लेषण कीजिए।
2. रेणु के 'मैला आंचल' उपन्यास की आंचलिकता और लोकजीवन के चित्रण का विस्तृत विवेचन कीजिए।
3. मन्नू भंडारी के 'आपका बंटी' उपन्यास का विश्लेषण करते हुए बाल मनोविज्ञान और टूटते परिवार के चित्रण पर प्रकाश डालिए।
4. यशपाल के उपन्यासों में प्रगतिशील विचारधारा और सामाजिक यथार्थ का विस्तार से वर्णन कीजिए।
5. आधुनिक हिंदी उपन्यास की परंपरा और प्रवृत्तियों का विस्तृत विवेचन कीजिए।

सारांश

आधुनिक हिंदी उपन्यास ने समाज, मनोविज्ञान और यथार्थ के विविध रूपों को प्रस्तुत किया है। इसकी शुरुआत श्रद्धाराम फुल्लौरी और लाला श्रीनिवास दास से हुई, जबकि प्रेमचंद ने इसे सामाजिक यथार्थ का सशक्त माध्यम बनाया। यशपाल ने अपने प्रगतिशील दृष्टिकोण से सामाजिक परिवर्तन को अभिव्यक्त किया, वहीं फणीश्वरनाथ रेणु ने ग्रामीण और आंचलिक जीवन की संवेदनशील झांकी प्रस्तुत की। मन्नू भंडारी ने स्त्री दृष्टिकोण और परिवारिक विघटन की समस्याओं को उजागर किया। आधुनिक हिंदी उपन्यास में ऐतिहासिक, सामाजिक, मनोवैज्ञानिक, प्रगतिशील और आंचलिक प्रवृत्तियाँ समानांतर रूप से विकसित होती दिखाई देती हैं।

शब्दावली

1. यथार्थवाद – जीवन के सच्चे और सामाजिक चित्रण की प्रवृत्ति।
2. प्रगतिवाद – सामाजिक समानता और परिवर्तन की विचारधारा।
3. आंचलिकता – ग्रामीण और प्रांतीय जीवन का चित्रण।
4. मनोवैज्ञानिक उपन्यास – पात्रों के आंतरिक जीवन का विश्लेषण।
5. ऐतिहासिक उपन्यास – इतिहास और घटनाओं पर आधारित कथा।
6. प्रयोगधर्मी उपन्यास – नई शैली और तकनीक से युक्त रचनाएँ।
7. सामाजिक उपन्यास – समाज की समस्याओं और वर्गसंघर्ष को दर्शाने वाला उपन्यास।
8. नारी दृष्टिकोण – स्त्री अनुभवों और अधिकारों की अभिव्यक्ति।
9. ग्रामीण जीवन – गाँव, लोकसंस्कृति और जनजीवन का चित्रण।
10. मानवीय संवेदना – व्यक्ति के दुख-दर्द और भावनात्मक गहराई का चित्रण।

याद रखने योग्य 5 मुख्य बिंदु

1. प्रेमचंद ने हिंदी उपन्यास को सामाजिक यथार्थ का स्वर दिया।

2. यशपाल ने विभाजन, स्त्री स्वतंत्रता और प्रगतिशील विचारधारा को केंद्र में रखा।
3. रेणु ने मैला आंचल के माध्यम से आंचलिक जीवन को जीवंत किया।
4. मन्नू भंडारी ने आपका बंटी में स्त्री और बाल मनोविज्ञान को उकेरा।
5. आधुनिक हिंदी उपन्यास विविध प्रवृत्तियों और सामाजिक चेतना का प्रतिबिंब है।

अपनी प्रगति की जाँच करें

1. **प्रेमचंद को हिंदी उपन्यास का प्रतिनिधि उपन्यासकार क्यों कहा जाता है? उदाहरण सहित स्पष्ट कीजिए।**

---

2. **किसी एक अन्य प्रमुख हिंदी उपन्यासकार (जैसे अज्ञेय, यशपाल या रेणु) की उपन्यास-रचना की विशेषताओं का वर्णन कीजिए।**

खंड 3 कहानी

इकाई 9 आधुनिक हिंदी कहानी का विकास और स्वरूप

संरचना

9.1 परिचय
9.2 उद्देश्य
9.3 हिंदी कहानी का विकास
9.4 कहानी का स्वरूप और तत्व
9.5 सारांश
9.6 इकाई अंत अभ्यास
9.7 संदर्भ एवं अनुसंशित पठन सामाग्री

9.1 परिचय

आधुनिक हिंदी कहानी संक्षिप्त, प्रभावशाली और जीवन-सत्य को उद्घाटित करने वाली प्रमुख गद्य-विधा है। इसका विकास प्रारंभिक घटना-प्रधान आख्यानों से शुरू होकर प्रेमचंद के यथार्थवाद, प्रगतिवाद, मनोविश्लेषणवाद, नई कहानी और समकालीन बहुलतावादी प्रवृत्तियों तक विस्तृत हुआ है। यह विधा समाज और मनुष्य के अनुभवों का सजीवS दर्पण है।

9.2 उद्देश्य

- हिंदी कहानी के विकासक्रम को प्रारंभिक काल से समकालीन युग तक समझना और विभिन्न प्रवृत्तियों को पहचानना।
- कहानी के मूलभूत स्वरूप, तत्वों और संरचनात्मक विशेषताओं का वैज्ञानिक अध्ययन करना और शिल्प समझना।
- विभिन्न युगों में कहानी की बदलती प्रवृत्तियों, सामाजिक सरोकारों और कलात्मक आयामों का विश्लेषणात्मक अध्ययन करना।

9.3 हिंदी कहानी का विकास

हिंदी कहानी आधुनिक गद्य साहित्य की सबसे लोकप्रिय, जीवंत और गतिशील विधा है, जो अपने संक्षिप्त स्वरूप के भीतर जीवन के किसी एक क्षण, भाव या घटना को संपूर्णता और एकाग्रता के साथ उद्घाटित करती है। इसकी मौलिक शक्ति इसकी संक्षेपण क्षमता और एककेंद्रीय प्रभाव (Unity of Impression) में निहित है,

कहानी के मूलभूत स्वरूप और तत्वों का गहन अध्ययन करना भी इस इकाई का केंद्र बिंदु है, ताकि हम कहानी की संरचना और शिल्प को वैज्ञानिक दृष्टि से समझ सकें। विभिन्न युगों में कहानी की बदलती प्रवृत्तियों, सामाजिक सरोकारों और कलात्मक आयामों को जानना आवश्यक है, क्योंकि कहानी समाज के बदलते यथार्थ और मनुष्य की बदलती चेतना का सबसे संवेदनशील दर्पण रही है। कहानी ने लगातार अपनी सीमाएँ तोड़ी हैं और नए सामाजिक तथा मनोवैज्ञानिक यथार्थ को आत्मसात किया है, जिससे इसका स्वरूप हर युग में नवीनता और प्रासंगिकता बनाए रखता है। यह अध्ययन हमें हिंदी कहानी के ऐतिहासिक, सामाजिक और कलात्मक महत्व को समझने की विस्तृत दृष्टि प्रदान करेगा।

हिंदी कहानी का विकास: प्रारंभिक काल (1900-1918 ई.)

हिंदी कहानी के विकासक्रम का प्रारंभिक काल मोटे तौर पर 1900 से 1918 ईस्वी तक माना जाता है, जो द्विवेदी युग के जागरण और 'सरस्वती' पत्रिका के उदय से जुड़ा हुआ है। इस युग में कहानी गद्य की एक स्वतंत्र विधा के रूप में स्थापित हुई, यद्यपि शुरुआती दौर में इस पर बंगला साहित्य (विशेषकर रवीन्द्रनाथ टैगोर) और अंग्रेजी साहित्य का प्रभाव स्पष्ट था। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने 'इंदुमती' (किशोरीलाल गोस्वामी, 1900) को हिंदी की पहली कहानी माना है, जो संरचनात्मक रूप से एक कहानी के निकट थी, हालाँकि कुछ विद्वान 'एक टोकरी भर मिट्टी' (माधवराव सप्रे, 1901) को उसकी सामाजिक उद्देश्यपरकता के कारण पहली मौलिक कहानी मानते हैं। इस दौर की कहानियाँ मुख्य रूप से रोमांटिक, घटना-प्रधान और उपदेशात्मक प्रकृति की थीं। कहानियाँ घटनाओं के ताने-बाने पर अधिक निर्भर करती थीं, पात्रों के मनोविश्लेषण पर कम। इस काल के अन्य महत्वपूर्ण कहानीकारों में बंग महिला (राजेंद्र बाला घोष) की 'दुलाई वाली' (1907) उल्लेखनीय है, जिसने अपनी सहज हास्य और यथार्थवादी स्पर्श के कारण ध्यान आकर्षित किया। इस दौर में कहानी का मुख्य प्रयास स्वयं को उपन्यास और आख्यान (Kissa) से अलग करके एक सुनिश्चित, कलात्मक स्वरूप प्रदान करना था। 'सरस्वती' पत्रिका ने कहानी के प्रकाशन और उसके मानक निर्धारण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। प्रारंभिक कहानियों में पंडित और अपंडित वर्ग का चित्रण मिलता है, जहाँ ऐतिहासिक और तिलस्मी कहानियों का भी पर्याप्त प्रभाव था।

धीरे-धीरे, कहानी घटना-केन्द्रितता से हटकर पात्र और उसके भीतर की भावनाओं को महत्व देने लगी, जो प्रेमचंद युग के आगमन की पृष्ठभूमि तैयार करता है।

हिंदी कहानी का विकास: प्रेमचंद युग (1918-1936 ई.)

हिंदी कहानी के विकास में प्रेमचंद युग (लगभग 1918 से 1936) एक स्वर्णिम अध्याय है, जिसे कहानी का स्वर्णकाल भी कहा जाता है। मुंशी प्रेमचंद (धनपत राय) ने हिंदी कहानी को कल्पनालोक से निकालकर समाज और यथार्थ की कठोर जमीन पर स्थापित किया। प्रेमचंद की कहानियों ने कहानी को केवल मनोरंजन का साधन नहीं रहने दिया, बल्कि उसे सामाजिक परिवर्तन और मानवीय मूल्यों की अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया। उनकी कहानी-दृष्टि आदर्शोन्मुख यथार्थवाद पर आधारित थी, जहाँ यथार्थ का चित्रण तो होता था, लेकिन कहानी का अंत प्रायः किसी नैतिक आदर्श या समाधान की ओर इंगित करता था। प्रेमचंद ने अपनी कहानियों में किसान और मजदूर वर्ग के शोषण, जमींदारी प्रथा, गरीबी, नारी समस्या और अस्पृश्यता जैसे ज्वलंत सामाजिक मुद्दों को केंद्र में रखा। उनकी कहानियाँ, जैसे 'कफ़न', 'पूस की रात', 'नमक का दारोगा', न केवल विषयवस्तु की दृष्टि से गहरी थीं, बल्कि उन्होंने पात्रों के मनोवैज्ञानिक द्वंद्व को भी सरल और सहज भाषा में प्रस्तुत किया। प्रेमचंद के साथ-साथ इस युग में जयशंकर प्रसाद ने भी कहानी विधा को समृद्ध किया, जिनकी कहानियाँ (जैसे 'आकाशदीप', 'पुरस्कार') मुख्य रूप से भावनात्मकता, ऐतिहासिक पृष्ठभूमि और रोमानी आदर्शवाद से प्रेरित थीं। प्रेमचंद युग की सबसे बड़ी उपलब्धि कहानी को चरित्र-प्रधान बनाना और उसे एक सुसंगठित शिल्प प्रदान करना था, जहाँ कथानक, पात्र और उद्देश्य का त्रिवेणी संगम दिखाई देता है। इस युग ने हिंदी कहानी को राष्ट्रीय स्तर पर पहचान दिलाई और भविष्य की कहानी विधा के लिए एक मजबूत नींव रखी।

हिंदी कहानी का विकास: प्रेमचंदोत्तर युग (1936-1950 ई.)

प्रेमचंदोत्तर युग (लगभग 1936 से 1950) वह संक्रमण काल था, जब प्रेमचंद के आदर्शवादी यथार्थवाद के वर्चस्व को दो विपरीत धाराओं ने चुनौती दी और कहानी के दायरे को विस्तृत किया: प्रगतिवाद और मनोविश्लेषणवाद। प्रगतिवादी कहानीकारों ने मार्क्सवादी दर्शन से प्रेरणा लेते हुए कहानी को सामाजिक क्रांति और वर्ग-संघर्ष का

हथियार बनाया। इस धारा में यशपाल, रांगेय राघव और उपेंद्रनाथ 'अश्क' जैसे कहानीकार प्रमुख थे, जिन्होंने शोषक वर्ग पर तीव्र व्यंग्य किया और दबे-कुचले वर्ग के जीवन को निर्भीकता से चित्रित किया। उनकी कहानियाँ अक्सर निश्चित विचारधारात्मक प्रतिबद्धता (Ideological Commitment) से युक्त होती थीं। दूसरी ओर, मनोविश्लेषणवादी कहानीकारों ने कहानी का केंद्र बाहरी सामाजिक यथार्थ से हटाकर मनुष्य के आंतरिक जगत, अवचेतन मन (Subconscious) और यौन-कुंठाओं (Sexual Repression) पर केंद्रित किया। इस धारा के प्रमुख स्तंभ थे जैनेन्द्र कुमार, इलाचंद्र जोशी और अज्ञेय (सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन)। जैनेन्द्र की कहानियाँ नैतिक और दार्शनिक प्रश्नों से भरी थीं, जबकि इलाचंद्र जोशी ने फ्रायड के विचारों को आत्मसात करते हुए विकृत मनोविज्ञान वाले पात्रों का चित्रण किया। अज्ञेय ने व्यक्ति की आत्म-निष्ठा और अस्तित्व के संकट को गहराई से अभिव्यक्त किया। इस युग की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता यह थी कि कहानी अब केवल सामाजिक समस्याओं तक सीमित नहीं रही, बल्कि उसने व्यक्ति की जटिल मानसिकताओं और उसके दार्शनिक एकाकीपन को भी विषय बनाया। इस प्रकार, प्रेमचंदोत्तर कहानी ने शिल्प और विषय दोनों ही स्तरों पर प्रयोग किए, जिससे हिंदी कहानी नई कहानी आंदोलन के लिए वैचारिक रूप से तैयार हो गई।

हिंदी कहानी का विकास: नई कहानी आंदोलन (1950s-1960s)

1950 के दशक में शुरू हुआ नई कहानी आंदोलन हिंदी कहानी के इतिहास का सबसे महत्वपूर्ण और निर्णायक मोड़ साबित हुआ। यह आंदोलन प्रेमचंद युग के आदर्शवाद और मनोविश्लेषणवादी कहानियों की अति-आत्मनिष्ठा की प्रतिक्रिया के रूप में उभरा। 'नई कहानी' का मूल स्वर था 'भोगा हुआ यथार्थ' (Experienced Reality) और 'नगरीय बोध'। इस आंदोलन के तीन प्रमुख हस्ताक्षर थे—मोहन राकेश, राजेंद्र यादव और कमलेश्वर—जिन्होंने कहानी को एक नया मुहावरा दिया। नई कहानी ने महानगरीय जीवन की जटिलताएँ, मध्यवर्गीय संबंधों का टूटना, अकेलापन, संत्रास और यौन-संबंधों में आया खुलापन जैसे विषयों को अपनी विषयवस्तु बनाया। पुरानी कहानियों के विपरीत, नई कहानी में घटनाओं के बजाय स्थितियों और संवेदनाओं पर अधिक बल दिया गया। कहानी में अब किसी समस्या का समाधान नहीं खोजा जाता था, बल्कि समस्या को उसके मूल रूप में, बिना किसी आदर्शवादी निष्कर्ष के, प्रस्तुत

किया जाता था। उदाहरण के लिए, मोहन राकेश की कहानियों में पुरुष-स्त्री संबंधों का तनाव और अजनबीपन (Alienation) दिखाई देता है, जबकि राजेंद्र यादव ने विवाहेतर संबंधों और मानसिक जटिलताओं को चित्रित किया। कमलेश्वर ने साधारण व्यक्ति के संघर्ष और उसके जीवन की यांत्रिकता पर ध्यान केंद्रित किया। नई कहानी ने शिल्प के स्तर पर भी महत्वपूर्ण बदलाव किए; कहानी में फ्लैशबैक, प्रतीक और बिम्बों का प्रयोग बढ़ा, और भाषा को अधिक चुस्त और संकेतात्मक बनाया गया। इस आंदोलन ने कहानी को एक निश्चित साहित्यिक प्रतिष्ठा दी और उसे आधुनिक भारतीय जीवन के जटिलतम अनुभवों को व्यक्त करने में सक्षम बनाया।

हिंदी कहानी का विकास: समकालीन कहानी (1970s onwards)

1970 के दशक के बाद हिंदी कहानी ने और भी अधिक वैविध्यपूर्ण और प्रयोगधर्मी रूप लिया, जिसे समकालीन कहानी की संज्ञा दी जाती है। 'नई कहानी' की भावनात्मकता और महानगरीय केंद्रितता के विरुद्ध कई समानांतर धाराएँ उठीं। इनमें से प्रमुख थीं: 'अकहानी' (निर्मल वर्मा), जो अस्तित्ववाद (Existentialism) और जीवन के संत्रास को दर्शाती थी, अक्सर कथा-शिल्प को तोड़कर। दूसरी ओर, 'सचेतन कहानी' (महीप सिंह) थी, जिसने कहानी को सामाजिक दायित्व और प्रतिबद्धता से जोड़ने पर ज़ोर दिया। बाद में 'सक्रिय कहानी' (राकेश वत्स) भी उभरी, जिसने सामाजिक संघर्ष में सीधे भागीदारी का आह्वान किया। समकालीन कहानी की सबसे बड़ी पहचान यह है कि यह किसी एक केंद्रीय विचारधारा के बजाय बहुलतावाद (Pluralism) और विमर्शों की विविधता को स्वीकार करती है। इस दौर में दलित लेखन, स्त्री लेखन (मन्नू भंडारी, कृष्णा सोबती, उषा प्रियंवदा), आंचलिक लेखन (फणीश्वरनाथ 'रेणु' की परंपरा में), और आदिवासी लेखन ने कहानी को नए भौगोलिक और सामाजिक आयाम दिए। लेखकों ने हाशिए पर पड़े समुदायों के जीवन, उनकी पीड़ा और उनके संघर्ष को मुख्यधारा में लाया। समकालीन कहानी में उत्तर-आधुनिक प्रवृत्तियाँ भी देखने को मिलती हैं, जहाँ यथार्थ की अवधारणा खंडित होती है और कथावाचन (Narration) में प्रयोग किए जाते हैं। कहानी अब निश्चित कथानक के बजाय विचार, भाषा और संवाद के माध्यम से अपने अर्थ को उद्घाटित करती है। इस प्रकार, समकालीन कहानी भारतीय समाज की समग्रता, जटिलता और उसके विरोधाभासों को अभिव्यक्त करने वाली एक खुली और लोकतांत्रिक विधा बन गई है।

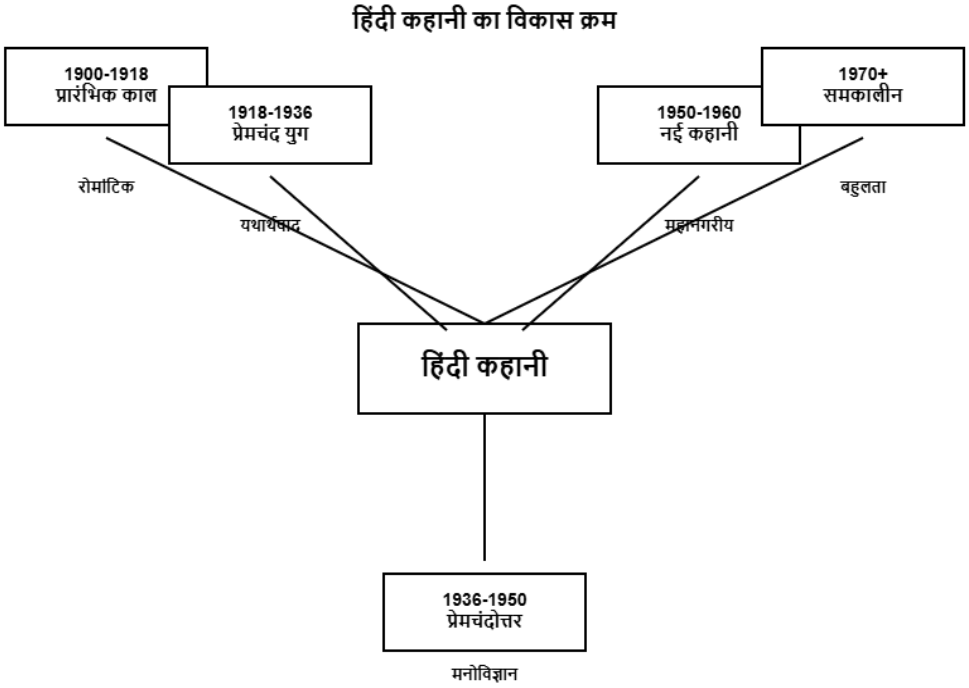

चित्र 3.1: हिंदी कहानी का विकास क्रम

9.4 कहानी का स्वरूप और तत्व

कहानी गद्य साहित्य की वह विधा है, जिसका स्वरूप उसकी एकाग्रता (Focus) और संरचनात्मक पूर्णता (Structural Integrity) द्वारा निर्धारित होता है। कहानी के स्वरूप की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता इसका संक्षिप्त आकार है। अंग्रेजी में जिसे 'Short Story' कहा जाता है, हिंदी में वह 'छोटी कहानी' नहीं, बल्कि 'कहानी' कहलाती है, जो इसके कलात्मक संक्षिप्तता की ओर इशारा करता है। कहानी जीवन के किसी एक पक्ष, एक घटना, या एक भाव को लेती है और उसे इस प्रकार सघन करती है कि पाठक पर एक अविस्मरणीय और एकल प्रभाव (Single Dominant Impression) पड़े। एडगर एलन पो, जो पश्चिमी कहानी के सिद्धांतकार थे, ने इसी एककेंद्रीयता पर बल दिया था। कहानी उपन्यास से इस मायने में भिन्न है कि उपन्यास जीवन की समग्रता और विस्तार को चित्रित करता है, जबकि कहानी एक खंडित क्षण को पूर्णता के साथ प्रस्तुत करती है। इसका स्वरूप एक छोटे से वृत्त की तरह होता है, जिसका केंद्र बिंदु अत्यंत स्पष्ट होता है। संरचना के स्तर पर, कहानी का स्वरूप एक प्रारंभ, मध्य और अंत (Beginning, Middle, End) की मांग करता है, हालाँकि

आधुनिक कहानियों ने इस पारंपरिक संरचना को तोड़ा है। पारंपरिक कहानी का स्वरूप एक सीधी रेखा की तरह होता था, जो उत्कर्ष बिंदु (Climax) तक पहुँचकर समाप्त हो जाती थी। इसके विपरीत, नई और समकालीन कहानियों का स्वरूप अधिक वृत्ताकार या प्रतीकात्मक होता है, जहाँ अंत अक्सर खुला छोड़ दिया जाता है और पाठक को निष्कर्ष निकालने के लिए प्रेरित किया जाता है। कहानी का स्वरूप उसकी भाषा-शैली पर भी निर्भर करता है; कहानी की भाषा चुस्त, मितव्ययी (Economical) और अर्थ-व्यंजक होनी चाहिए, क्योंकि संक्षिप्तता के कारण लेखक के पास विस्तार के लिए जगह नहीं होती। इस प्रकार, कहानी का स्वरूप एक सघन कलाकृति का होता है, जो सीमित शब्दों में असीमित अर्थों को व्यक्त करने की चुनौती को स्वीकार करती है।

कहानी के तत्व: कथानक, उद्देश्य और देशकाल का महत्व

कहानी के मूलभूत तत्वों में कथानक (Plot), उद्देश्य (Theme/Purpose) और देशकाल (Setting) केंद्रीय महत्व रखते हैं, जो कहानी के स्वरूप को निर्धारित करते हैं। कथानक कहानी की रीढ़ होता है; यह घटनाओं का वह क्रम है, जो कार्य-कारण संबंध (Cause-and-Effect Relationship) से जुड़ा होता है। कथानक केवल घटनाओं का जमावड़ा नहीं है, बल्कि वह घटनाओं का चुनाव और उनका कलात्मक संयोजन है, जो कहानी को एक तार्किक गति प्रदान करता है। कथानक में प्रारंभ, संघर्ष, विकास, उत्कर्ष और अंत जैसे चरण होते हैं। प्रारंभिक कहानियों में कथानक अत्यंत घटना-प्रधान और सीधा होता था, जबकि आधुनिक कहानियों में कथानक का महत्व घटा है और वह पात्र के मनोवैज्ञानिक द्वंद्व से प्रतिस्थापित हुआ है। कई समकालीन कहानियों में कथानक एक पतली धागे की तरह होता है, जो पात्र के विचारों या संवेदनाओं को एक साथ पिरोता है। उद्देश्य कहानी का वह केंद्रीय विचार या संदेश होता है, जिसे लेखक कहानी के माध्यम से व्यक्त करना चाहता है। प्रारंभिक युग में उद्देश्य अक्सर उपदेशात्मक या नैतिक होता था (जैसे प्रेमचंद की प्रारंभिक कहानियाँ), लेकिन बाद में उद्देश्य सामाजिक यथार्थ का उद्घाटन या मानवीय मनोभावों का विश्लेषण बन गया। नई कहानी में उद्देश्य किसी निश्चित संदेश को देने के बजाय जीवन की विसंगतियों को चित्रित करना बन गया, जहाँ उद्देश्य पाठक को सोचने के लिए प्रेरित करता है, न कि उसे तैयार निष्कर्ष देता है। अंत में, देशकाल से

तात्पर्य कहानी के समय (Time) और स्थान (Place) से है। देशकाल कहानी को विश्वसनीयता (Credibility) प्रदान करता है और पात्रों के व्यवहार को प्रभावित करता है। प्रेमचंद के युग में देशकाल ग्रामीण और कस्बाई था, जबकि नई कहानी में वह महानगरीय हो गया। देशकाल केवल पृष्ठभूमि नहीं होता, बल्कि वह कहानी का एक सक्रिय तत्व बन जाता है, जो कहानी के वातावरण और मनोदशा (Mood) को स्थापित करता है, जैसे किसी कहानी में गरीबी का चित्रण देशकाल को एक उद्देश्यपरक आयाम देता है।

कहानी के तत्व: पात्र, संवाद और भाषा-शैली का विश्लेषण

कहानी को सजीवता प्रदान करने वाले प्रमुख तत्व पात्र (Character), संवाद (Dialogue) और भाषा-शैली (Language and Style) हैं। पात्र कहानी के वाहक होते हैं, जो कथानक को आगे बढ़ाते हैं और उद्देश्य को साकार करते हैं। प्रारंभिक कहानियों में पात्र अक्सर आदर्शवादी या प्रतीकात्मक होते थे, लेकिन प्रेमचंद के आगमन से पात्रों को यथार्थवादी और मनोवैज्ञानिक गहराई मिली। आधुनिक कहानी में पात्र किसी एक विशेष वर्ग या विचारधारा का प्रतिनिधित्व करने के बजाय सामान्य मानव की जटिलताओं को प्रस्तुत करते हैं। कहानी की संक्षिप्तता के कारण, पात्रों का विस्तृत विकास (Character Development) करना संभव नहीं होता, इसलिए लेखक अक्सर कुछ संकेतात्मक विशेषताओं (Indicative Traits) के माध्यम से ही पात्रों की पूरी पृष्ठभूमि को उद्घाटित कर देते हैं। संवाद कहानी का वह तत्व है, जो पात्रों के चरित्र, शिक्षा और सामाजिक पृष्ठभूमि को तुरंत अभिव्यक्त करता है। प्रभावी संवाद कहानी को गति देते हैं, तनाव पैदा करते हैं और कथानक को आगे बढ़ाते हैं। अच्छे संवाद स्वाभाविक, संक्षिप्त और उद्देश्यपूर्ण होते हैं। प्रेमचंद ने सरल, बोलचाल की भाषा का उपयोग किया, जबकि नई कहानी के संवाद अधिक सूक्ष्म, प्रतीकात्मक और अंतर्मुखी हो गए, जो पात्रों के भीतर के अकेलेपन और टूटन को दर्शाते थे।

भाषा-शैली कहानी का वह कलात्मक आवरण है, जिसके माध्यम से लेखक अपनी बात कहता है। कहानी की भाषा-शैली युग के साथ बदलती रही है। प्रारंभिक काल में भाषा जहाँ उपदेशात्मक और अलंकृत थी, वहीं प्रेमचंद ने उसे सरल, सहज और ग्रामीण मुहावरों से युक्त किया। प्रेमचंदोत्तर युग में मनोविश्लेषणवादी कहानीकारों ने

भाषा को अधिक बौद्धिक और संस्कृतनिष्ठ बनाया, जबकि नई कहानी और समकालीन कहानियों में भाषा बोलाची (colloquial), व्यंग्यात्मक और बिम्बात्मक हो गई है। कहानी की शैली में लेखक की दृष्टि (Perspective) भी शामिल होती है, जैसे प्रथम पुरुष शैली (First Person) आत्म-निष्ठा लाती है, जबकि तृतीय पुरुष शैली (Third Person) तटस्थता प्रदान करती है। इस प्रकार, ये तीनों तत्व मिलकर कहानी के कलात्मक प्रभाव को पूर्णता प्रदान करते हैं।

9.5 सारांश

हिंदी कहानी ने सवा सौ वर्षों में घटना-प्रधान आख्यान से जटिल मनोवैज्ञानिक विमर्श तक का विकास किया है। प्रेमचंद के यथार्थवाद से शुरू होकर, प्रगतिवाद, मनोविश्लेषणवाद और नई कहानी आंदोलन के माध्यम से यह विधा निरंतर परिष्कृत हुई। समकालीन कहानी ने दलित, स्त्री और आदिवासी विमर्शों को समाहित कर इसे और अधिक समावेशी बनाया है।

9.6 इकाई अंत अभ्यास

1. हिंदी कहानी के विकास में प्रेमचंद युग का योगदान स्पष्ट करते हुए प्रेमचंदोत्तर कहानी से इसकी तुलना कीजिए।
2. कहानी के प्रमुख तत्वों—कथानक, पात्र, संवाद और भाषा-शैली—का विस्तृत विवेचन उदाहरण सहित प्रस्तुत कीजिए।
3. नई कहानी आंदोलन की विशेषताओं और समकालीन कहानी की प्रवृत्तियों का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत कीजिए।

9.7 संदर्भ एवं अनुसंशित पठन सामाग्री

1. मधुरेश, हिंदी कहानी का विकास, लोकभारती प्रकाशन, दिल्ली, 2014
2. लक्ष्मीनारायण लाल, हिन्दी कहानियों की शिल्प-विधि का विकास, लोकभारती प्रकाशन, दिल्ली 2019
3. आनंद प्रकाश, हिंदी कहानी की विकास प्रक्रिया, लोकभारती प्रकाशन, दिल्ली 1997।
4. विजयमोहन सिंह, आधुनिक हिन्दी गद्य साहित्य का विकास और विश्लेषण, भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली 2012

अपनी प्रगति की जाँच करें

1. **आधुनिक हिंदी कहानी के विकास की प्रमुख अवस्थाओं का संक्षेप में वर्णन कीजिए।**

---

2. **आधुनिक हिंदी कहानी के स्वरूप और उसकी प्रमुख विशेषताओं को उदाहरण सहित स्पष्ट कीजिए।**

इकाई 10 प्रमुख कहानीकार और उनकी कहानियाँ

संरचना

10.1 परिचय
10.2 उद्देश्य
10.3 प्रेमचंद:
10.4 जयशंकर प्रसाद
10.5 यशपाल
10.6 अज्ञेय
10.7 मोहन राकेश
10.8 कमलेश्वर: राजा निरबंसिया
10.9 राजेंद्र यादव
10.10 समकालीन कहानी: एक वैचारिक पृष्ठभूमि
10.11 सारांश
10.12 इकाई अंत अभ्यास
10.13 संदर्भ एवं अनुसंशित पठन सामाग्री

10.1 परिचय

प्रमुख हिंदी कहानीकारों ने अपनी रचनाओं से कहानी विधा को समृद्ध किया है। प्रेमचंद, जयशंकर प्रसाद, यशपाल, अज्ञेय, मोहन राकेश, कमलेश्वर, राजेंद्र यादव और समकालीन कहानीकारों ने विभिन्न युगों में कहानी को नई दिशा और गहराई प्रदान की है।

10.2 उद्देश्य

- प्रेमचंद, प्रसाद, यशपाल और अज्ञेय की प्रतिनिधि कहानियों का विस्तृत अध्ययन कर उनके योगदान को समझना।
- मोहन राकेश, कमलेश्वर और राजेंद्र यादव की कहानियों में नई संवेदना और मध्यवर्गीय जीवन का विश्लेषण करना।
- समकालीन कहानीकारों—अमरकांत, उदय प्रकाश और संजीव—की कहानियों में यथार्थवाद और सामाजिक सरोकार का अध्ययन करना।

10.3 प्रेमचंद

मुंशी प्रेमचंद (1880-1936) आधुनिक हिंदी कहानी के निर्विवाद प्रणेता हैं, जिन्होंने कहानी विधा को कल्पनालोक और मनोरंजन के संकीर्ण दायरे से निकालकर

सामाजिक यथार्थ की कठोर ज़मीन पर स्थापित किया। उनका साहित्य केवल कथा-वाचन नहीं, बल्कि **उद्देश्यपरक सामाजिक सुधार** का एक सशक्त माध्यम था। प्रेमचंद ने अपनी कहानियों के माध्यम से भारतीय समाज की उस गहरी विसंगति को उद्घाटित किया, जिसमें गरीब और शोषित वर्ग सदियों से सामंती व्यवस्था और महाजनी शोषण के तले दबा हुआ था। उनके साहित्य का मूल स्वर **आदर्शोन्मुख यथार्थवाद** था—वे यथार्थ का निर्मम चित्रण करते थे, पर कहीं न कहीं मानवीय मूल्यों या नैतिक आदर्श की विजय की आशा बनाए रखते थे। हालाँकि, अपने अंतिम दौर की कहानियों, विशेषकर **'कफ़न'**, में उन्होंने इस आदर्शोन्मुखता को त्यागकर **निर्मम यथार्थवाद** (Unflinching Realism) को अपनाया, जहाँ मानवीय मूल्य पूरी तरह ध्वस्त होते दिखाई दिए। 'पूस की रात' (1930) उनके सामाजिक यथार्थवाद का एक मार्मिक उदाहरण है, जो किसान जीवन की विडंबना को उजागर करता है, जबकि 'कफ़न' (1936) उनके जीवन के अंतिम चरण की रचना है, जो निर्धनता के कारण मानवीय संवेदना के पतन को व्यंग्यात्मक और क्रूर ढंग से चित्रित करती है।

'पूस की रात' की कथावस्तु: हल्कू और मुन्नी का संघर्ष

'पूस की रात' की कथावस्तु अत्यंत संक्षिप्त, किंतु गहरी है, जो एक रात की घटना पर केंद्रित है। कहानी का नायक **हल्कू** एक गरीब, लघु किसान है, जो अपनी पत्नी **मुन्नी** और पालतू कुत्ते **जबरा** के साथ जीवन यापन करता है। कथा की शुरुआत हल्कू की उस भयानक बेबसी से होती है, जब उसे **सहुकार (महाजन)** को तीन रुपये चुकाने होते हैं, अन्यथा वह गाली-गलौज और अपमान का सामना करेगा।

'पूस की रात' में किसान जीवन की विडंबना और शोषण

'पूस की रात' किसान जीवन की विडंबना (Tragedy/Irony of Peasant Life) को उसकी क्रूरतम अभिव्यक्ति देती है। हल्कू की विडंबना यह नहीं है कि वह गरीब है, बल्कि यह है कि उसकी गरीबी और शोषण का चक्र कभी समाप्त नहीं होता। वह पूरे साल मेहनत करता है, पर उसकी कमाई महाजन के कर्ज और लगान चुकाने में चली जाती है। वह सोचता है कि अब उसे रात की कँपकँपाती ठंड

में खेत पर नहीं सोना पड़ेगा, बल्कि वह आराम से मजदूरी करके अपनी आजीविका कमाएगा। यह संतोष अत्यंत हृदयविदारक है, क्योंकि यह बताता है कि एक किसान के लिए खेती करना अब उसकी नियति नहीं, बल्कि दंड बन गया है, और खेती से मुक्ति उसे राहत देती है। यह विडंबना प्रेमचंद के यथार्थवाद का चरम बिंदु है: शोषण ने किसान को इतना बेबस बना दिया है कि वह अपनी ही मेहनत से उगाई गई फसल के नष्ट होने में मुक्ति देखता है। इस प्रकार, 'पूस की रात' भारतीय किसान की उस नैतिक और आर्थिक हार का दस्तावेज है, जहाँ संघर्ष की इच्छा भी शीत और गरीबी की मार से जम जाती है।

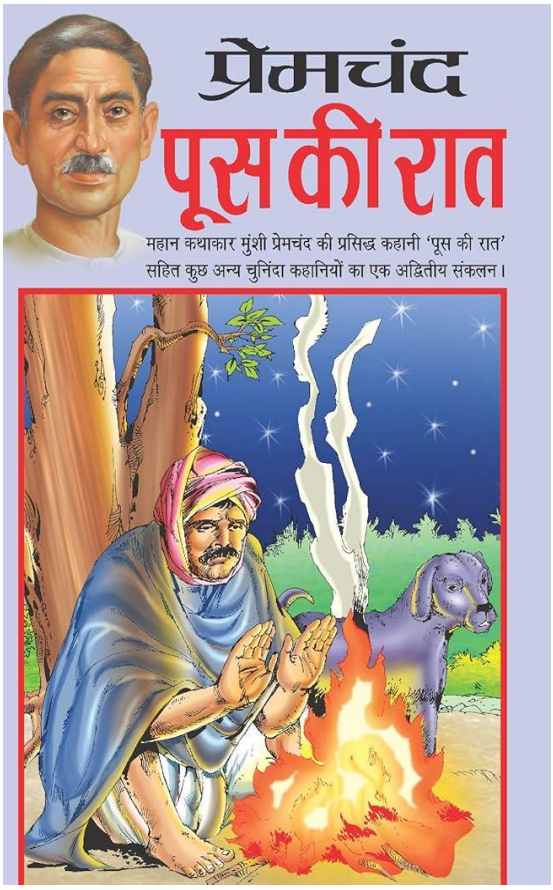

चित्र 3.2: 'पूस की रात'

'पूस की रात': शीत और गरीबी का मार्मिक चित्रण

इस कहानी में शीत और गरीबी (Cold and Poverty) का चित्रण केवल पृष्ठभूमि नहीं है, बल्कि यह कहानी का एक सक्रिय पात्र बन जाता है, जो हल्कू के साथ निरंतर संघर्ष

करता है और अंततः उसे पराजित कर देता है। प्रेमचंद ने पूस की रात की भयानक ठंड को मानवीकरण (Personification) के माध्यम से प्रस्तुत किया है। हल्कू को लगता है कि "शरीर की हड्डियाँ तक काँप रही थीं," और ठंड एक अदृश्य, क्रूर दुश्मन की तरह है, जिससे बचने के लिए वह हर संभव प्रयास करता है। कहानी में अलाव का दृश्य अत्यंत मार्मिक है, जो जीवन और मृत्यु के बीच की पतली रेखा को दर्शाता है। जब हल्कू और जबरा अलाव की गरमी में सिमटकर लेटे होते हैं, तो उन्हें क्षणिक शांति मिलती है, लेकिन जैसे ही आग बुझती है, ठंड उन्हें फिर से घेर लेती है। यह ठंड केवल मौसम की नहीं है, बल्कि यह उस सामाजिक शीतलता का प्रतीक है, जो किसान को पूंजीवादी और महाजनी व्यवस्था से मिलती है। गरीबी का चित्रण अत्यंत सूक्ष्म और हृदयस्पर्शी है। मुन्नी द्वारा कंबल के लिए बचाए गए तीन रुपये का विवरण बताता है कि उनके जीवन में छोटी-सी भौतिक आवश्यकता की पूर्ति के लिए भी कितना बड़ा त्याग करना पड़ता है। हल्कू का जबरा के साथ लिपटकर सोना, और जबरा का मालिक के प्रति वफादारी दिखाना, गरीबी के बावजूद बचे हुए मानवीय और प्राणी-जगत के प्रेम को दर्शाता है। लेकिन यह प्रेम भी ठंड और भूख की मार से अपनी शक्ति खो देता है। इस चित्रण का उद्देश्य यह स्पष्ट करना है कि गरीबी केवल आर्थिक अभाव नहीं है, बल्कि यह मानसिक और नैतिक शक्ति को भी कुंठित कर देती है, जिससे व्यक्ति अपने सबसे बड़े कर्तव्य—अपनी फसल की रखवाली—से विमुख हो जाता है। शीत और गरीबी का यह संयोजन हल्कू की बेबसी को चरम पर ले जाता है, जहाँ वह अपने श्रम से उपजाए अन्न के विनाश को अपनी मुक्ति मान बैठता है।

'पूस की रात' की यथार्थवादी शैली और मनोवैज्ञानिक स्पर्श

'पूस की रात' प्रेमचंद की यथार्थवादी शैली (Realist Style) का उत्कृष्ट उदाहरण है, जो सरलता, मार्मिकता और उद्देश्यपरकता का अद्‌भुत मेल है। कहानी की भाषा अत्यंत सरल, ग्रामीण बोलचाल और मुहावरों से युक्त है, जो कथ्य को सहजता और विश्वसनीयता प्रदान करती है। उदाहरण के लिए, जब हल्कू कहता है, "जाड़ा तो किसी-न-किसी तरह कट ही जाएगा," तो यह उसकी आत्म-संतुष्टि और बेबसी दोनों को एक साथ दर्शाती है। प्रेमचंद ने यहाँ वर्णनात्मक यथार्थवाद का प्रयोग किया है, जहाँ परिवेश (शीत, खेत) और पात्रों (हल्कू, मुन्नी) का चित्रण ऐसा है कि पाठक सीधे उस ग्रामीण यथार्थ में पहुँच जाता है। शैली का दूसरा महत्वपूर्ण पहलू मनोवैज्ञानिक

स्पर्श (Psychological Touch) है। यह कहानी केवल बाहरी घटनाओं पर नहीं, बल्कि हल्कू के अंतर्द्वंद्व पर केंद्रित है। रात के समय हल्कू का मन लगातार अलाव की गरमाहट और कर्तव्य के बीच झूलता रहता है। वह बार-बार खुद को समझाता है कि उसे उठना चाहिए, पर शरीर की आलस्य और ठंड उसे रोक लेती है। यह द्वंद्व मानवीय दुर्बलता को यथार्थ के धरातल पर उतारता है। सबसे बड़ा मनोवैज्ञानिक चमत्कार कहानी के अंत में है, जहाँ विपरीत प्रतिक्रिया (Paradoxical Reaction) होती है। फसल नष्ट होने पर दुख की जगह संतोष का भाव आना, हल्कू के मन की गहराई में बैठी उस हार और हताशा को दर्शाता है, जहाँ उसने परिस्थितियों से लड़ने की इच्छा छोड़ दी है। इस मनोवैज्ञानिक चित्रण ने कहानी को केवल एक सामाजिक दस्तावेज न रखकर, एक गहन मानवीय त्रासदी बना दिया है, जहाँ गरीबी और शोषण केवल शरीर को नहीं, बल्कि आत्मा को भी मार डालते हैं।

'कफ़न' की कथावस्तु: घीसू और माधव की कहानी

'कफ़न' (1936) की कथावस्तु, प्रेमचंद के अंतिम और सर्वाधिक निर्मम यथार्थवादी दौर का प्रतिनिधित्व करती है। कहानी का केंद्र घीसू (बूढ़ा पिता) और माधव (जवान बेटा) हैं—दो ऐसे मजदूर, जो आजीवन दरिद्रता और आलस्य में डूबे रहे। कथा की शुरुआत माधव की पत्नी बुधिया के प्रसव-पीड़ा से होती है, जो झोंपड़ी के भीतर मरणासन्न अवस्था में पड़ी है। घीसू और माधव झोंपड़ी के बाहर अलाव तापते हैं और उसकी चीखों को अनसुना करते हैं, क्योंकि उनकी संवेदनशीलता भूख और बेबसी के आगे मर चुकी है। कहानी का मुख्य मोड़ तब आता है, जब बुधिया मर जाती है और उन्हें उसके अंतिम संस्कार के लिए कफ़न का प्रबंध करना पड़ता है। उनके पास पैसे नहीं हैं, और गाँव वाले इस दारुण स्थिति से द्रवित होकर, थोड़ी-थोड़ी सहायता देते हैं। कफ़न के लिए पाँच रुपये जमा होने के बाद, वे दोनों कफ़न खरीदने बाज़ार जाते हैं। लेकिन वे कफ़न खरीदने की बजाय, उसी पैसे से एक शराब की दुकान पर जाते हैं, जहाँ वे पूरी रात शराब पीते हैं, पूड़ियाँ खाते हैं और गाने गाते हैं। वे बुधिया को भूल जाते हैं और अपनी भूख की बेबसी को शराब के नशे में डुबो देते हैं। उनका तर्क यह है कि कफ़न तो जला ही जाएगा, और बुधिया को तो मोक्ष मिल ही चुका होगा। कहानी का अंत तब होता है, जब वे नशे में चूर होकर नाचते हैं और समाज तथा मानवीय संबंधों पर व्यंग्य करते हैं। इस कथावस्तु में घटनाओं का क्रम कम और मानवीय पतन

का ग्राफ अधिक है। यह कहानी प्रेमचंद के पूर्ववर्ती कहानियों के आदर्शोन्मुख यथार्थवाद से पूरी तरह विमुख है, क्योंकि इसमें न तो कोई नैतिक समाधान है, न ही पात्रों के उद्धार की कोई आशा। यह एक ऐसी विडंबनापूर्ण कथा है, जहाँ गरीबी ने मनुष्य को पशुत्व के स्तर पर ला खड़ा किया है।

'कफ़न' में निर्धनता, बेबसी और सामाजिक उपेक्षा

'कफ़न' निर्धनता और बेबसी (Destitution and Helplessness) का ऐसा चित्रण प्रस्तुत करती है, जो न केवल आर्थिक अभाव को दर्शाता है, बल्कि उस सामाजिक और मानसिक बेबसी को भी उजागर करता है, जहाँ गरीबी मनुष्य की संवेदना को खा जाती है। घीसू और माधव की निर्धनता केवल उनके पास पैसे न होने तक सीमित नहीं है, बल्कि यह एक पीढ़ीगत गरीबी है, जो उन्हें श्रम से विमुख कर देती है। उनकी बेबसी इतनी गहरी है कि वे शर्म और भय से मुक्त हो चुके हैं; उन्हें काम न करने का कोई पछतावा नहीं होता, बल्कि वे अपनी गरीबी का उपयोग दूसरों से सहानुभूति और मदद लेने के लिए करते हैं। यह कहानी सामाजिक उपेक्षा का भी एक क्रूर आईना है। गाँव के लोग घीसू और माधव की फितरत जानते हैं, पर सामाजिक और धार्मिक रूढ़ियों के कारण, वे बुधिया के कफ़न के लिए पैसे जुटाने को मजबूर होते हैं। समाज उन्हें उनकी हालत पर छोड़ देता है, लेकिन जब मृत्यु जैसा संकट आता है, तो वही समाज एक औपचारिकता निभाने के लिए पैसे जुटाता है। घीसू और माधव द्वारा कफ़न के पैसे से शराब पीना एक विद्रोह है—यह उस समाज के प्रति उनका विद्रोह है, जिसने उन्हें जीवित रहते हुए भरपेट भोजन नहीं दिया। उनकी बेबसी यह है कि उनके पास उस पैसे का उपयोग अपने लिए खुशी का एक क्षण खरीदने के अलावा और कोई बेहतर विकल्प नहीं बचता, क्योंकि वे जानते हैं कि कोई भी कफ़न उन्हें उस दरिद्रता के चक्र से मुक्त नहीं कर सकता, जिससे वे और उनके वंशज सदियों से जूझ रहे हैं। यह कहानी दिखाती है कि अत्यधिक गरीबी में, मानवीय गरिमा और नैतिकता का विचार अर्थहीन हो जाता है।

'कफ़न': सामाजिक यथार्थवाद का कठोरतम रूप

'कफ़न' प्रेमचंद के सामाजिक यथार्थवाद (Social Realism) का वह कठोरतम रूप है, जहाँ उन्होंने आदर्शों का पर्दा पूरी तरह हटा दिया है। यह कहानी किसी समस्या का

समाधान नहीं सुझाती, बल्कि समस्या को उसके विकराल और भयावह रूप में प्रस्तुत करती है। इसमें यथार्थवाद का मुख्य उद्देश्य सामाजिक संबंधों की विद्रूपता और गरीबी के मनोवैज्ञानिक परिणामों को दिखाना है। कहानी यह स्थापित करती है कि भारतीय समाज की सामंती और पूंजीवादी व्यवस्था ने गरीबों को इतना हाशिए पर धकेल दिया है कि उनके पास श्रम करने की प्रेरणा (Motivation) ही खत्म हो गई है। घीसू और माधव का व्यवहार समाज के लिए एक कठोर प्रश्न है: क्या उन्हें काम न करने के लिए दोषी ठहराया जाना चाहिए, या उस सामाजिक-आर्थिक व्यवस्था को, जिसने उन्हें सिखा दिया है कि चाहे वे जितनी भी मेहनत करें, उनके हिस्से में हमेशा भूख और शोषण ही आएगा? उनका आलस्य केवल व्यक्तिगत दोष नहीं, बल्कि सामाजिक व्यवस्था की देन है। वे समाज के निठल्लेपन (Laziness) के शिकार हैं, जिसने उन्हें श्रम का फल कभी नहीं दिया। कहानी का यथार्थ इस बात में निहित है कि वे बुधिया की मृत्यु पर दुखी होने के बजाय, उससे लाभ (कफ़न के पैसे) उठाने की सोचते हैं। प्रेमचंद ने यहाँ यह दिखाया है कि जब जीवन की मूलभूत आवश्यकताएँ पूरी नहीं होतीं, तो मनुष्य सहानुभूति, कर्तव्य और प्रेम जैसी मानवीय संवेदनाओं को त्याग देता है। 'कफ़न' भारतीय यथार्थवाद में एक ऐसा मोड़ है, जिसने बाद के प्रगतिशील और निर्मम कहानीकारों के लिए रास्ता खोला, जिन्होंने बिना किसी आदर्शवादी बोझ के समाज का चित्रण किया।

'कफ़न' की व्यंग्यात्मक शैली और विद्रूपता का दर्शन

'कफ़न' की शैली व्यंग्यात्मक (Satirical Style) और विद्रूपतापूर्ण (Grotesque) है, जो इसे प्रेमचंद की अन्य कहानियों से अलग करती है। यहाँ प्रेमचंद का स्वर शांत और तटस्थ है, लेकिन यह तटस्थता ही कहानी के व्यंग्य को तीखा बना देती है। घीसू और माधव के संवाद व्यंग्य से भरे हुए हैं। जब वे बुधिया के मरणासन्न होने पर भी उठकर काम नहीं करते, तो उनका यह तर्क कि "अगर वह मर ही गई तो हाथ मलकर रह जाएँगे," एक क्रूर हास्य पैदा करता है। यह हास्य मानवीय पतन की सीमा को दर्शाता है। कहानी का चरम व्यंग्य तब आता है, जब वे कफ़न के पैसे से शराब पीते हैं। यह घटना केवल एक यथार्थवादी चित्रण नहीं है, बल्कि उस सामाजिक ढोंग पर सीधा व्यंग्य है, जो मृत्यु की औपचारिकता पर पैसे खर्च करने को तो तैयार है, लेकिन जीवन की वास्तविक आवश्यकता (भोजन, वस्त्र) को अनदेखा करता है। घीसू का यह दर्शन

कि "कफ़न मिलता क्यों नहीं, पाँच रुपये का। पाँच रुपये हमने रात को उड़ा दिए, और कल तो हाथ में एक कौड़ी भी न थी," एक भयावह दार्शनिक विद्रूपता को जन्म देता है। वे धार्मिक पाखंड और सामाजिक दबाव को अस्वीकार कर अपनी क्षणिक शारीरिक भूख को संतुष्ट करते हैं। यह व्यंग्य गरीबों पर नहीं, बल्कि उस पाखंडी और संवेदनहीन समाज पर है, जिसने घीसू और माधव को इस हद तक नैतिक रूप से भ्रष्ट कर दिया है कि वे अपनी पत्नी/बहू के मृत शरीर को छोड़कर अपनी भूख मिटाने को प्राथमिकता देते हैं। 'कफ़न' की शैली एक कटु सत्य को नंगे रूप में प्रस्तुत करती है, जिससे पाठक स्तब्ध और विचलित हो जाता है।

पूस की रात और कफ़न: प्रेमचंद के यथार्थवाद का द्वंद्व

'पूस की रात' और 'कफ़न' प्रेमचंद के यथार्थवादी दृष्टिकोण के दो महत्वपूर्ण चरण या आयाम प्रस्तुत करती हैं। इन दोनों कहानियों के तुलनात्मक अध्ययन से प्रेमचंद के यथार्थवाद का द्वंद्व (Duality of Premchand's Realism) स्पष्ट होता है। 'पूस की रात' (1930) में आदर्शोन्मुख यथार्थवाद की अंतिम झलक मिलती है। हल्कू शोषण से हार जाता है, वह पलायन करता है, लेकिन कहानी का अंत भावनात्मक रूप से मार्मिक है—हल्कू की निराशा में भी एक छोटी सी मानवीय राहत (ठंड से मुक्ति) का भाव छिपा है। हल्कू अपनी फसल नष्ट होने पर भी पछतावा महसूस करता है, और मुन्नी का दुख भी सच्चा है। यहाँ मनुष्य और प्रकृति का संघर्ष प्रमुख है, और शोषण के बावजूद मानवीय संवेदना जीवित है। कहानी की शैली में संवेदना और करुणा का तत्व प्रबल है। इसके विपरीत, 'कफ़न' (1936) निर्मम यथार्थवाद का शिखर है। यहाँ आदर्श की कोई गुंजाइश नहीं है; मानवीय संवेदना पूरी तरह मर चुकी है। घीसू और माधव अपनी बहू की मृत्यु पर पछतावे या दुख की बजाय अवसर देखते हैं। यहाँ संघर्ष मनुष्य और सामाजिक व्यवस्था के बीच है, और इस संघर्ष ने उन्हें श्रम से विमुख कर दिया है। 'कफ़न' में करुणा की जगह व्यंग्य और विद्रूपता है। पात्रों का आलस्य केवल व्यक्तिगत नहीं, बल्कि सामाजिक विकृति का परिणाम है। संक्षेप में, 'पूस की रात' में प्रेमचंद ने दिखाया कि गरीबी मनुष्य को निष्क्रिय बना सकती है, जबकि 'कफ़न' में उन्होंने यह दर्शाया कि अत्यधिक गरीबी मनुष्य की आत्मा को मार सकती है और उसे पशुता के स्तर पर ला सकती है। दोनों कहानियाँ उस सामाजिक यथार्थ का काला अध्याय हैं, जिसने भारतीय समाज के सबसे मेहनती वर्ग को भी लाचार और अंततः

संवेदनहीन बना दिया। 'पूस की रात' जहाँ पाठक की आँखों में आँसू लाती है, वहीं 'कफ़न' उसे स्तब्ध कर, समाज पर प्रश्नचिह्न लगाती है। यह द्वंद्व प्रेमचंद को हिंदी कहानी का सर्वाधिक प्रासंगिक और जटिल लेखक सिद्ध करता है।

10.4 जयशंकर प्रसाद

जयशंकर प्रसाद (1889-1937) हिंदी कहानी साहित्य में प्रेमचंद की सामाजिक यथार्थवादी धारा से बिल्कुल पृथक, एक ऐतिहासिक-रोमांटिक धारा के प्रवर्तक माने जाते हैं। प्रसाद की कहानियाँ तत्कालीन सामाजिक समस्याओं के प्रत्यक्ष चित्रण की अपेक्षा, मानव-मन की चिरंतन भावनाओं, विशेषकर प्रेम, त्याग, कर्तव्य और प्रतिशोध के गहन द्वंद्व को ऐतिहासिक या कल्पनाशील पृष्ठभूमि में प्रस्तुत करती हैं। प्रसाद की शैली में करुणा, उदात्तता और महानता का एक विशिष्ट भाव होता है, जो उनके पात्रों को साधारण मनुष्यता से ऊपर उठाकर उन्हें एक आदर्श नायक या नायिका के रूप में स्थापित करता है। उनकी कहानियों की भाषा पर उनके कवि-व्यक्तित्व का गहरा प्रभाव है, जिसके कारण उनकी कहानियाँ गद्य-काव्य का आभास देती हैं। वे सूक्ष्म बिम्बों, प्रतीकात्मकता और तत्सम प्रधान शब्दावली का प्रयोग करते हैं, जो कहानी को एक अद्वितीय काव्यात्मक सौंदर्य प्रदान करता है। 'आकाशदीप' प्रसाद की कहानियों में न केवल उत्कृष्ट है, बल्कि यह उनके आदर्शवाद, त्याग की भावना और काव्यात्मक शिल्प का सर्वोत्तम उदाहरण भी है। इस कहानी में उन्होंने नियति, व्यक्तिगत प्रेम और सामाजिक कर्तव्य के बीच एक ऐसे संघर्ष को चित्रित किया है, जहाँ नायिका अंततः प्रेम के प्रलोभन को त्यागकर एक उदात्त और अविस्मरणीय आदर्श स्थापित करती है। प्रसाद की कहानी-कला का मुख्य लक्ष्य मानव मन की महत्ता और भावनात्मक गरिमा को ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में प्रक्षेपित करना था, जिससे उनके पात्रों का संघर्ष कालजयी और सार्वभौमिक बन सके।

'आकाशदीप' की कथावस्तु: चम्पा और बुद्धगुप्त का प्रारंभिक परिचय

'आकाशदीप' की कथावस्तु **दो मुख्य पात्रों—चम्पा और बुद्धगुप्त—**के इर्द-गिर्द बुनी गई है, जिनकी मुलाकात एक अत्यंत नाटकीय और आकस्मिक परिस्थिति में होती है। कथा का आरंभ उस क्षण से होता है, जब एक हिंसक संघर्ष के बाद ये दोनों एक जहाज के कारागार से बंधनमुक्त होते हैं। चम्पा एक ब्राहाण पिता की पुत्री है,

जिसका पिता जलदस्युओं द्वारा मार दिया गया था, जबकि बुद्धगुप्त उन्हीं जलदस्युओं का नायक है। कहानी का प्रारंभिक विन्यास ही प्रतिशोध और प्रेम के बीच के द्वंद्व का बीज बो देता है, क्योंकि चम्पा की मुक्ति और जीवनदान बुद्धगुप्त की क्रूरता का परिणाम नहीं, बल्कि उसके हृदय में दबे मानवीय अनुराग का परिणाम है। चम्पा अपनी आँखों के सामने अपने पिता की हत्या देखने के कारण बुद्धगुप्त से घृणा और प्रतिशोध की भावना रखती है, लेकिन वही बुद्धगुप्त उसे संकट से बाहर निकालता है। जहाज पर हुई यह आकस्मिक मुक्ति उन्हें एक विचित्र नियति के सूत्र में बाँध देती है।

चित्र 3.3: जयशंकर प्रसाद (1889-1937)

चम्पा की मुक्ति के बाद, वे उस स्थान पर पहुँचते हैं जिसे बुद्धगुप्त ने जलदस्युओं के लिए एक अड्डा बना रखा था। बुद्धगुप्त, चम्पा के प्रति अपने गहरे आकर्षण को छिपा नहीं पाता और उसे अधिकार और सम्मान के साथ अपने द्वीप के जीवन में सम्मिलित करता है। इस प्रारंभिक अवस्था में, कथावस्तु चम्पा के असुरक्षित जीवन और बुद्धगुप्त के जटिल व्यक्तित्व के बीच एक तनावपूर्ण संबंध स्थापित करती है, जहाँ चम्पा के मन में प्रतिशोध की अग्नि धधकती रहती है, जबकि बुद्धगुप्त का प्रेम उसे शांत करने का

प्रयास करता है। यह प्रारंभिक विन्यास ही कहानी की भावी त्रासदी और त्याग के लिए पृष्ठभूमि तैयार करता है।

'आकाशदीप' की कथावस्तु: नियति, प्रेम और संघर्ष का द्वंद्व

कथानक का केंद्रीय भाग चम्पा और बुद्धगुप्त के बीच पनपते प्रेम, नियति और नैतिक संघर्ष के इर्द-गिर्द घूमता है। बुद्धगुप्त अपनी वीरता, साहस और धन-संपदा के बल पर चम्पा के प्रति अपने प्रेम को प्रकट करता है और उसे अपने साम्राज्य की रानी बनाने का प्रस्ताव रखता है। वह चम्पा को बताता है कि वह अब जलदस्यु नहीं रहा, बल्कि एक नए द्वीप का अधिपति बन चुका है और उसका यह प्रेम सच्चा तथा गहरा है। यहाँ कथावस्तु एक अत्यंत नाजुक मोड़ लेती है: एक ओर बुद्धगुप्त का निश्छल और शक्तिशाली प्रेम है, जो चम्पा को वैभव और सुरक्षा प्रदान कर सकता है, वहीं दूसरी ओर चम्पा की नियति है, जिसमें उसके पिता का रक्त और बुद्धगुप्त के अपराधी अतीत का बोझ समाहित है। चम्पा, जो बुद्धगुप्त से घृणा करना चाहती है, स्वयं को उसके प्रेम और आकर्षण के सम्मुख कमजोर पाती है। यह आंतरिक संघर्ष चम्पा की कहानी का मूल है। वह लगातार इस प्रश्न से जूझती है कि क्या वह उस व्यक्ति को क्षमा कर दे, जिसने अप्रत्यक्ष रूप से उसके पिता की मृत्यु का कारण बना, और क्या वह उस अवैध शक्ति के बल पर प्राप्त साम्राज्य की रानी बन जाए? यह द्वंद्व केवल व्यक्तिगत प्रेम का नहीं है, बल्कि नैतिकता, अतीत के प्रति दायित्व और आत्म-सम्मान का है। चम्पा बुद्धगुप्त के प्रेम को स्वीकार करने के करीब पहुँचती है, लेकिन नियति उसे बार-बार उसके पिता की हत्या की याद दिलाती है, जिससे वह प्रेम के प्रलोभन को अस्वीकार कर देती है। यह संघर्ष बुद्धगुप्त के समर्पण और चम्पा की दृढ़ता को कसौटी पर कसता है।

'आकाशदीप' की कथावस्तु: चम्पा का अंतिम निर्णय और त्याग का चरम

कथावस्तु का उत्कर्ष बिंदु (Climax) चम्पा द्वारा बुद्धगुप्त के साम्राज्य और प्रेम को अस्वीकार करने के अंतिम निर्णय में निहित है, जो कहानी को एक उदात्त त्याग की ओर ले जाता है। बुद्धगुप्त चम्पा के सामने अपना हृदय खोलकर रख देता है और उसे उसका देश, उसका गौरव, उसका सिंहासन सब सौंपने की पेशकश करता है। वह चम्पा को अपने साथ भारत लौटने का प्रस्ताव भी देता है, ताकि वह अपने अतीत को

पीछे छोड़ सके और चम्पा के साथ एक नया, सम्मानित जीवन शुरू कर सके। यह प्रस्ताव बुद्धगुप्त के प्रेम की चरम सीमा को दर्शाता है। लेकिन चम्पा का निर्णय इस प्रेम से कहीं ऊपर, आत्म-सम्मान और कर्तव्य के धरातल पर टिका होता है। वह बुद्धगुप्त को स्पष्ट रूप से अस्वीकार कर देती है। उसका यह निर्णय भावनात्मक नहीं, बल्कि नैतिक और दार्शनिक है। चम्पा बुद्धगुप्त से कहती है कि वह उससे घृणा नहीं कर सकती, क्योंकि वह उससे प्रेम करती है, लेकिन वह उसका प्रेम स्वीकार भी नहीं कर सकती, क्योंकि उसका कर्तव्य उसके पिता और उसकी नियति से बँधा है। चम्पा, उस द्वीप पर रुकने का निर्णय लेती है, जहाँ वह अपने जीवन को मार्ग-निर्देशक के रूप में समर्पित करती है। वह बुद्धगुप्त के धन, प्रेम और साम्राज्य को त्यागकर उस द्वीप की एकमात्र प्रकाश-स्तंभ बन जाती है। यह त्याग कहानी को एक साधारण प्रेम कथा से उठाकर मानवीय नियति और आदर्श की महान गाथा बना देता है, जहाँ चम्पा प्रेम की शक्ति को स्वीकार करती है, पर अपने जीवन का उद्देश्य किसी व्यक्ति विशेष के सुख में नहीं, बल्कि सार्वजनिक कल्याण और आत्म-शुद्धि में पाती है।

कहानी का केंद्रीय आदर्शवाद: प्रेम और कर्तव्य का टकराव

'आकाशदीप' का केंद्रीय विचार और आदर्शवाद व्यक्तिगत प्रेम (Self-Love) और उदात्त कर्तव्य (Sublime Duty) के बीच के शाश्वत टकराव में निहित है। प्रसाद के आदर्शवाद की विशेषता यह है कि यह केवल नैतिक उपदेश नहीं देता, बल्कि पात्रों के गहरे भावनात्मक द्वंद्व के माध्यम से अभिव्यक्त होता है। चम्पा और बुद्धगुप्त का प्रेम अत्यंत तीव्र, सच्चा और पारस्परिक है; यदि चम्पा बुद्धगुप्त को स्वीकार कर लेती, तो कहानी सुखांत (Happy Ending) हो जाती। लेकिन प्रसाद का आदर्शवादी दृष्टिकोण इस बात पर जोर देता है कि प्रेम तभी महान होता है, जब वह आत्म-केंद्रित सुख की अपेक्षा त्याग और बलिदान से युक्त हो। चम्पा का कर्तव्य यहाँ दोहरा है: पहला, पिता की स्मृति और उनके प्रति हुए अन्याय का बोध, और दूसरा, उस दीप-स्तंभ की सेवा करना, जो नाविकों को मार्ग दिखाता है। जब बुद्धगुप्त चम्पा से कहता है, "मैं तुम्हारे लिए सब कुछ छोड़ सकता हूँ," तो चम्पा का उत्तर प्रसाद के आदर्शवाद का चरम बिंदु है: "मैं तुम्हारे लिए कुछ भी नहीं छोड़ सकती।" चम्पा व्यक्तिगत प्रेम को भोग मानती है, जबकि दीप-स्तंभ की सेवा को योग या आत्म-समर्पण। वह बुद्धगुप्त को यह कहकर भी अस्वीकार करती है कि उसके जीवन का एकमात्र अवलंब उसका अतीत

है, जिसे वह भुला नहीं सकती। इस प्रकार, प्रसाद इस कहानी के माध्यम से यह संदेश देते हैं कि महानता केवल साहस या धन में नहीं है, बल्कि उस नैतिक संकल्प में है, जो प्रेम के गहन आकर्षण को भी उदात्त कर्तव्य की वेदी पर न्योछावर कर देता है।

'आकाशदीप' में त्याग का दर्शन: व्यक्तिगत प्रेम पर सामाजिक न्याय की विजय

'आकाशदीप' का त्याग का दर्शन (Philosophy of Sacrifice) प्रसाद के साहित्य की आधारशिला है। चम्पा का त्याग केवल बुद्धगुप्त को छोड़ देना नहीं है, बल्कि यह व्यक्तिगत सुख और सुरक्षा के प्रलोभन पर सामाजिक न्याय और आत्म-सम्मान की जीत है। बुद्धगुप्त का प्रेम चम्पा को एक रानी का जीवन और अपार धन-संपत्ति प्रदान कर सकता था, परंतु चम्पा के लिए यह जीवन उसके पिता के बलिदान और बुद्धगुप्त के आपराधिक अतीत पर खड़ा होता, जिसे वह स्वीकार नहीं कर सकती थी। चम्पा का त्याग इस बात का प्रतीक है कि नैतिक शुद्धता भौतिक सुख से अधिक महत्वपूर्ण है। वह जानती है कि बुद्धगुप्त का साम्राज्य उसके पिता की हत्या जैसे अनेक हिंसक कृत्यों पर आधारित है, और उस साम्राज्य की रानी बनना स्वयं को उस अन्याय में भागीदार बनाना होगा। इसलिए, चम्पा उस विलासिता को त्यागकर सेवा और एकाकीपन का जीवन चुनती है। द्वीप पर उसका रुकना और आकाशदीप जलाना एक प्रायश्चित (Atonement) भी है—यह उसके पिता की अशांत आत्मा को शांति देने का प्रयास है, और साथ ही उन अनगिनत नाविकों के प्रति सामाजिक दायित्व का निर्वाह है, जिनकी जान समुद्र में खतरे में पड़ सकती है। यह त्याग व्यक्तिगत प्रेम की सीमाओं को तोड़ता है और उसे सार्वजनिक कल्याण के व्यापक फलक पर स्थापित करता है। चम्पा का प्रेम बुद्धगुप्त को एक अच्छा इंसान बनने की प्रेरणा देता है, लेकिन वह उस प्रेरणा के फल को स्वयं नहीं भोगती। इस प्रकार, चम्पा का त्याग एक उदात्त बलिदान है, जो प्रेम की शक्ति को कर्तव्य और न्याय की कसौटी पर कसता है, जहाँ कर्तव्य का पलड़ा भारी होता है, जिससे कहानी का अंत त्रासदीपूर्ण होने के बावजूद गौरवपूर्ण बन जाता है।

मानवीय मूल्य: प्रतिशोध की भावना और क्षमा की उदात्तता

कहानी 'आकाशदीप' प्रतिशोध की भावना और क्षमा की उदात्तता जैसे दो महत्वपूर्ण मानवीय मूल्यों के बीच के जटिल संबंधों का अन्वेषण करती है। प्रारंभ में, चम्पा

बुद्धगुप्त को अपने पिता की मृत्यु का परोक्ष कारण मानती है और उसके प्रति तीव्र प्रतिशोध की भावना रखती है। जहाज पर जब उसे बुद्धगुप्त को मारने का अवसर मिलता है, तो प्रतिशोध की यह भावना चरमोत्कर्ष पर होती है, लेकिन वह अपने हाथ को रोक लेती है, और यहीं से कहानी आदर्शवाद की ओर मुड़ जाती है। चम्पा की प्रतिशोध की भावना धीरे-धीरे बुद्धगुप्त के प्रेम और उसके आत्म-समर्पण के सम्मुख करुणा में बदल जाती है। वह बुद्धगुप्त से घृणा नहीं कर पाती, क्योंकि वह उसके भीतर के अच्छे मनुष्य को पहचान लेती है। चम्पा का अंतिम निर्णय क्षमा की उदात्तता को दर्शाता है, लेकिन यह क्षमा स्वीकार्यता के रूप में नहीं, बल्कि मुक्त कर देने के रूप में व्यक्त होती है। चम्पा बुद्धगुप्त को उसके अपराधों के लिए व्यक्तिगत रूप से दंडित नहीं करती, बल्कि उसे नैतिक रूप से मुक्त करती है, ताकि वह अपने नए साम्राज्य में एक सम्मानित जीवन जी सके। लेकिन वह स्वयं उसके जीवन में शामिल होकर उसके पापों का भागीदार बनना अस्वीकार कर देती है। यह आत्म-त्यागमय क्षमा है। चम्पा एक ऐसा रास्ता चुनती है जहाँ न तो प्रतिशोध की क्रूरता है और न ही व्यक्तिगत प्रेम की स्वार्थपरता। वह अपने आप को सेवा और एकाकीपन में समर्पित करके, प्रतिशोध के चक्र को तोड़ती है और मानवीय करुणा तथा नैतिक दृढ़ता के मूल्य को स्थापित करती है। इस प्रकार, कहानी बताती है कि सबसे बड़ा मानवीय मूल्य आत्म-नियंत्रण है, जो व्यक्ति को प्रतिशोध की आग से बचाकर, उदात्त बलिदान के मार्ग पर ले जाता है।

मानवीय मूल्य: स्त्री-चेतना और चम्पा का स्वाभिमान

'आकाशदीप' में चम्पा का चरित्र प्रसाद द्वारा प्रस्तुत स्त्री-चेतना का एक अद्भुत उदाहरण है, जो स्वाभिमान, आत्म-निर्णय और भावनात्मक स्वतंत्रता के मूल्यों को दर्शाता है। प्रसाद की नायिकाएँ प्रेमचंद की नायिकाओं (जो प्रायः त्याग और करुणा के पारंपरिक फ्रेम में बंधी होती थीं) से अलग, मजबूत इच्छा-शक्ति और स्वतंत्र व्यक्तित्व की धनी होती हैं। चम्पा बुद्धगुप्त के अपार प्रेम और वैभव के सम्मुख झुकती नहीं है, बल्कि अपने स्वाभिमान और नैतिक बोध के आधार पर निर्णय लेती है। उसका यह निर्णय किसी पुरुष पर आश्रित होने के बजाय स्वयं के मार्ग का चयन है। बुद्धगुप्त द्वारा रानी बनाने की पेशकश पर भी, चम्पा यह सुनिश्चित करती है कि उसका जीवन दान या दया पर आधारित न हो। चम्पा का यह कदम पितृसत्तात्मक समाज की उस धारणा

को चुनौती देता है, जिसमें स्त्री का जीवन केवल विवाह और पति के भाग्य से जुड़ा होता है। वह प्रेम के प्रस्ताव को ठुकराती है, लेकिन इसका कारण यह नहीं है कि वह प्रेम नहीं करती, बल्कि इसलिए कि वह बुद्धगुप्त के पापी अतीत को अपने भविष्य का आधार नहीं बना सकती। उसका आत्म-निर्णय उसे यह अधिकार देता है कि वह किसी अपराधी के साथ सुखपूर्वक जीवन व्यतीत करने की बजाय, एक एकाकी, कर्तव्यपरायण जीवन चुने। आकाशदीप की सेवा करना उसका स्वयं द्वारा चुना गया स्वतंत्र पेशा है, जो उसे उसके अतीत से जोड़ता है और उसके वर्तमान को एक उदात्त उद्देश्य प्रदान करता है। चम्पा की यह चेतना उसे एक आधुनिक नारी के रूप में स्थापित करती है, जो प्रेम को आत्म-बलिदान से नहीं, बल्कि आत्म-सम्मान और नैतिक श्रेष्ठता से परिभाषित करती है।

'आकाशदीप' की काव्यात्मक भाषा और बिंबात्मकता

जयशंकर प्रसाद की कहानी 'आकाशदीप' अपनी काव्यात्मक भाषा (Poetic Language) और बिंबात्मकता (Imagery) के कारण हिंदी कहानी साहित्य में एक विशिष्ट स्थान रखती है। प्रसाद मूलतः कवि थे, और उनकी यह प्रतिभा उनकी कहानियों के गद्य को एक अद्वितीय सौंदर्य और लय प्रदान करती है। उनकी भाषा तत्सम प्रधान और संस्कृतनिष्ठ है, जो कहानी के ऐतिहासिक और रोमांटिक वातावरण को मजबूती प्रदान करती है। कहानी का आरंभिक और अंतिम भाग विशेष रूप से काव्यात्मक है, जहाँ सागर, आकाश और दीप-स्तंभ का वर्णन किसी कविता के दृश्य बिंबों की तरह होता है।

प्रसाद ने कहानी में अनेक प्रतीकों और बिम्बों का प्रयोग किया है, जो कथ्य को गहराई प्रदान करते हैं:

1. जहाज का कारागार: यह नियति और बंधन का प्रतीक है, जिससे पात्रों का जीवन शुरू होता है।
2. चम्पा: उसका नाम, जिसका अर्थ एक फूल है, उसके आंतरिक सौंदर्य, कोमलता और बलिदान को दर्शाता है।
3. बुद्धगुप्त: उसके नाम में बुद्ध का अंश है, जो उसके भीतर के जागृत होने वाले विवेक और पश्चात्ताप को इंगित करता है।

4. आकाशदीप: यह कहानी का सबसे महत्वपूर्ण बिम्ब है। यह न केवल आशा, मार्ग-दर्शन और सुरक्षा का प्रतीक है, बल्कि यह चम्पा के आत्म-त्याग और उदात्त कर्तव्य का भी प्रतीक है। चम्पा का द्वीप पर रुककर आकाशदीप जलाना, उसका अपने अतीत के प्रति दायित्व और वर्तमान के प्रति नैतिक समर्पण का प्रतीक बन जाता है।

प्रसाद की वाक्य-रचना भी काव्यात्मक होती है; वे अक्सर लंबे, अलंकृत वाक्य लिखते हैं, जो भावनाओं और विचारों को एक शांत प्रवाह के साथ व्यक्त करते हैं। उनकी शैली में नाटकीयता और रोमांच का समावेश होता है, जो पाठक को कहानी के कल्पनालोक में बाँधे रखता है। इस प्रकार, 'आकाशदीप' की भाषा केवल कथा सुनाने का माध्यम नहीं है, बल्कि वह स्वयं में एक कलाकृति है, जो प्रेम, त्याग और उदात्तता के विचारों को एक भावनात्मक और सौंदर्यपरक आवरण प्रदान करती है। जयशंकर प्रसाद की कहानी 'आकाशदीप' उनके ऐतिहासिक-रोमांटिक कहानी साहित्य का एक मील का पत्थर है। यह कहानी प्रेमचंद के सामाजिक यथार्थवाद के समानांतर, मनुष्य की आत्मिक और भावनात्मक ऊँचाई को सिद्ध करती है। 'आकाशदीप' का महत्व केवल उसकी प्रेम कथा में नहीं, बल्कि प्रेम की अस्वीकृति में निहित है, जो कहानी को एक उदात्त दर्शन प्रदान करती है। चम्पा का चरित्र भारतीय साहित्य की उन नायिकाओं में से एक है, जो व्यक्तिगत सुख को त्यागकर नैतिक कर्तव्य और स्वाभिमान को सर्वोपरि रखती है, जिससे वह प्रेम की भावना को पवित्र और उदात्त बनाती है।

कहानी ने साहित्य में काव्यात्मक गद्य के महत्व को स्थापित किया, जहाँ भाषा की सुंदरता और बिम्बों की गहराई कथ्य के प्रभाव को कई गुना बढ़ा देती है। प्रसाद ने इस कहानी के माध्यम से यह दर्शाया कि रोमांच, इतिहास और नियति के तत्वों का प्रयोग करते हुए भी कहानी गहन दार्शनिक प्रश्न उठा सकती है। चम्पा और बुद्धगुप्त का द्वंद्व शाश्वत है: यह अतीत के बोझ और भविष्य के आकर्षण के बीच का द्वंद्व है। अंततः, चम्पा का आकाशदीप जलाना यह सिद्ध करता है कि मानव-मन की सबसे बड़ी शक्ति त्याग में है, भोग में नहीं। 'आकाशदीप' इसलिए भी महत्वपूर्ण है क्योंकि यह हिंदी कहानी को सेंटीमेंटल रोमान्स से निकालकर नैतिक और मनोवैज्ञानिक रोमांस के धरातल पर ले आती है, जहाँ नायक और नायिका अपने समय से ऊपर

उठकर मानवीय आदर्श के प्रतीक बन जाते हैं। यह कहानी प्रसाद की उस कला दृष्टि का परिचय देती है, जहाँ सौंदर्य, प्रेम और बलिदान एक ही सूत्र में पिरोए जाते हैं।

10.5 यशपाल

हिंदी कहानी साहित्य में मुंशी प्रेमचंद के बाद यशपाल (1903-1976) उन गिने-चुने कहानीकारों में से हैं, जिन्होंने प्रगतिवादी विचारधारा को न केवल स्वीकार किया, बल्कि उसे अपनी कथा-कला का मूल आधार भी बनाया। यशपाल का लेखन उनके मार्क्सवादी दर्शन और क्रांतिकारी जीवन-दृष्टि से गहरे रूप से प्रभावित था। उनका उद्देश्य केवल समाज का चित्रण करना नहीं था, बल्कि वर्ग-संघर्ष (Class Struggle) को उद्घाटित करना और शोषक वर्ग के विरुद्ध शोषित वर्ग की चेतना को जागृत करना था। यशपाल की कहानियाँ प्रेमचंद के आदर्शोन्मुख यथार्थवाद से आगे बढ़कर कठोर, निर्मम यथार्थवाद (Unflinching Realism) को अपनाती हैं, जहाँ समस्याओं का कोई सरल या आदर्शवादी समाधान नहीं दिया जाता, बल्कि सामाजिक विसंगतियों को उनके मूल रूप में प्रस्तुत किया जाता है। 'परदा' कहानी, जो उनकी सर्वाधिक चर्चित और प्रतीकात्मक कहानियों में से एक है, इसी प्रगतिशील दृष्टिकोण का सशक्त उदाहरण है। इस कहानी के माध्यम से यशपाल ने यह सिद्ध किया कि आर्थिक विपन्नता (Economic Poverty) केवल शारीरिक कष्ट नहीं देती, बल्कि मानवीय गरिमा और आत्म-सम्मान को भी किस प्रकार खंडित करती है। 'परदा' में दिखावे की संस्कृति, सामाजिक रूढ़ियाँ और गरीबी के मनोवैज्ञानिक प्रभाव का चित्रण करते हुए, यशपाल ने यह स्पष्ट संदेश दिया है कि झूठी प्रतिष्ठा की रक्षा करने वाली रूढ़ियाँ किस प्रकार गरीब व्यक्ति को और अधिक पतन की ओर धकेलती हैं। उनका कहानी-शिल्प सीधा, तीखा और व्यंग्यात्मक होता था, जो वैचारिक प्रतिबद्धता के साथ-साथ कलात्मक कुशलता का भी परिचय देता है।

'परदा' की कथावस्तु: चौधरी पीरबख्श का वंश और पतन

'परदा' कहानी की कथावस्तु चौधरी पीरबख्श नामक एक ऐसे व्यक्ति के जीवन के इर्द-गिर्द घूमती है, जो एक समय के प्रतिष्ठित, संपन्न और सामंती परिवार के वंशज हैं, लेकिन वर्तमान में घोर निर्धनता का जीवन जी रहे हैं। कहानी का केंद्रीय द्वंद्व पीरबख्श के गौरवशाली अतीत और उनके दयनीय वर्तमान के बीच निहित है। चौधरी पीरबख्श

के पूर्वज कभी बहुत सम्मानित थे, जिनके दरवाज़े पर हाथी झूमता था और घर में नौकर-चाकरों की भीड़ रहती थी। इसी पारिवारिक प्रतिष्ठा के झूठे दंभ को सहेजने का कार्य चौधरी पीरबख्श कर रहे हैं। वे परिवार की इज्जत को बचाए रखने के लिए अपने निर्धनता को हर कीमत पर समाज से छिपाने का प्रयास करते हैं। उनकी पूरी आजीविका का एकमात्र साधन उनकी पुरानी, फटी-पुरानी और जर्जर हवेली का पुरानी प्रतिष्ठा है। कहानी में घटनाक्रम अत्यंत सीमित, किंतु मनोवैज्ञानिक रूप से तीव्र है। चौधरी परिवार कर्ज और आभावों में डूबा हुआ है। उन्हें अक्सर भूखे रहना पड़ता है। कथा का मुख्य संघर्ष उस समय सामने आता है, जब पठान महाजन अपने कर्ज की वसूली के लिए पीरबख्श के घर आता है। पीरबख्श, अपनी झूठी प्रतिष्ठा को बचाने के लिए, महाजन से छिपने का प्रयास करते हैं। कहानी का चरमोत्कर्ष तब आता है, जब हवा का एक झोंका या संभवतः महाजन की खींचातानी से, उनके मकान के दरवाज़े पर टंगा हुआ मैला, फटा हुआ परदा नीचे गिर जाता है। परदा गिरते ही, भीतर की सारी गरीबी, अस्त-व्यस्तता और नारकीय जीवन समाज के सामने नंगा हो जाता है। यह क्षण चौधरी पीरबख्श के मानसिक पतन और सामाजिक पराजय का प्रतीक है। कथावस्तु का यह संक्षिप्त, किंतु शक्तिशाली विन्यास यशपाल के यथार्थवादी चित्रण की शक्ति को दर्शाता है।

परदा: कहानी का केंद्रीय प्रतीक और दिखावे की संस्कृति

'परदा' कहानी का शीर्षक मात्र एक वस्तु का उल्लेख नहीं है, बल्कि यह कहानी का केंद्रीय, बहुआयामी प्रतीक (Central Symbol) है, जो भारतीय मध्यवर्गीय और सामंती समाज की दिखावे की संस्कृति (Culture of Pretense) को उजागर करता है। भौतिक अर्थ में, परदा चौधरी पीरबख्श के दरवाज़े पर टंगा हुआ एक फटा, मैला कपड़ा है, जिसका कार्य घर के भीतर की निर्धनता को बाहर की दुनिया से छिपाना है। लेकिन प्रतीकात्मक रूप से, 'परदा' कई अर्थों को वहन करता है:

1. झूठी प्रतिष्ठा का कवच: यह चौधरी पीरबख्श की उस भ्रामक सामाजिक प्रतिष्ठा का प्रतीक है, जिसे वह बनाए रखने के लिए अपने परिवार को भूखा रखता है। यह परदा उनकी पिछली सामंती शान का अंतिम अवशेष है।

2. मानसिक कारागार: परदा भीतर रहने वाली स्त्रियों के लिए एक मानसिक और सामाजिक कारागार है, क्योंकि यह उन्हें घर की चारदीवारी से बाहर निकलकर काम करने और गरीबी से लड़ने से रोकता है। परदे की मर्यादा ने उन्हें निर्धनता के सामने बेबस कर दिया है।
3. समाज की संवेदनहीनता: परदा समाज की उस संवेदनहीनता का भी प्रतीक है, जो केवल दिखावे को महत्व देता है, भीतर के यथार्थ को नहीं। समाज, जब तक परदा टंगा है, तब तक पीरबख्श को सम्मान देता है, लेकिन परदा गिरते ही वह उनका मज़ाक बनाता है।
4. शोषक और शोषित के बीच की दीवार: यह परदा शोषक वर्ग (महाजन) और शोषित वर्ग (पीरबख्श) के बीच की उस पतली और भंगुर दीवार को दर्शाता है, जिसके हटते ही शोषक निर्धन को और अधिक अपमानित करने का अवसर पा जाता है।

परदा गिरना केवल एक कपड़े का गिरना नहीं है, बल्कि यह झूठी मर्यादा, आत्म-सम्मान के भ्रम और सामंती दंभ के पूरी तरह ध्वस्त हो जाने का क्षण है। यह एक ऐसा क्षण है जब पीरबख्श की आंतरिक और बाह्य दुनिया एक-दूसरे के सामने नंगी हो जाती है।

सामाजिक रूढ़ियाँ और झूठी प्रतिष्ठा का बंधन

यशपाल ने 'परदा' कहानी में भारतीय समाज में व्याप्त उन सामाजिक रूढ़ियों (Social Conservatism) पर तीखा प्रहार किया है, जो मनुष्य को आर्थिक संकट के बावजूद झूठी प्रतिष्ठा (False Prestige) के बंधनों में जकड़े रखती हैं। चौधरी पीरबख्श का परिवार इसी रूढ़ि का शिकार है। उनकी सबसे बड़ी रूढ़ि यह है कि पूर्वजों की शान को किसी भी कीमत पर बनाए रखना है, भले ही इसके लिए वर्तमान में उन्हें और उनके परिवार को भीषण कष्ट सहना पड़े। इस कहानी में रूढ़ियाँ कई स्तर पर काम करती हैं:

1. सामाजिक मर्यादा की रूढ़ि: चौधरी परिवार की प्रतिष्ठा का निर्धारण उनकी वर्तमान आर्थिक स्थिति से नहीं, बल्कि उनके खानदानी इतिहास से होता है। समाज उनसे

अपेक्षा करता है कि वे अपना सामंती दिखावा जारी रखें, भले ही उनके पास खाने को न हो।

2. पर्दा प्रथा की रूढ़ि: यह रूढ़ि घर की स्त्रियों को काम करने और परिवार की आर्थिक सहायता करने से रोकती है। इज्जत को इस बात से जोड़ा गया है कि घर की महिलाएँ बाहर न निकलें। यही रूढ़ि पीरबख्श की गरीबी को और भी गहरा करती है, क्योंकि उनकी पत्नी और बेटियाँ चारदीवारी के पीछे रहते हुए केवल भूख और अभाव झेलने के लिए अभिशप्त हैं।
3. कर्ज की रूढ़ि: कर्ज लेना, खास तौर पर प्रतिष्ठित परिवारों के लिए, अपनी शान बनाए रखने का एक आसान तरीका बन गया था। पीरबख्श भी अपनी प्रतिष्ठा को बनाए रखने के लिए लगातार कर्ज लेते हैं, जिससे वे महाजनी शोषण के जाल में फँस जाते हैं।

यशपाल यह दर्शाते हैं कि ये रूढ़ियाँ किस प्रकार आर्थिक शोषण को छिपाने का साधन बनती हैं। पीरबख्श को यह रूढ़ि ही मजबूर करती है कि वे पठान महाजन से छिपने का प्रयास करें, क्योंकि रूढ़ि यह सिखाती है कि इज्जतदार व्यक्ति कर्जदार नहीं हो सकता। अंततः, परदा गिरने के साथ ही यह झूठी रूढ़ि ध्वस्त हो जाती है, लेकिन उसका परिणाम सामाजिक मुक्ति नहीं, बल्कि चरम अपमान होता है। इस प्रकार, रूढ़ियाँ गरीबी के खिलाफ लड़ने की प्रेरणा को मार देती हैं।

निर्धनता का मनोवैज्ञानिक प्रभाव: सम्मान और गरीबी का द्वंद्व

'परदा' कहानी निर्धनता के केवल आर्थिक नहीं, बल्कि गहरे मनोवैज्ञानिक प्रभावों का विश्लेषण करती है। कहानी का मुख्य नायक चौधरी पीरबख्श अपनी निर्धनता से जितना पीड़ित नहीं है, उससे कहीं अधिक अपनी झूठी प्रतिष्ठा को बनाए रखने के तनाव से पीड़ित है। यही वह मनोवैज्ञानिक द्वंद्व है जो कहानी को विशिष्ट बनाता है: सम्मान (अतीत की शान) और वर्तमान की गरीबी के बीच का संघर्ष। पीरबख्श का पूरा व्यक्तित्व इसी दिखावे पर टिका हुआ है। वे जानते हैं कि वे गरीब हैं, लेकिन वे इस सत्य को स्वयं से और समाज से छिपाने के लिए हर संभव प्रयास करते हैं। उनका यह प्रयास ही उन्हें और उनके परिवार को और भी अधिक दर्द पहुँचाता है।

मनोवैज्ञानिक प्रभाव निम्नलिखित रूप में प्रकट होते हैं:

1. पलायनवाद (Escapism): पीरबख्श हर उस व्यक्ति से छिपते हैं, जो उनकी वास्तविकता को जानता है, विशेषकर पठान महाजन से। यह छिपाव यथार्थ से पलायन का प्रतीक है।
2. आत्म-छल (Self-Deception): वे खुद को और अपने परिवार को पुरानी शान की कहानियाँ सुनाकर यह भ्रम बनाए रखते हैं कि वे अभी भी प्रतिष्ठित हैं। यह आत्म-छल उनकी संघर्ष करने की शक्ति को क्षीण कर देता है।
3. कुंठा और हीनता: परदा गिरते ही पीरबख्श के भीतर की कुंठा (Frustration) और हीनता-ग्रंथि (Inferiority Complex) चरम पर पहुँच जाती है। सामाजिक रूप से नंगा होना उनकी आत्मिक मृत्यु के समान है।

यशपाल ने यह मनोवैज्ञानिक सत्य स्थापित किया कि गरीबी मनुष्य को दोहरी मार देती है: एक ओर भूख और अभाव की मार, और दूसरी ओर मान-सम्मान खोने के भय की मार। पीरबख्श की पीड़ा इस बात में नहीं है कि उनके पास कंबल नहीं है, बल्कि इस बात में है कि उनकी यह अभावग्रस्त स्थिति समाज के सामने आ जाएगी। यह द्वंद्व उनकी चारित्रिक दुर्बलता नहीं, बल्कि उस सामंती संस्कार का परिणाम है जो उन्हें अपनी वास्तविक स्थिति को स्वीकार करने से रोकता है।

'परदा' में स्त्री की स्थिति: रूढ़ियों और गरीबी की दोहरी मार

'परदा' कहानी स्त्री की स्थिति (Status of Women) का एक हृदयविदारक चित्रण प्रस्तुत करती है, जिसे सामाजिक रूढ़ियों और चरम निर्धनता की दोहरी मार झेलनी पड़ती है। कहानी की कथावस्तु मुख्य रूप से चौधरी पीरबख्श पर केंद्रित है, लेकिन उनका दुःख और भी गहरा हो जाता है जब हम पर्दे के भीतर कैद स्त्रियों के जीवन की कल्पना करते हैं।

1. आर्थिक रूप से पराधीनता: पर्दा प्रथा और खानदानी प्रतिष्ठा की रूढ़ि ने चौधरी परिवार की महिलाओं को घर की चारदीवारी में सीमित कर दिया है। उन्हें घर से बाहर निकलकर किसी भी प्रकार का काम करने की अनुमति नहीं है, भले ही परिवार भूख से मर रहा हो। उनका श्रम प्रतिष्ठा की रूढ़ि के कारण बाधित होता

है, जिससे वे परिवार की आर्थिक रीढ़ बनने के बजाय केवल बोझ बनकर रह जाती हैं।

2. मानसिक कारावास: ये स्त्रियाँ न केवल शारीरिक रूप से, बल्कि मानसिक रूप से भी उस झूठी मर्यादा के परदे में कैद हैं। उन्हें यह सिखाया गया है कि घर की इज्जत उन्हीं के पर्दे में निहित है। इसलिए, वे भूख और अभाव सहकर भी उस परदे को बचाए रखने में सहयोग करती हैं, भले ही यह पर्दा उनके जीवन को नरक बना रहा हो।
3. अनाम और अमूर्त दुःख: कहानी में इन स्त्रियों का चरित्रण अधिक स्पष्ट नहीं है, वे केवल दुःख और अभाव के प्रतीक के रूप में मौजूद हैं। उनकी उपस्थिति पीरबख्श के दुःख को और भी गहरा करती है—वे जानते हैं कि उनके परिवार की स्त्रियाँ भीतर भूख से तड़प रही हैं, लेकिन वह उन्हें बाहर निकलकर काम करने की अनुमति नहीं दे सकते।

इस प्रकार, यशपाल ने यह दिखाया है कि रूढ़ियाँ सबसे पहले और सबसे अधिक स्त्री को ही शिकार बनाती हैं। उनके लिए परदा केवल एक कपड़ा नहीं है, बल्कि यह पितृसत्तात्मक सामाजिक व्यवस्था का एक क्रूर नियम है जो उन्हें जीवन जीने के मानवीय अधिकार से वंचित करता है। उनका जीवन पर्दा गिरने के साथ ही पूरी तरह सामाजिक अपमान के सामने बेनकाब हो जाता है, क्योंकि वे इज्जत और भूख के बीच फंसी हुई हैं।

यशपाल का प्रगतिशील दृष्टिकोण: वर्ग-संघर्ष और सामाजिक आलोचना

'परदा' कहानी में यशपाल का प्रगतिशील दृष्टिकोण (Progressive Viewpoint) अत्यंत स्पष्ट और तीक्ष्ण है, जो कहानी को मात्र एक मनोवैज्ञानिक त्रासदी न बनाकर, एक सामाजिक-राजनीतिक आलोचना बना देता है।

1. शोषक वर्ग का प्रतीक (पठान महाजन): पठान महाजन यहाँ केवल एक कर्जदाता नहीं है, बल्कि वह पूंजीवादी व्यवस्था और महाजनी शोषण का क्रूर प्रतीक है। वह निर्धनता और बेबसी का फायदा उठाता है और इज्जतदार चौधरी को अपमानित करने में कोई

संकोच नहीं करता। उसका जबरन घर में घुसना और परदा हटाना पूंजीवादी शक्ति द्वारा सामंती अवशेषों के आत्मसम्मान को कुचलने का प्रतीक है।

2. सामंती अवशेषों की आलोचना: यशपाल का प्रगतिशील दृष्टिकोण चौधरी पीरबख्श के प्रति पूरी तरह सहानुभूतिपूर्ण नहीं है। वे पीरबख्श की झूठी शान और आलस्य की भी आलोचना करते हैं। उनका मानना है कि पुराने सामंती संस्कार ही उन्हें श्रम से विमुख रखते हैं और उन्हें संघर्ष करने की प्रेरणा नहीं देते। प्रगतिवाद श्रम की महत्ता पर ज़ोर देता है, जबकि पीरबख्श की जीवनशैली श्रम-विरोधी है।
3. पतन का कारण: यशपाल के अनुसार, पीरबख्श का पतन केवल महाजन के कारण नहीं होता, बल्कि उनकी अपनी रूढ़िबद्ध सोच और सामंती जीवनशैली के कारण होता है, जो उन्हें समय के साथ बदलने नहीं देती।

इस कहानी का प्रगतिशील संदेश यह है कि जब तक व्यक्ति झूठी इज्जत के परदे को नहीं हटाएगा और श्रम को स्वीकार नहीं करेगा, तब तक वह शोषण के चक्र से मुक्त नहीं हो सकता। यशपाल ने 'परदा' गिराकर समाज की आँखें खोलीं कि मानवीय गरिमा का सच्चा आधार आर्थिक स्वतंत्रता और श्रम है, न कि अतीत की विरासत।

यथार्थवादी शैली और व्यंग्य का तीखा प्रयोग

'परदा' कहानी यशपाल की यथार्थवादी शैली (Realistic Style) और उनके तीखे व्यंग्य (Satire) का उत्कृष्ट नमूना है। उनकी शैली की मुख्य विशेषताएँ निम्नलिखित हैं:

1. निर्मम यथार्थवाद: प्रेमचंद के विपरीत, यशपाल ने कहानी में आदर्श या समाधान का कोई सहारा नहीं लिया। उन्होंने चौधरी पीरबख्श की गरीबी, भूख और अपमान को अत्यंत निर्ममता से चित्रित किया। परदा गिरना किसी भावनात्मक मोड़ के साथ नहीं जुड़ता, बल्कि कठोर वास्तविकता के साथ जुड़ता है।
2. व्यंग्यात्मक लहजा: कहानी का पूरा माहौल एक गूढ़ व्यंग्य से भरा हुआ है। पीरबख्श के परिवार की भूख और फटा हुआ परदा, उनके पूर्वजों के हाथी और ठाट-बाट की कहानियों के साथ मिलकर एक तीखा विरोधाभास उत्पन्न करते हैं। यह विरोधाभास ही व्यंग्य का कार्य करता है। यशपाल उन लोगों पर व्यंग्य करते हैं जो पेट की भूख से ज़्यादा समाज के भय को महत्व देते हैं

3. प्रतीकात्मकता का सफल प्रयोग: कहानी का प्रतीक 'परदा' इतना शक्तिशाली है कि वह अपने आप में एक पूरी सामाजिक आलोचना को समेटे हुए है। शैलीगत रूप से यह कहानी को संक्षिप्तता और सघनता प्रदान करता है, जो कहानी विधा के लिए आवश्यक है।
4. पात्रों का चित्रण: पात्रों का चित्रण टाइप के रूप में किया गया है—पीरबख्श पतनशील सामंती व्यवस्था का प्रतिनिधि है, जबकि पठान महाजन बढ़ते पूंजीवादी शोषण का प्रतिनिधि है। यह शैली प्रगतिवादी कहानी के अनुकूल थी, जहाँ पात्रों के मनोवैज्ञानिक विश्लेषण से अधिक वर्गगत पहचान पर ज़ोर दिया जाता था।

इस यथार्थवादी और व्यंग्यात्मक शैली के माध्यम से यशपाल ने पाठक को केवल घटनाएँ नहीं सुनाईं, बल्कि उसे सामाजिक विकृति को उसके असली रूप में देखने पर मजबूर किया। परदा गिरते ही उत्पन्न हुई चीख और सन्नाटा शैलीगत रूप से कहानी के दुखद अंत को गहराई प्रदान करता है।

'परदा' का प्रभाव: कहानी की प्रासंगिकता और सार्वभौमिकता

'परदा' कहानी अपने प्रकाशन के दशकों बाद भी अपनी तीव्र प्रासंगिकता (Relevance) और सार्वभौमिकता (Universality) बनाए रखती है। कहानी का प्रभाव न केवल हिंदी साहित्य पर पड़ा है, बल्कि यह गरीबी और दिखावे के बीच फंसे मानव-मन की शाश्वत समस्या को भी दर्शाती है।

1. आधुनिक प्रासंगिकता: आज के उपभोक्तावादी और सोशल मीडिया के युग में, 'परदा' की प्रासंगिकता और भी बढ़ गई है। चौधरी पीरबख्श का फटा हुआ परदा आज सोशल मीडिया पर बनाए गए झूठे प्रोफाइल या आर्थिक हैसियत से अधिक महंगे ब्रांड्स खरीदने की प्रवृत्ति का प्रतीक है।
2. सामंती अवशेषों का विश्लेषण: यह कहानी उन सभी समाजों के लिए प्रासंगिक है जहाँ सामंती संस्कार अभी भी जीवित हैं। कई ग्रामीण और कस्बाई क्षेत्रों में, लोग आज भी खानदान की इज्जत के नाम पर बेटियों को पढ़ने या काम करने से रोकते हैं, जिससे वे आर्थिक रूप से कमजोर रहती हैं।

3. सार्वभौमिक सत्य: कहानी का केंद्रीय संघर्ष मानवीय स्वाभिमान और परिस्थितिजन्य अपमान का है, जो किसी भी देश या काल में गरीब व्यक्ति द्वारा महसूस किया जा सकती है। पठान महाजन और चौधरी पीरबख्श का संबंध शोषक और शोषित के सार्वभौमिक रिश्ते को दर्शाता है।

'परदा' ने प्रगतिशील कहानीकारों को यह सिखाया कि प्रतीकात्मकता और निर्मम यथार्थवाद का प्रयोग करके किस प्रकार एक छोटी कहानी में गहरे सामाजिक और राजनीतिक सत्य को व्यक्त किया जा सकता है। यह कहानी हमें यह सोचने पर मजबूर करती है कि इज्जत का असली पैमाना क्या है—क्या वह बाहरी दिखावा है, या आत्मिक ईमानदारी और श्रम। यशपाल की कहानी 'परदा' प्रगतिवादी कहानी आंदोलन की कसौटी पर खरी उतरती है और हिंदी साहित्य को एक अमूल्य वैचारिक धरोहर प्रदान करती है। यह कहानी केवल एक व्यक्ति के पतन की कथा नहीं है, बल्कि पतनशील सामंती मूल्यों और बढ़ते पूंजीवादी शोषण के बीच फंसे उस मध्यवर्ग की त्रासदी है, जो न तो पुरानी इज्जत को छोड़ पाता है और न ही नई परिस्थितियों के अनुकूल संघर्ष कर पाता है। कहानी का प्रगतिशील दृष्टिकोण इस बात में निहित है कि वह गरीबी को व्यक्तिगत समस्या नहीं, बल्कि सामाजिक व्यवस्था की विकृति सिद्ध करती है। पठान महाजन के माध्यम से पूंजी की क्रूरता का चित्रण और चौधरी पीरबख्श के माध्यम से झूठी रूढ़ियों की मूर्खता का चित्रण, यशपाल की सामाजिक आलोचना का दोहरा स्तर है। 'परदा' का गिरना एक सामाजिक क्रांति का सूक्ष्म प्रतीक बन जाता है, जहाँ पुराने भ्रम और आडंबरों का अचानक अंत होता है और नंगा यथार्थ सामने आता है। यशपाल इस अंत के माध्यम से पाठकों को यह सोचने पर मजबूर करते हैं कि असली इज्जत क्या है और क्या झूठी इज्जत के परदे को फाड़कर फेंक देना ही गरीबी से मुक्ति का पहला कदम नहीं है? 'परदा' वह कहानी है जो दशकों बाद भी हमें समाज के **सबसे बड़े सत्य—गरीबी—**को बिना किसी आवरण के देखने और समझने की चुनौती देती है।

10.6 अज्ञेय

सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन 'अज्ञेय' (1911-1987) हिंदी साहित्य में प्रयोगवाद और नई कविता के जनक के रूप में प्रतिष्ठित हैं, लेकिन कहानी विधा में भी उनका

योगदान अत्यंत मौलिक और क्रांतिकारी है। उनका कथा-साहित्य, प्रेमचंद और यशपाल की सामाजिक यथार्थवादी परंपरा से पूर्णतः विच्छिन्न होकर, व्यक्ति की आंतरिक चेतना, मानव-मन की जटिलताओं और अस्तित्ववादी अलगाव पर केंद्रित है। अज्ञेय की कहानियाँ बाह्य घटनाओं के चित्रण की अपेक्षा आंतरिक मानसिक क्रियाकलापों, स्मृति-विमर्श और क्षण-बोध को महत्व देती हैं। 'गेंदा' अज्ञेय की ऐसी ही एक प्रतिनिधि रचना है, जो उनके प्रयोगधर्मी शिल्प और गहन मनोवैज्ञानिक विश्लेषण को एक सूत्र में पिरोती है। उनके नायक प्रायः अंतर्मुखी, बुद्धिजीवी और आत्म-निर्वासित होते हैं, जो समाज से कटे हुए, अपने अनुभवों को बौद्धिक फिल्टर से छानकर देखते हैं। अज्ञेय ने गद्य की उस पारंपरिक रेखा को तोड़ा, जिसमें घटनाएँ एक रैखिक क्रम में चलती थीं; उन्होंने स्मृति की अनियमितता को कहानी का आधार बनाया। उनकी शैली में संवेदना की सूक्ष्मता, अस्पष्टता और रहस्य का एक ऐसा मेल होता है जो पाठक को कहानी के अर्थ को स्वयं खोजना और निर्मित करना सिखाता है। 'गेंदा' में उन्होंने एक प्रेम संबंध की अस्थिरता और क्षणभंगुरता को एक सरल प्रतीक के माध्यम से पकड़कर, उसे एक गहरे मनोवैज्ञानिक अलगाव के बोध में रूपांतरित कर दिया है, जो आधुनिक मनुष्य की नियति बन चुका है।

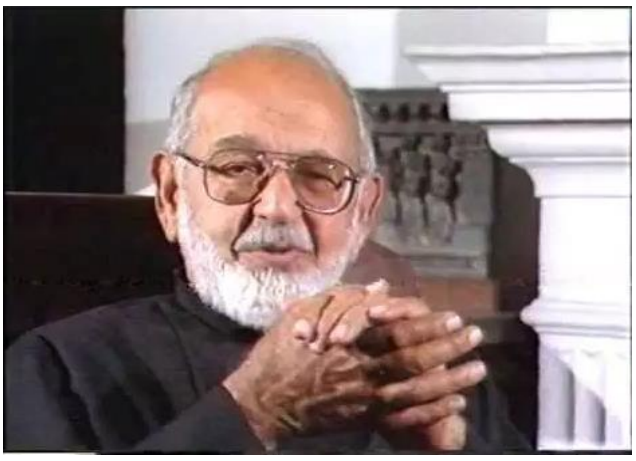

चित्र 3.4: सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन 'अज्ञेय' (1911-1987)

'गेंदा' की कथावस्तु: अनायास प्रेम और आकस्मिक विच्छेद

'गेंदा' कहानी की कथावस्तु ऊपरी तौर पर एक सरल, किंतु भावनात्मक रूप से जटिल प्रेम संबंध के चित्रण पर आधारित है, जिसका ताना-बाना अनायास मुलाकात,

संक्षिप्त साहचर्य और आकस्मिक विच्छेद के इर्द-गिर्द बुना गया है। कहानी का कथावाचक एक शिक्षित, संवेदनशील और अंतर्मुखी व्यक्ति है जो अपनी स्मृति के सहारे अपने जीवन के एक क्षणिक प्रेम प्रसंग को याद करता है। यह प्रेम कहानी, जिसका नामकरण नायिका के नाम पर 'गेंदा' किया गया है, किसी गहन सामाजिक पृष्ठभूमि या बड़े घटनाक्रम पर निर्भर नहीं करती। इसकी कथात्मक शक्ति इसकी भावनात्मक सघनता और स्मृति-चित्रों में निहित है। कथावाचक और गेंदा का संबंध किसी पूर्व-निश्चित योजना का परिणाम नहीं है, बल्कि यह जीवन की अनायासता (Accidentality of Life) से उपजा है। यह संबंध शहर की भागमभाग में एक शांत, व्यक्तिगत कोने में पलता है। कहानी में गेंदा का चरित्र रहस्यमय, अस्थिर और विरल है; उसके बारे में बहुत कम जानकारी दी गई है, मानो वह केवल नायक की आंतरिक आवश्यकता की पूर्ति के लिए मौजूद एक मनोवैज्ञानिक उपस्थिति हो। उनके मिलन के क्षण अस्थायित्व और असंतोष के बोध से घिरे हैं। कहानी की सबसे बड़ी घटना उनका अलग हो जाना है, जो किसी बड़े विवाद या संघर्ष के कारण नहीं, बल्कि जीवन की अपरिहार्य गति के कारण होता है। गेंदा चली जाती है और कथावाचक इस विच्छेद को शांत, बौद्धिक उदासीनता के साथ स्वीकार कर लेता है। कथावस्तु का यह विन्यास, जिसमें विच्छेद ही केंद्र में है, प्रेम की क्षणभंगुरता और संबंधों की भंगुरता के अज्ञेयवादी दर्शन को पुष्ट करता है। कहानी का अंत गेंदा के लौटने की किसी आशा या नायक के गहन विलाप के साथ नहीं होता, बल्कि एक स्वीकार्यता और स्मृति के बचे रहने के बोध के साथ होता है।

मनोवैज्ञानिक विश्लेषण का आधार: अंतर्मुखी नायक और स्मृति का महत्व

'गेंदा' कहानी का मूल तत्व इसकी कथावस्तु से अधिक इसके मनोवैज्ञानिक विश्लेषण में निहित है, जिसका संपूर्ण भार कथावाचक के अंतर्मुखी व्यक्तित्व और उसकी स्मृति की अनियमित क्रिया पर टिका हुआ है। कथावाचक एक अनाम, बौद्धिक और आत्म-जागरूक व्यक्ति है, जिसकी कहानी बाहरी दुनिया की घटनाओं को नहीं, बल्कि उन घटनाओं के आंतरिक मन पर पड़ने वाले प्रभावों को चित्रित करती है। यह कहानी चेतना-प्रवाह (Stream of Consciousness) शैली के निकट है, जहाँ विचार, भावनाएँ और यादें एक रैखिक क्रम में न आकर, मानसिक संगति के अनुसार प्रकट होती हैं। स्मृति इस कहानी का सबसे बड़ा उपकरण है। कथावाचक अतीत को एक क्रमानुसार

कथा के रूप में नहीं बुनता, बल्कि अतीत के क्षणों को वर्तमान में जीकर देखता है। गेंदा का पूरा अस्तित्व नायक की स्मृति की प्रयोगशाला में एक विच्छेदित बिम्ब के रूप में मौजूद है। वह उसे समग्रता में नहीं देखता, बल्कि उसके कुछ संवेदनात्मक क्षणों—जैसे उसकी मुस्कान, उसकी आवाज़, या उसके स्पर्श—को याद करता है। यह स्मृति चयन करती है, काटती है, और चीजों को एक स्वप्निल अस्पष्टता प्रदान करती है।

मनोवैज्ञानिक रूप से, नायक प्रेम को अधिकार या बंधन के रूप में नहीं देखता; उसका प्रेम अनासक्ति और साक्षी भाव से युक्त है। वह गेंदा के जाने के बाद भी शांत रहता है क्योंकि वह जानता है कि हर संबंध अस्थायी है और जीवन का सत्य अलगाव ही है। यह विश्लेषण केवल गेंदा के साथ उसके रिश्ते को नहीं समझाता, बल्कि आधुनिक व्यक्ति की विवशता को भी दर्शाता है, जहाँ भावनाओं की गहराई को बौद्धिक पृथकता (Intellectual Detachment) से मापा जाता है। नायक का अंतर्मुखी स्वभाव उसे बाहरी दुनिया से काटता है, और उसकी सारी ऊर्जा आत्म-निरीक्षण में खर्च होती है, जिससे गेंदा उसके लिए एक वास्तविक व्यक्ति से अधिक मनोवैज्ञानिक उत्तेजना का माध्यम बन जाती है।

प्रयोगधर्मी शैली का प्रयोग: फ्लैशबैक, कालखंडों का विचलन और गद्य का लचीलापन

'गेंदा' अज्ञेय की प्रयोगधर्मी शैली (Experimental Style) का एक उत्कृष्ट नमूना है, जिसका उद्देश्य कथा-शिल्प को मनुष्य की चेतना की गति के अनुरूप लचीला बनाना था। इस कहानी में पारंपरिक कहानी-कला के कई नियम तोड़े गए हैं, जिससे कहानी का रूप आधुनिक और जटिल हो जाता है।

1. कालखंडों का विचलन (Temporal Deviation): कहानी एक रैखिक कथा नहीं है। यह निरंतर फ्लैशबैक और वर्तमान चिंतन के बीच झूलती रहती है। नायक अतीत के क्षणों में प्रवेश करता है, फिर अचानक वर्तमान के एकांत में लौट आता है। यह विचलन उस प्रकार की है जिस प्रकार मानव-मन वास्तविकता में यादों को अनुभव करता है—असंगठित, अचानक और तीव्रता से। इससे कहानी में काल का भ्रम (Illusion of Time) पैदा होता है, और यह सिद्ध होता है कि अतीत केवल स्मृति में जीवित है, वर्तमान में नहीं।

2. वर्णन की अस्पष्टता (Vagueness of Description): अज्ञेय ने जानबूझकर पात्रों और स्थान का वर्णन अस्पष्ट रखा है। हमें गेंदा के जीवन या पृष्ठभूमि के बारे में बहुत कम पता चलता है, और न ही उस शहर या स्थान का स्पष्ट विवरण मिलता है जहाँ वे मिलते हैं। यह अस्पष्टता कहानी को यथार्थ के बोझ से मुक्त करती है और इसे प्रतीकात्मक या मानसिक परिदृश्य में बदल देती है।
3. गद्य का लचीलापन: अज्ञेय का गद्य काव्यात्मकता, बौद्धिकता और संवेदनशीलता का अद्‌भुत मिश्रण है। वे अक्सर लम्बे, जटिल वाक्य-विन्यास का प्रयोग करते हैं, जो किसी दार्शनिक या मनोवैज्ञानिक चिंतन की गहराई को व्यक्त करते हैं। फिर वे अचानक संक्षिप्त, तीखे वाक्य लाते हैं, जो किसी भावनात्मक क्षण को काटते हैं। यह गद्य का लचीलापन कहानी को एक लय और संगीत प्रदान करता है, जो इसे एक साधारण कहानी से उठाकर गद्य-काव्य के स्तर पर स्थापित करता है।
4. सघनता और संक्षिप्तता: प्रयोगधर्मी शिल्प घटनाओं को विस्तृत करने के बजाय उन्हें सघन करता है। पूरी कहानी केवल कुछ पृष्ठों में, एक लंबे समय अंतराल की भावनात्मक सच्चाई को पकड़ लेती है, जिससे उसकी प्रभावोत्पादकता (Effectiveness) कई गुना बढ़ जाती है।

'गेंदा' का प्रतीकवाद: क्षणभंगुरता, सौंदर्य और विवशता

कहानी का नाम और उसका केंद्रीय प्रतीक, 'गेंदा', अज्ञेय के अस्तित्ववादी दर्शन और क्षणिकता बोध को व्यक्त करने का सबसे शक्तिशाली माध्यम है। गेंदा, फूल के रूप में, कई प्रतीकात्मक अर्थों को वहन करती है:

1. क्षणिक सौंदर्य (Ephemeral Beauty): गेंदा एक ऐसा फूल है जिसका जीवनकाल छोटा होता है और जिसकी सुंदरता अस्थायी होती है। यह प्रतीक नायिका के साथ नायक के प्रेम संबंध की अल्पकालिकता और क्षणभंगुरता को दर्शाता है। जिस प्रकार गेंदे का फूल खिलकर मुरझा जाता है, उसी प्रकार उनका संबंध भी पूर्णता को प्राप्त करने से पहले ही विच्छेदित हो जाता है।
2. अनासक्ति और विवशता: गेंदा (नायिका) एक ऐसा चरित्र है जो बंधनों से मुक्त है और सहज रूप से आती-जाती है। यह उसकी विवशता को भी दर्शाता है—वह अपनी इच्छा से नहीं, बल्कि किसी अज्ञात, बाह्य शक्ति के दबाव में कहीं चली

जाती है। नायक, फूल को तोड़ने या पकड़ने की कोशिश नहीं करता; वह उसके सौंदर्य को दूर से देखकर ही संतुष्ट हो जाता है। यह अनासक्ति (Detachment) आधुनिक व्यक्ति के उस मनोवैज्ञानिक सत्य को दर्शाती है जहाँ वह जानता है कि किसी भी चीज़ को स्थायी रूप से अपनाना असंभव है।

3. संवेदनात्मकता का प्रतीक: गेंदा फूल का पीला रंग और हल्की सुगंध कहानी में एक संवेदनात्मक बिम्ब (Sensorial Imagery) का निर्माण करती है। यह प्रतीक कहानी को बौद्धिक नीरसता से बचाता है और इसमें भावनात्मक ताप भरता है। नायक की स्मृति में गेंदा का नाम और रंग ही उस पूरे संबंध की मधुर और पीड़ादायक अनुभूति को पुनर्जीवित करता है।

इस प्रकार, 'गेंदा' प्रतीक के माध्यम से अज्ञेय प्रेम की परंपरागत, स्थायी अवधारणा को चुनौती देते हैं और इसे क्षणभंगुर, अपूर्ण, किंतु गहन मानवीय अनुभव के रूप में स्थापित करते हैं। प्रतीक का प्रयोग कहानी को एक दार्शनिक गहराई प्रदान करता है, जो उसे एक सामान्य प्रेम कहानी होने से रोकता है।

स्त्री का चरित्र-चित्रण: गेंदा की अनिश्चित उपस्थिति और रहस्य

कहानी में गेंदा का चरित्र-चित्रण अज्ञेय की प्रयोगधर्मी शैली का एक और उदाहरण है, जहाँ स्त्री को संपूर्ण यथार्थ के रूप में नहीं, बल्कि आंतरिक चेतना के प्रतिबिंब के रूप में प्रस्तुत किया गया है। गेंदा एक अधूरी, अस्पष्ट और रहस्यमय उपस्थिति है। हमें उसके बारे में निम्नलिखित तथ्य मिलते हैं:

1. अपूर्णता में सुंदरता: गेंदा का चरित्र जानबूझकर अधूरा छोड़ा गया है। हम उसके अतीत, उसके परिवार, या उसके जीवन के उद्देश्य के बारे में नहीं जानते। यह अपूर्णता ही उसे काव्यात्मक और रहस्यमय बनाती है। वह नायक के मन में एक स्वप्निल आदर्श के रूप में रहती है, जिसे यथार्थ की कठोरता ने अभी तक नहीं छुआ है।
2. स्वतंत्रता और अस्थिरता: गेंदा में एक प्रकार की स्वतंत्रता है, जो उसे पारंपरिक सामाजिक बंधनों से मुक्त करती है। उसका आना और जाना अबाध है, जो उसे एक व्यक्ति से अधिक एक भावनात्मक गति (Emotional Impulse) बना देता है।

3. पुरुष की मनोवैज्ञानिक आवश्यकता: मनोवैज्ञानिक रूप से, गेंदा नायक की मानसिक आवश्यकता की पूर्ति करती है। वह उसकी एकल और नीरस दुनिया में एक संवेदनात्मक प्रवेश लाती है। नायक उसे अपने आत्म-विमर्श के लिए एक उत्प्रेरक (Catalyst) के रूप में प्रयोग करता है। गेंदा को समझने की अपेक्षा नायक स्वयं को समझने में अधिक रुचि रखता है, जिसके लिए गेंदा केवल एक संदर्भ बिंदु है।

यह चरित्र-चित्रण अज्ञेय के आधुनिक बोध को दर्शाता है, जहाँ स्त्री-पुरुष संबंध सामाजिक आवश्यकता से हटकर मनोवैज्ञानिक अनिवार्यता पर आधारित होते हैं। गेंदा एक ऐसा चरित्र है जो आता है, जीवन को छूता है, और बिना निशान छोड़े चला जाता है, लेकिन उसकी यह संक्षिप्त उपस्थिति नायक के आंतरिक परिदृश्य को हमेशा के लिए बदल देती है। उसका रहस्य कहानी की मनोवैज्ञानिक सघनता को बढ़ाता है।

प्रेम की प्रकृति का मनोवैज्ञानिक अन्वेषण: अनासक्ति और वैयक्तिक अलगाव

'गेंदा' कहानी प्रेम की प्रकृति (Nature of Love) का एक गहन मनोवैज्ञानिक अन्वेषण प्रस्तुत करती है, जो पारंपरिक रोमांटिक प्रेम की अवधारणा को पूरी तरह से नकारता है। अज्ञेय के लिए प्रेम मिलन या अधिकार नहीं, बल्कि क्षण-विशेष की अनुभूति और वैयक्तिक अलगाव (Individual Isolation) की स्वीक्रति है।

1. अनासक्त प्रेम (Detached Love): नायक का प्रेम अनासक्ति से भरा है। वह गेंदा को अपनी संपत्ति बनाने का प्रयास नहीं करता, न ही उसके जीवन में हस्तक्षेप करता है। वह जानता है कि हर व्यक्ति अपनी एकांतता में जीता है और दो लोगों का मिलन केवल एक अस्थायी अंतराल है। यह अनासक्ति, जो बौद्धिक और दार्शनिक है, प्रेम की पीड़ा को कम करती है, लेकिन उसकी गहनता को बनाए रखती है।
2. संबंधों की अपूर्णता की स्वीकृति: कहानी इस मनोवैज्ञानिक सत्य को दर्शाती है कि सभी संबंध अपूर्ण होते हैं। नायक और गेंदा का संबंध किसी चरम या परिपूर्णता तक नहीं पहुँचता; यह अधूरा ही रहता है, और नायक इस अपूर्णता को जीवन की नियति मानकर स्वीकार कर लेता है। यह स्वीकार्यता आधुनिक मनुष्य के यथार्थवादी दृष्टिकोण को दर्शाती है, जो जानता है कि पूर्णता एक भ्रम है।

3. अलगाव की अनिवार्यता: प्रेम की समाप्ति किसी संघर्ष या त्रासदी से नहीं, बल्कि सहज अलगाव से होती है। यह अलगाव न केवल कहानी का अंत है, बल्कि यह नायक के जीवन का मूल सिद्धांत भी है। मनोवैज्ञानिक रूप से, नायक पहले से ही अलगाव के लिए तैयार है। गेंदा का जाना उसके अस्तित्ववादी एकाकीपन को केवल पुष्ट करता है, उसे भंग नहीं करता।

इस प्रकार, 'गेंदा' प्रेम की प्रकृति को भावनात्मक वेग के रूप में नहीं, बल्कि दो समानांतर रेखाओं के क्षणिक स्पर्श के रूप में विश्लेषित करती है। यह मनोवैज्ञानिक अन्वेषण प्रेम को एक सहज, क्षणिक घटना बना देता है, जिसे अनुभव किया जाता है और फिर उसकी स्मृति को सहेज लिया जाता है।

भाषा और शिल्प का प्रयोगवाद: संवेदनात्मक बिम्ब और बौद्धिकता

अज्ञेय की कहानी 'गेंदा' में भाषा (Language) और शिल्प (Craft) का प्रयोगधर्मी आयाम कहानी की विषयवस्तु को गहरा करता है। उनकी भाषा की मुख्य विशेषताएँ निम्नलिखित हैं:

1. संवेदनात्मक बिम्बों का निर्माण: अज्ञेय की भाषा संवेदनात्मक (Sensorial) बिम्बों से भरी है। वे अमूर्त भावनाओं को मूर्त बनाने के लिए दृश्य, स्पर्श और ध्वनि का प्रयोग करते हैं। जैसे—गेंदा का पीला रंग, नायक के अकेलेपन का सन्नाटा, या स्मृतियों की तीक्ष्ण धार। ये बिम्ब पाठक को कहानी को केवल पढ़ने नहीं, बल्कि उसे अनुभव करने के लिए प्रेरित करते हैं।
2. बौद्धिकता का प्रभुत्व: कहानी की भाषा पर नायक की बौद्धिकता का स्पष्ट प्रभाव है। प्रेम या अलगाव जैसी गहन भावनाओं को भी वह तटस्थ, विश्लेषणात्मक और अक्सर दार्शनिक शब्दावली में व्यक्त करता है। यह बौद्धिकता कहानी को एक विचार-प्रधान आयाम देती है, जो उसे विशुद्ध भावुकता से बचाती है।
3. वाक्य-विन्यास में प्रयोग: जैसा कि पहले उल्लेख किया गया है, अज्ञेय लम्बे, घुमावदार वाक्य बनाते हैं, जिनमें उपवाक्य (Clauses) और विवरण भरे होते हैं। ये वाक्य नायक के विचारों की जटिल प्रक्रिया को दर्शाते हैं। ये वाक्य-विन्यास कहीं-कहीं पाठक के लिए चुनौतीपूर्ण होते हैं, लेकिन वे उस गद्य की लय को बनाए रखते हैं जो कवि-लेखक की विशेषता है।

4. प्रतीकात्मक और लक्षणात्मक प्रयोग: अज्ञेय शब्द के वाच्यार्थ (Literal Meaning) से अधिक उसके लक्ष्यार्थ (Implied Meaning) और ध्वन्यार्थ (Suggested Meaning) का प्रयोग करते हैं। 'गेंदा' शब्द का प्रयोग केवल नायिका के नाम के रूप में नहीं, बल्कि प्रेम की क्षणभंगुरता के प्रतीक के रूप में किया जाता है। यह लक्षणात्मक प्रयोग भाषा को साहित्यिक सघनता प्रदान करता है।

यह प्रयोगधर्मी भाषा और शिल्प, जो गद्य को काव्य की सीमा तक ले जाता है, 'गेंदा' को केवल एक कहानी नहीं, बल्कि भाषा की कलाकृति बना देता है, जहाँ अभिव्यक्ति का ढंग ही कहानी का सबसे बड़ा संदेश बन जाता है।

आधुनिकता और नियतिवाद का संघर्ष

'गेंदा' कहानी आधुनिकता (Modernity) के बोध और नियतिवाद (Fatalism) की दार्शनिक स्वीकृति के बीच के संघर्ष को दर्शाती है। अज्ञेय का कथावाचक आधुनिकता का प्रतिनिधि है: वह स्वतंत्र, बुद्धिजीवी, आत्म-केंद्रित और सामाजिक बंधनों से मुक्त है। उसके लिए जीवन का अर्थ समाज या परंपराओं में नहीं, बल्कि व्यक्तिगत अनुभवों और आत्म-सत्य की खोज में निहित है।

1. आधुनिक अलगाव (Modern Alienation): नायक का शहर में एकाकी जीवन, किसी से गहरे न जुड़ पाने की प्रवृत्ति और गेंदा के प्रति उसकी अनासक्त मुद्रा—ये सभी आधुनिक महानगरीय जीवन के अलगाव को दर्शाते हैं। यह अलगाव न केवल शारीरिक है, बल्कि भावनात्मक और दार्शनिक भी है।
2. नियतिवाद की स्वीकृति: आधुनिक होने के बावजूद, नायक अपने और गेंदा के संबंध के विच्छेद को किसी मानवीय त्रुटि या बाहरी कारण के रूप में नहीं देखता, बल्कि नियति के रूप में स्वीकार करता है। उसका शांत रहना यह दर्शाता है कि वह जानता है कि कुछ चीजें मनुष्य के नियंत्रण से बाहर होती हैं, और जीवन की अपूर्णता को स्वीकार करना ही सबसे बड़ा सत्य है। यह नियतिवाद पारंपरिक भारतीय दर्शन से भी जुड़ता है, लेकिन इसे अस्तित्ववादी अलगाव के आधुनिक संदर्भ में प्रस्तुत किया गया है।

3. स्वतंत्रता का दंभ और उसकी कीमत: आधुनिकता नायक को व्यक्तिगत स्वतंत्रता का दंभ देती है, लेकिन इस स्वतंत्रता की कीमत गहन एकाकीपन है। गेंदा के जाने के बाद वह जानता है कि उसकी यह स्वतंत्रता वास्तव में उसकी विवशता है कि वह किसी को स्थायी रूप से अपने पास नहीं रख सकता।

इस प्रकार, कहानी यह दर्शाती है कि आधुनिक मनुष्य स्वतंत्रता की खोज में तो है, लेकिन अंततः उसे जीवन के मूल नियतिवादी नियम के सामने झुकना पड़ता है कि हर सौंदर्य और हर संबंध अस्थायी है। यह संघर्ष 'गेंदा' को एक कालातीत दार्शनिक कहानी का दर्जा दिलाता है। अज्ञेय की कहानी 'गेंदा' हिंदी कथा साहित्य में एक मील का पत्थर है, जिसने कहानी की पारंपरिक परिभाषा और सीमाओं का विस्तार किया। यह कहानी केवल एक प्रेम प्रसंग का वर्णन नहीं है, बल्कि चेतना, स्मृति, अलगाव और अनासक्त प्रेम के जटिल मनोवैज्ञानिक परिदृश्य की यात्रा है। 'गेंदा' का महत्व निम्नलिखित बिन्दुओं में निहित है:

1. मनोवैज्ञानिक गहराई: यह हिंदी में मनोवैज्ञानिक यथार्थवाद को नई ऊँचाई देती है, जहाँ बाहरी दुनिया की हलचलें गौण हो जाती हैं और मनुष्य का आंतरिक सत्य ही केंद्रीय विषय बन जाता है। नायक की अंतर्मुखी मुद्रा आधुनिक व्यक्ति की अस्तित्ववादी पीड़ा और आत्म-विमर्श को दर्शाती है।
2. शिल्पगत प्रयोग: कहानी का गैर-रैखिक शिल्प, कालखंडों का विचलन और प्रतीकात्मक भाषा ने कहानीकारों की भावी पीढ़ी को गद्य के साथ नए प्रयोग करने की प्रेरणा दी।
3. प्रेम की आधुनिक परिभाषा: 'गेंदा' प्रेम को स्थायित्व की माँग से मुक्त करके, उसे क्षणभंगुर, आत्म-शोधक अनुभव के रूप में प्रस्तुत करती है। गेंदा का प्रतीक यह स्थापित करता है कि जीवन का सार अपूर्णता में है, जिसे स्वीकार करने में ही असली मानवीय गरिमा है।

'गेंदा' अज्ञेय के रचनात्मक दर्शन का सार प्रस्तुत करती है: जीवन एक क्षणिक सुंदर फूल के समान है जिसे हम केवल छू सकते हैं, अपना बना नहीं सकते। नायक का शांत स्वीकार इस बात का प्रमाण है कि आत्म-सत्य की खोज ही जीवन का अंतिम

लक्ष्य है, और इस सत्य की प्राप्ति बाह्य मिलन में नहीं, बल्कि आंतरिक एकांत और उदासीन स्वीकार्यता में संभव है।

10.7 मोहन राकेश

मोहन राकेश हिंदी साहित्य के उन महत्वपूर्ण रचनाकारों में से हैं जिन्होंने नई कहानी आंदोलन को एक सुदृढ़ और प्रभावशाली दिशा प्रदान की। उनका जन्म 8 जनवरी 1925 को अमृतसर में हुआ था और उनका निधन 3 जनवरी 1972 को दिल्ली में हुआ। अपने अल्प जीवनकाल में ही मोहन राकेश ने हिंदी साहित्य को ऐसी कहानियाँ और नाटक दिए जो आज भी प्रासंगिक और महत्वपूर्ण माने जाते हैं। उनकी कहानियों में समकालीन जीवन की जटिलताओं, मध्यवर्गीय मानसिकता की विसंगतियों और आधुनिक मनुष्य के अकेलेपन का बड़ा ही सूक्ष्म और प्रभावशाली चित्रण मिलता है।

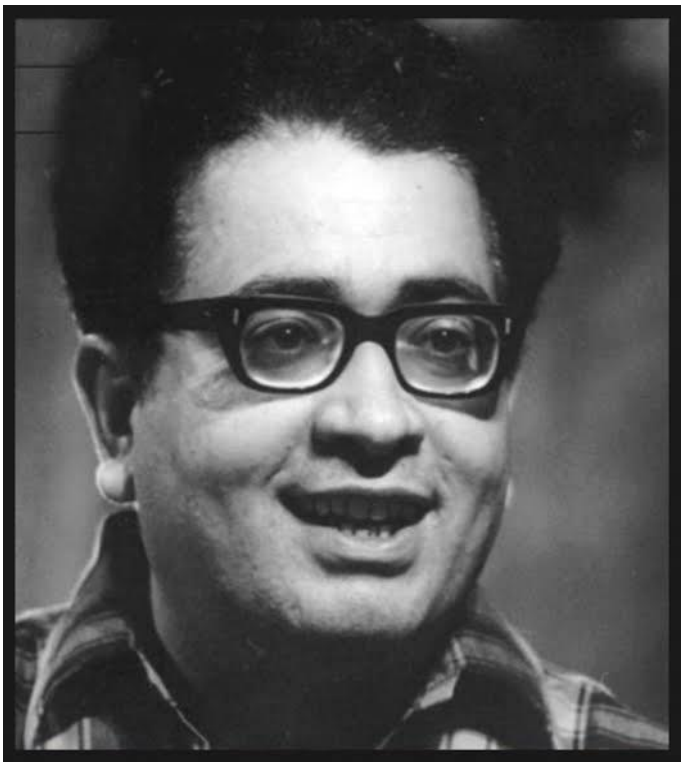

3.5: मोहन राकेश

नई कहानी आंदोलन के संदर्भ में मोहन राकेश का नाम सबसे प्रमुख रूप से लिया जाता है। नई कहानी का उदय 1950 के दशक में हुआ था, जब भारतीय समाज स्वतंत्रता के बाद नए सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक परिवर्तनों से गुजर रहा था।

इस दौर में पुरानी कहानी की शैली और विषयवस्तु अपर्याप्त लगने लगी थी। नई कहानी ने आदर्शवाद और भावुकता से हटकर यथार्थ और मानवीय संवेदना को केंद्र में रखा। मोहन राकेश ने इस आंदोलन को अपनी कहानियों के माध्यम से एक विशिष्ट पहचान दी। उनकी कहानियाँ मात्र घटनाओं का वर्णन नहीं करतीं, बल्कि मानवीय मनोविज्ञान की गहराइयों में उतरती हैं और पात्रों के आंतरिक संघर्षों को उजागर करती हैं। मोहन राकेश की कहानियों की सबसे बड़ी विशेषता उनकी भाषा और शिल्प है। उनकी भाषा सरल, सहज और प्रभावशाली है, जो पाठक को सीधे पात्रों के मन तक पहुँचा देती है। उन्होंने अपनी कहानियों में कथानक को जटिल बनाने के बजाय पात्रों की मनःस्थिति और उनके आंतरिक द्वंद्व को महत्व दिया। यह नई कहानी की केंद्रीय विशेषता थी, जिसे मोहन राकेश ने बड़ी कुशलता से साधा। उनकी कहानियों में आधुनिक जीवन की विडंबनाएँ, संबंधों की जटिलताएँ और व्यक्ति के अकेलेपन का मार्मिक चित्रण मिलता है।

नई संवेदना

मोहन राकेश की कहानियों में जो नई संवेदना दिखाई देती है, वह स्वतंत्रता के बाद के भारतीय समाज की वास्तविक तस्वीर को प्रस्तुत करती है। नई संवेदना का अर्थ है समकालीन जीवन की जटिलताओं, अंतर्विरोधों और मनुष्य की आंतरिक उलझनों को सूक्ष्मता से पकड़ना। स्वतंत्रता के बाद भारतीय समाज में तेजी से परिवर्तन हो रहे थे। पुरानी मान्यताएँ और परंपराएँ नई आधुनिक जीवनशैली से टकरा रही थीं। इस संघर्ष ने एक नई प्रकार की संवेदना को जन्म दिया, जिसे मोहन राकेश ने अपनी कहानियों में बड़ी सहजता से व्यक्त किया। मोहन राकेश की नई संवेदना का एक महत्वपूर्ण पहलू है अकेलेपन और अलगाव की भावना। आधुनिक नगरीय जीवन में व्यक्ति भीड़ में भी अकेला है। पारिवारिक और सामाजिक संबंध औपचारिक होते जा रहे हैं। मोहन राकेश की कहानियों में यह अकेलापन बार-बार उभरकर आता है। उनके पात्र अक्सर ऐसी स्थिति में होते हैं जहाँ वे दूसरों से घिरे होने के बावजूद अपने आप में कैद हैं। यह अकेलापन बाहरी नहीं, बल्कि आंतरिक है। यह मानसिक अलगाव आधुनिक जीवन की एक बड़ी समस्या है, जिसे मोहन राकेश ने बड़ी संवेदनशीलता से उठाया। उनकी कहानी "मलबे का मालिक" में इस अकेलेपन और अलगाव का बहुत सूक्ष्म चित्रण है। कहानी का मुख्य पात्र एक ऐसा व्यक्ति है जो शहर में रहते हुए भी अपने

अतीत से जुड़े मलबे का मालिक बना रहना चाहता है। वह न तो पूरी तरह से वर्तमान में जी पाता है और न ही अतीत को छोड़ पाता है। यह द्वंद्व आधुनिक मनुष्य की एक बड़ी समस्या है। मोहन राकेश ने इस कहानी के माध्यम से यह दिखाया कि व्यक्ति कैसे अपने अतीत के मलबे के नीचे दबा रहता है और वर्तमान को पूरी तरह से जी नहीं पाता। नई संवेदना का एक और महत्वपूर्ण पहलू है संबंधों की जटिलता। मोहन राकेश की कहानियों में पति-पत्नी, प्रेमी-प्रेमिका, माता-पिता और संतान के बीच के संबंध सरल और सीधे नहीं हैं। इन संबंधों में गहरी जटिलताएँ हैं, जिन्हें समझना आसान नहीं है। मोहन राकेश ने यह दिखाया कि आधुनिक जीवन में संबंध केवल भावनाओं पर आधारित नहीं होते, बल्कि उनमें मानसिक, सामाजिक और आर्थिक कारक भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

उनकी कहानी "नीली रोशनी की बाहें" में स्त्री-पुरुष संबंधों की जटिलता को बड़ी गहराई से दर्शाया गया है। कहानी में एक स्त्री और पुरुष के बीच का संबंध केवल शारीरिक या भावनात्मक नहीं है, बल्कि उसमें मानसिक अंतर्द्वंद्व भी है। दोनों पात्र एक-दूसरे के प्रति आकर्षित हैं, लेकिन साथ ही उनके मन में संशय, भय और असुरक्षा की भावनाएँ भी हैं। यह जटिलता आधुनिक संबंधों की विशेषता है, जिसे मोहन राकेश ने बड़ी संवेदनशीलता से पकड़ा। मोहन राकेश की नई संवेदना में आधुनिकता और परंपरा का संघर्ष भी महत्वपूर्ण है। उनकी कहानियों में ऐसे पात्र मिलते हैं जो पारंपरिक मूल्यों और आधुनिक जीवनशैली के बीच फंसे हुए हैं। वे न तो पूरी तरह से पुरानी मान्यताओं को छोड़ पाते हैं और न ही नई व्यवस्था को पूरी तरह से अपना पाते हैं। यह द्वंद्व उनके जीवन को जटिल और कठिन बना देता है। मोहन राकेश ने इस संघर्ष को बड़ी बारीकी से चित्रित किया है। नई संवेदना का एक और महत्वपूर्ण पक्ष है यथार्थ का सूक्ष्म चित्रण। मोहन राकेश की कहानियों में यथार्थ को किसी भी प्रकार के भावुकतापूर्ण या आदर्शवादी आवरण से नहीं ढका गया है। उन्होंने जीवन को जैसा है वैसा ही दिखाया है, उसकी कड़वाहट और विसंगतियों के साथ। उनकी कहानियों में कोई काल्पनिक खुशहाली या आदर्श समाधान नहीं मिलता। यह यथार्थवादी दृष्टिकोण नई कहानी की एक प्रमुख विशेषता है, जिसे मोहन राकेश ने अपनी कहानियों में पूरी ईमानदारी से प्रस्तुत किया। मोहन राकेश की नई संवेदना में समय का बोध भी बहुत महत्वपूर्ण है। उनकी कहानियों में अतीत, वर्तमान और भविष्य एक-दूसरे से जुड़े हुए

हैं। पात्रों का वर्तमान उनके अतीत से प्रभावित होता है और भविष्य की चिंताएँ उन्हें वर्तमान में भी परेशान करती हैं। यह समय का बहुस्तरीय बोध आधुनिक कहानी की एक महत्वपूर्ण विशेषता है। मोहन राकेश ने अपनी कहानियों में इस समय-बोध को बड़ी कुशलता से साधा है। उनके पात्र अक्सर अतीत की स्मृतियों में खोए हुए मिलते हैं या भविष्य की अनिश्चितता से घबराए हुए दिखाई देते हैं।

मध्यवर्गीय जीवन

मोहन राकेश की कहानियों का मुख्य केंद्र मध्यवर्गीय जीवन है। स्वतंत्रता के बाद भारत में मध्यवर्ग का तेजी से विस्तार हुआ। यह वर्ग शिक्षित था, आकांक्षाओं से भरा था, लेकिन साथ ही आर्थिक और सामाजिक सीमाओं से जकड़ा हुआ भी था। मोहन राकेश ने इस वर्ग की मानसिकता, उसकी आकांक्षाओं, उसकी विडंबनाओं और उसके संघर्षों को अपनी कहानियों का विषय बनाया। उनकी कहानियों में मध्यवर्ग केवल एक सामाजिक वर्ग नहीं है, बल्कि एक विशेष मानसिकता और जीवन-दृष्टि का प्रतिनिधित्व करता है। मध्यवर्गीय जीवन की सबसे बड़ी विशेषता है आर्थिक असुरक्षा। मध्यवर्ग न तो इतना समृद्ध है कि वह बिना चिंता के जी सके और न ही इतना निर्धन कि उसे रोज की रोटी की चिंता हो। वह एक ऐसी स्थिति में है जहाँ उसे लगातार अपनी आर्थिक स्थिति को बनाए रखने के लिए संघर्ष करना पड़ता है। मोहन राकेश की कहानियों में यह आर्थिक चिंता बार-बार उभरकर आती है। उनके पात्र अक्सर आर्थिक दबावों से जूझते हुए दिखाई देते हैं। यह दबाव केवल आर्थिक नहीं होता, बल्कि यह उनकी मानसिकता, उनके संबंधों और उनके जीवन के फैसलों को भी प्रभावित करता है। मध्यवर्ग की एक और बड़ी विशेषता है उसकी सामाजिक प्रतिष्ठा की चिंता। मध्यवर्गीय व्यक्ति के लिए समाज में प्रतिष्ठा बहुत महत्वपूर्ण होती है। वह क्या पहनता है, कैसा घर है, बच्चे कहाँ पढ़ते हैं, ये सब बातें उसकी सामाजिक प्रतिष्ठा से जुड़ी होती हैं। मोहन राकेश ने अपनी कहानियों में इस मानसिकता को बड़ी बारीकी से दर्शाया है। उनके पात्र अक्सर समाज में अपनी इज्जत बचाने के लिए संघर्ष करते हैं। यह संघर्ष कभी-कभी उन्हें झूठ, दिखावा और पाखंड की ओर भी ले जाता है।

मोहन राकेश की कहानियों में मध्यवर्गीय परिवार का चित्रण बहुत यथार्थपरक है। उनकी कहानियों में परिवार एक आदर्श संस्था नहीं है, बल्कि एक ऐसी जगह है जहाँ तनाव, अंतर्विरोध और संघर्ष भी होते हैं। पति-पत्नी के बीच मानसिक दूरी, माता-पिता और संतान के बीच की खाई, भाई-बहनों के बीच की प्रतिद्वंद्विता – ये सब मध्यवर्गीय परिवार की वास्तविकताएँ हैं जिन्हें मोहन राकेश ने अपनी कहानियों में दिखाया है। उन्होंने यह नहीं दिखाया कि परिवार हमेशा प्रेम और सौहार्द्र का स्थान है, बल्कि यह भी दिखाया कि परिवार में कैसे व्यक्तिगत महत्वाकांक्षाएँ, स्वार्थ और अहंकार भी काम करते हैं। मध्यवर्गीय नारी की समस्याएँ भी मोहन राकेश की कहानियों में महत्वपूर्ण स्थान रखती हैं। मध्यवर्गीय स्त्री शिक्षित होती है, उसमें आकांक्षाएँ होती हैं, लेकिन सामाजिक और पारिवारिक परिस्थितियाँ उसे अपनी आकांक्षाओं को पूरा करने से रोकती हैं। मोहन राकेश ने मध्यवर्गीय स्त्री के इस द्वंद्व को अपनी कहानियों में बड़ी संवेदनशीलता से उठाया है। उनकी कहानियों की स्त्री पात्र केवल पीड़िता नहीं हैं, बल्कि उनमें विरोध और विद्रोह की भावना भी है। वे अपनी स्थिति से असंतुष्ट हैं और उससे मुक्ति चाहती हैं।

मोहन राकेश की कहानियों में मध्यवर्गीय युवा पीढ़ी की समस्याएँ भी बड़ी प्रमुखता से उभरी हैं। स्वतंत्रता के बाद की युवा पीढ़ी नए सपने देखती थी, नई आकांक्षाएँ रखती थी। लेकिन सामाजिक यथार्थ उन आकांक्षाओं को पूरा करने में बाधा बनता था। मोहन राकेश ने इस पीढ़ी के मोहभंग, निराशा और विद्रोह को अपनी कहानियों में चित्रित किया है। उनकी कहानियों के युवा पात्र अक्सर भटकाव, असमंजस और विद्रोह की स्थिति में होते हैं। वे पुरानी व्यवस्था को नकारते हैं, लेकिन नई व्यवस्था में भी उन्हें अपनी जगह नहीं मिलती। मध्यवर्गीय जीवन का एक महत्वपूर्ण पहलू है शहरीकरण और उससे उत्पन्न समस्याएँ। मोहन राकेश की अधिकांश कहानियाँ शहरी परिवेश में घटित होती हैं। शहर में रहना मध्यवर्ग की आकांक्षा होती है, लेकिन शहरी जीवन अपने साथ कई समस्याएँ भी लाता है। भीड़भाड़, प्रतिस्पर्धा, अकेलापन, असुरक्षा – ये सब शहरी जीवन की विशेषताएँ हैं। मोहन राकेश ने अपनी कहानियों में शहरी जीवन की इन जटिलताओं को बड़ी बारीकी से दर्शाया है। उनके पात्र अक्सर शहर में रहते हुए भी उसमें खुद को अजनबी महसूस करते हैं।

मध्यवर्गीय मानसिकता की एक और विशेषता है रूढ़िवादिता और आधुनिकता का अजीब मिश्रण। मध्यवर्ग बाहर से आधुनिक दिखना चाहता है, लेकिन भीतर से वह अक्सर पुरानी मान्यताओं से जकड़ा होता है। यह दोहरापन मध्यवर्गीय जीवन की एक बड़ी विडंबना है। मोहन राकेश ने इस दोहरेपन को अपनी कहानियों में बड़ी प्रभावशालिता से दिखाया है। उनके पात्र अक्सर बाहर कुछ और दिखते हैं, लेकिन भीतर से कुछ और होते हैं। यह बाहरी और भीतरी व्यक्तित्व का अंतर मध्यवर्ग की एक बड़ी विशेषता है। मध्यवर्गीय जीवन में शिक्षा का बहुत महत्व होता है। मध्यवर्ग अपने बच्चों की शिक्षा पर बहुत जोर देता है क्योंकि वह शिक्षा को सामाजिक उन्नति का माध्यम मानता है। लेकिन मोहन राकेश ने यह भी दिखाया कि कैसे शिक्षा भी एक दबाव बन जाती है। माता-पिता की अपेक्षाएँ, समाज का दबाव, प्रतिस्पर्धा – ये सब शिक्षा को एक बोझ बना देते हैं। मोहन राकेश की कुछ कहानियों में शिक्षा और करियर से जुड़े दबाव और उससे उत्पन्न समस्याओं का चित्रण मिलता है।

मनोवैज्ञानिक द्वंद्व

मोहन राकेश की कहानियों की सबसे बड़ी विशेषता है उनमें चित्रित मनोवैज्ञानिक द्वंद्व। नई कहानी ने बाहरी घटनाओं के स्थान पर पात्रों के भीतरी जगत को महत्व दिया। मोहन राकेश इस दिशा में अग्रणी रचनाकार थे। उनकी कहानियों में पात्रों के मन में चलने वाले संघर्ष, उनके अंतर्विरोध और उनकी मानसिक उलझनें बहुत महत्वपूर्ण होती हैं। यह मनोवैज्ञानिक द्वंद्व केवल व्यक्तिगत नहीं होता, बल्कि यह सामाजिक परिस्थितियों से भी उत्पन्न होता है। मनोवैज्ञानिक द्वंद्व का सबसे महत्वपूर्ण रूप है व्यक्ति का अपने आप से संघर्ष। मोहन राकेश के पात्र अक्सर अपने ही मन में उलझे हुए होते हैं। वे कुछ करना चाहते हैं, लेकिन कर नहीं पाते। वे किसी बात को मानना नहीं चाहते, लेकिन मानने को मजबूर हो जाते हैं। यह आंतरिक संघर्ष उन्हें बेचैन और परेशान करता है। मोहन राकेश ने इस आंतरिक द्वंद्व को बड़ी सूक्ष्मता से चित्रित किया है। उनके पात्रों में निर्णय लेने की क्षमता में कमी दिखाई देती है। वे किसी एक दिशा में नहीं चल पाते, बल्कि दो या अधिक दिशाओं के बीच झूलते रहते हैं। मोहन राकेश की कहानियों में अतीत और वर्तमान के बीच का द्वंद्व भी बहुत महत्वपूर्ण है। उनके पात्र अक्सर अतीत की स्मृतियों में जीते हैं। अतीत उनके लिए एक सुरक्षित और सुखद स्थान है, जबकि वर्तमान कठोर और कठिन है। लेकिन

अतीत में जीने का अर्थ है वर्तमान से पलायन, जो व्यक्ति को और अधिक समस्याओं में डाल देता है। मोहन राकेश ने इस द्वंद्व को बड़ी संवेदनशीलता से उठाया है। उनके पात्र न तो अतीत को भुला पाते हैं और न ही वर्तमान में पूरी तरह से जी पाते हैं। यह मानसिक विभाजन उन्हें भीतर से तोड़ देता है।

इच्छा और कर्तव्य के बीच का द्वंद्व भी मोहन राकेश की कहानियों में प्रमुखता से आता है। मध्यवर्गीय व्यक्ति के जीवन में सामाजिक और पारिवारिक कर्तव्य बहुत महत्वपूर्ण होते हैं। लेकिन इन कर्तव्यों के निर्वाह में उसकी व्यक्तिगत इच्छाएँ और आकांक्षाएँ कुचल जाती हैं। मोहन राकेश ने इस द्वंद्व को अपनी कई कहानियों में दर्शाया है। उनके पात्र अपनी इच्छाओं को पूरा करना चाहते हैं, लेकिन सामाजिक और पारिवारिक दबाव उन्हें ऐसा करने से रोकते हैं। यह द्वंद्व उन्हें भीतर से खोखला कर देता है। मोहन राकेश की कहानियों में प्रेम और विवाह के बीच का द्वंद्व भी महत्वपूर्ण है। उनकी कहानियों में प्रेम और विवाह को दो अलग-अलग चीजों के रूप में दिखाया गया है। प्रेम भावनात्मक होता है, स्वतंत्र होता है, जबकि विवाह एक सामाजिक संस्था है, जिसमें बंधन और जिम्मेदारियाँ होती हैं। मोहन राकेश ने यह दिखाया कि कैसे प्रेम विवाह में बदलने के बाद अपनी मूल भावना खो देता है। विवाह में भावनाओं की जगह दैनिक जीवन की छोटी-छोटी जिम्मेदारियाँ और तनाव ले लेते हैं। यह द्वंद्व उनकी कहानियों के पात्रों को परेशान करता है।

मोहन राकेश की कहानियों में पुरुष और स्त्री दोनों के मनोवैज्ञानिक द्वंद्व को समान रूप से महत्व दिया गया है। उनकी कहानियों में स्त्री पात्र केवल पीड़ित नहीं हैं, बल्कि उनके भीतर भी गहरे द्वंद्व चलते रहते हैं। वे परंपरागत स्त्री की भूमिका से मुक्त होना चाहती हैं, लेकिन साथ ही सामाजिक सुरक्षा भी चाहती हैं। वे स्वतंत्र होना चाहती हैं, लेकिन अकेलेपन से भी डरती हैं। मोहन राकेश ने स्त्री मन के इस द्वंद्व को बड़ी संवेदनशीलता से चित्रित किया है। उनकी स्त्री पात्र न तो पूरी तरह से परंपरागत हैं और न ही पूरी तरह से आधुनिक। वे दोनों के बीच में हैं, जो उनके लिए एक कठिन स्थिति है। मोहन राकेश की कहानियों में संवाद और मौन के बीच का द्वंद्व भी दिखाई देता है। उनके पात्र बहुत कुछ कहना चाहते हैं, लेकिन कह नहीं पाते। कभी शब्द नहीं मिलते, कभी साहस नहीं होता, कभी परिस्थितियाँ अनुकूल नहीं होतीं। यह अनकहा रह जाना, यह मौन, पात्रों के भीतर घुटन पैदा करता है। मोहन राकेश ने इस मानसिक

घुटन को बड़ी कुशलता से व्यक्त किया है। उनकी कहानियों में जो नहीं कहा गया है, वह अक्सर जो कहा गया है उससे अधिक महत्वपूर्ण होता है। यह मौन का प्रयोग उनकी कहानियों को गहराई और अर्थवत्ता प्रदान करता है। मनोवैज्ञानिक द्वंद्व का एक और रूप है असुरक्षा की भावना। मोहन राकेश के पात्र अक्सर असुरक्षित महसूस करते हैं। यह असुरक्षा केवल आर्थिक नहीं होती, बल्कि भावनात्मक और मानसिक भी होती है। वे नहीं जानते कि भविष्य में क्या होगा, उनके संबंध कैसे रहेंगे, उनकी स्थिति क्या होगी। यह अनिश्चितता उन्हें भीतर से कमजोर करती है। मोहन राकेश ने आधुनिक जीवन की इस असुरक्षा को अपनी कहानियों में बड़ी प्रभावशाली ढंग से दर्शाया है। उनके पात्र लगातार किसी न किसी भय से ग्रस्त रहते हैं।

पहचान का संकट भी मोहन राकेश की कहानियों में एक महत्वपूर्ण मनोवैज्ञानिक द्वंद्व है। उनके पात्र अक्सर यह नहीं जानते कि वे वास्तव में कौन हैं। वे दूसरों की अपेक्षाओं के अनुसार जीते हैं, समाज की मांगों को पूरा करते हैं, लेकिन इस प्रक्रिया में अपने वास्तविक स्व को खो देते हैं। यह पहचान का संकट आधुनिक मनुष्य की एक बड़ी समस्या है, जिसे मोहन राकेश ने अपनी कहानियों में उठाया है। उनके पात्र अपने आप को खोजने का प्रयास करते हैं, लेकिन यह खोज अक्सर असफल रहती है। मोहन राकेश की कहानियों में अपराधबोध भी एक महत्वपूर्ण मनोवैज्ञानिक तत्व है। उनके पात्र अक्सर किसी न किसी अपराधबोध से ग्रस्त होते हैं। कभी उन्होंने कोई गलती की है, कभी किसी की अपेक्षा पर खरा नहीं उतर पाए हैं, कभी कोई कर्तव्य पूरा नहीं कर पाए हैं। यह अपराधबोध उन्हें भीतर से कमजोर करता है और उनके निर्णय लेने की क्षमता को प्रभावित करता है। मोहन राकेश ने मध्यवर्गीय मानसिकता में गहरे बैठे इस अपराधबोध को बड़ी सूक्ष्मता से पकड़ा है। मोहन राकेश की कहानियों में दिखाया गया मनोवैज्ञानिक द्वंद्व केवल व्यक्तिगत नहीं है, बल्कि यह सामाजिक और सांस्कृतिक परिस्थितियों से भी उत्पन्न होता है। स्वतंत्रता के बाद का भारतीय समाज तेजी से बदल रहा था। पुराने मूल्य टूट रहे थे और नए मूल्य अभी पूरी तरह से स्थापित नहीं हुए थे। यह संक्रमण काल व्यक्ति के लिए बहुत कठिन होता है। मोहन राकेश ने इस संक्रमण काल के मनोवैज्ञानिक प्रभावों को अपनी कहानियों में दर्शाया है। उनके पात्र न तो पूरी तरह से पुराने हैं और न ही पूरी तरह से नए। वे दोनों के बीच में हैं, जो एक कठिन और पीड़ादायक स्थिति है।

10.8 कमलेश्वर: राजा निरबंसिया

कमलेश्वर हिंदी साहित्य के उन महान कथाकारों में से एक हैं जिन्होंने नई कहानी आंदोलन को एक नई दिशा और ऊर्जा प्रदान की। उनका जन्म 6 जनवरी 1932 को उत्तर प्रदेश के मैनपुरी जिले में हुआ था और निधन 27 जनवरी 2007 को हुआ। कमलेश्वर ने अपने साहित्यिक जीवन में सैकड़ों कहानियाँ, उपन्यास, नाटक और पटकथाएँ लिखीं। वे न केवल एक सशक्त कथाकार थे, बल्कि एक प्रभावशाली संपादक और पत्रकार भी थे। उन्होंने 'सारिका' और 'धर्मयुग' जैसी प्रतिष्ठित पत्रिकाओं का संपादन किया और हिंदी साहित्य को एक नई दिशा दी। कमलेश्वर की रचनाओं में सामाजिक यथार्थ, राजनीतिक व्यंग्य और मानवीय संवेदना का अद्‌भुत समन्वय मिलता है। उन्होंने अपनी कहानियों में समाज की विसंगतियों, राजनीतिक भ्रष्टाचार और सामान्य जन की समस्याओं को बड़ी ईमानदारी और साहस के साथ उठाया। उनकी भाषा सरल, सीधी और प्रभावशाली है। वे जटिल विषयों को भी इतनी सहजता से प्रस्तुत करते हैं कि पाठक उनसे सहज रूप से जुड़ जाता है। कमलेश्वर की कहानियाँ केवल मनोरंजन के लिए नहीं हैं, बल्कि वे पाठक को सोचने और समाज के बारे में सजग होने के लिए प्रेरित करती हैं।

"राजा निरबंसिया" कमलेश्वर की सबसे प्रसिद्ध और महत्वपूर्ण कहानियों में से एक है। यह कहानी भारतीय राजनीति की विसंगतियों, सामाजिक पाखंड और मध्यवर्गीय जीवन की त्रासदी का एक मार्मिक चित्रण है। कहानी की भाषा सरल और सीधी है, लेकिन इसका प्रभाव बहुत गहरा है। कमलेश्वर ने इस कहानी के माध्यम से भारतीय समाज और राजनीति की जिन विसंगतियों को उजागर किया है, वे आज भी प्रासंगिक हैं। यह कहानी केवल एक कहानी नहीं है, बल्कि एक सामाजिक और राजनीतिक दस्तावेज भी है।

कथावस्तु

"राजा निरबंसिया" की कथावस्तु बहुत ही सरल लेकिन प्रभावशाली है। कहानी एक साधारण मध्यवर्गीय व्यक्ति की है जो अपने दैनिक जीवन में कई समस्याओं से जूझ रहा है। वह एक छोटी-सी नौकरी करता है, उसका परिवार है, और उसे अपने परिवार का पालन-पोषण करना है। लेकिन उसकी आर्थिक स्थिति इतनी अच्छी नहीं है कि वह

अपने परिवार को सभी सुविधाएँ उपलब्ध करा सके। वह लगातार आर्थिक दबाव में रहता है और हमेशा यह चिंता बनी रहती है कि वह अपने परिवार की जरूरतों को कैसे पूरा करेगा। कहानी का केंद्रीय बिंदु है एक चुनावी समारोह। एक राजनेता अपने चुनाव प्रचार के लिए उस क्षेत्र में आता है जहाँ कहानी का नायक रहता है। राजनेता के आगमन से पूरा क्षेत्र गुलजार हो जाता है। बड़े-बड़े पोस्टर लगाए जाते हैं, सभाएँ की जाती हैं, और लोगों को मुफ्त भोजन और मनोरंजन की सुविधा दी जाती है। इस पूरे प्रचार में बहुत पैसा खर्च किया जाता है। राजनेता जनता को कई बड़े-बड़े वायदे करता है – बिजली, पानी, सड़क, अस्पताल, स्कूल – सबकुछ।

कहानी का नायक इस पूरे तमाशे को देखता है। उसे यह सब बहुत अजीब लगता है। वह सोचता है कि जो राजनेता इतना पैसा चुनाव प्रचार पर खर्च कर सकता है, वह अगर सीधे लोगों की मदद करे तो कितने लोगों का भला हो सकता है। लेकिन राजनेता का उद्देश्य लोगों की सेवा करना नहीं है, बल्कि सत्ता प्राप्त करना है। यह विडंबना कहानी के नायक को बहुत परेशान करती है। चुनाव के दिन नायक वोट डालने जाता है। वहाँ उसे राजनेता की ओर से भेजे गए लोग मिलते हैं जो उसे रुपये देकर अपने उम्मीदवार को वोट देने के लिए कहते हैं। यह देखकर नायक को बहुत गुस्सा आता है। वह सोचता है कि क्या लोकतंत्र में वोट खरीदे और बेचे जाते हैं? क्या चुनाव एक बाजार बन गया है जहाँ सबकुछ पैसे से खरीदा जा सकता है? लेकिन साथ ही वह यह भी सोचता है कि वह खुद तो इतना गरीब है कि उसे अपने परिवार की छोटी-छोटी जरूरतें भी पूरी करने में कठिनाई होती है। ऐसे में अगर कोई उसे पैसे दे रहा है, तो क्या उसे नहीं लेने चाहिए?

यहीं पर कहानी का मुख्य द्वंद्व सामने आता है। नायक एक ईमानदार और सिद्धांतवादी व्यक्ति है। वह जानता है कि वोट बेचना गलत है, लेकिन उसकी आर्थिक मजबूरी उसे इस गलत काम की ओर धकेलती है। यह द्वंद्व केवल नायक का नहीं है, बल्कि पूरे मध्यवर्ग का है। मध्यवर्ग सिद्धांतों और मूल्यों में विश्वास करता है, लेकिन जब आर्थिक दबाव आता है तो वह अपने सिद्धांतों से समझौता करने के लिए मजबूर हो जाता है। अंततः नायक वह पैसा नहीं लेता और अपनी इच्छा से वोट देता है। लेकिन चुनाव के परिणाम आने पर वही राजनेता जीत जाता है जिसने सबसे ज्यादा पैसा खर्च किया था। नायक को लगता है कि उसके एक ईमानदार वोट से कोई फर्क

नहीं पड़ा। जो व्यवस्था इतनी भ्रष्ट हो गई है, उसमें एक ईमानदार व्यक्ति का क्या महत्व? यह निराशा और मोहभंग कहानी के अंत में गहराई से दिखाई देता है। कहानी के शीर्षक "राजा निरबंसिया" का भी गहरा अर्थ है। "निरबंसिया" का अर्थ है निःसंतान। इस शीर्षक के माध्यम से कमलेश्वर यह कहना चाहते हैं कि जो राजनेता सत्ता में आते हैं, वे जनता को अपनी संतान की तरह नहीं समझते। उनके लिए जनता केवल वोट देने वाली एक भीड़ है। वे जनता के प्रति कोई जिम्मेदारी महसूस नहीं करते। उनका एकमात्र उद्देश्य सत्ता प्राप्त करना और उसे बनाए रखना है। यह शीर्षक भारतीय राजनीति की कड़वी सच्चाई को उजागर करता है। कहानी की कथावस्तु में कोई बड़ी घटना या नाटकीयता नहीं है। यह एक साधारण व्यक्ति की साधारण जिंदगी की कहानी है। लेकिन इसी साधारणता में इसकी असाधारणता छिपी है। कमलेश्वर ने यह दिखाया है कि कैसे राजनीतिक भ्रष्टाचार और सामाजिक विसंगतियाँ एक साधारण व्यक्ति के जीवन को प्रभावित करती हैं। कहानी का हर पात्र, हर घटना हमारे आसपास के जीवन से ली गई लगती है। इस यथार्थवादी चित्रण ने कहानी को बहुत प्रभावशाली बना दिया है।

सामाजिक यथार्थ

"राजा निरबंसिया" में कमलेश्वर ने भारतीय समाज के यथार्थ को बड़ी ईमानदारी और साहस के साथ प्रस्तुत किया है। कहानी स्वतंत्रता के बाद के भारत की तस्वीर दिखाती है, जहाँ लोकतंत्र तो है, लेकिन वह भ्रष्टाचार और पाखंड से ग्रस्त है। कमलेश्वर ने उन सामाजिक विसंगतियों को उजागर किया है जो स्वतंत्रता के बाद भारतीय समाज में पनपीं। कहानी में सबसे पहला सामाजिक यथार्थ है आर्थिक असमानता। एक ओर वे राजनेता हैं जो चुनाव प्रचार पर लाखों रुपये खर्च कर सकते हैं, और दूसरी ओर वे गरीब और मध्यवर्गीय लोग हैं जो अपनी रोजमर्रा की जरूरतों को पूरा करने के लिए संघर्ष कर रहे हैं। यह आर्थिक असमानता भारतीय समाज की एक बड़ी समस्या है। कमलेश्वर ने यह दिखाया कि कैसे यह असमानता लोकतांत्रिक व्यवस्था को भी प्रभावित करती है। जिसके पास पैसा है, वह चुनाव जीत सकता है, चाहे वह कितना भी अयोग्य हो। कहानी में दूसरा महत्वपूर्ण सामाजिक यथार्थ है मध्यवर्ग की विवशता। मध्यवर्ग के पास न तो इतना पैसा होता है कि वह बेफिक्र होकर जी सके और न ही वह इतना गरीब होता है कि उसे सरकारी योजनाओं का लाभ मिल सके। वह एक

ऐसी स्थिति में है जहाँ उसे हमेशा संघर्ष करना पड़ता है। कमलेश्वर ने मध्यवर्ग की इस विवशता को बड़ी संवेदनशीलता से चित्रित किया है। कहानी का नायक मध्यवर्ग का प्रतिनिधि है जो ईमानदारी से जीना चाहता है, लेकिन परिस्थितियाँ उसे अपने सिद्धांतों से समझौता करने के लिए मजबूर करती हैं। कहानी में तीसरा सामाजिक यथार्थ है शिक्षा और रोजगार की समस्या। कहानी के नायक ने शिक्षा प्राप्त की है, लेकिन उसे एक छोटी-सी नौकरी ही मिली है जिससे उसे मुश्किल से अपने परिवार का पालन-पोषण हो पाता है। यह स्थिति स्वतंत्रता के बाद के भारत में बहुत आम थी। शिक्षित युवाओं को रोजगार नहीं मिल रहा था या फिर जो मिल रहा था वह अपर्याप्त था। कमलेश्वर ने इस समस्या को कहानी में बड़ी प्रभावशाली ढंग से उठाया है।

चौथा सामाजिक यथार्थ है मूल्यों का क्षरण। कहानी में यह दिखाया गया है कि कैसे पैसे के लालच में लोग अपने मूल्यों और सिद्धांतों से समझौता कर रहे हैं। वोट बेचना, झूठे वायदों पर विश्वास करना, भ्रष्ट लोगों को सत्ता में लाना – ये सब मूल्यों के क्षरण के उदाहरण हैं। कमलेश्वर ने यह दिखाया कि यह क्षरण केवल राजनीतिक नहीं है, बल्कि सामाजिक भी है। समाज के हर स्तर पर मूल्य टूट रहे हैं और उनकी जगह अवसरवादिता ले रही है। पाँचवाँ सामाजिक यथार्थ है जनता की असहायता। कहानी में जनता को एक असहाय भीड़ के रूप में दिखाया गया है जो राजनेताओं के हाथों की कठपुतली है। जनता को पता है कि राजनेता झूठे वायदे कर रहे हैं, लेकिन फिर भी वह उन्हें वोट देती है।

10.9 राजेंद्र यादव

राजेंद्र यादव (1929-2013) हिंदी कथा साहित्य के 'नई कहानी' आंदोलन के तीन स्तंभों में से एक हैं (अन्य दो मोहन राकेश और कमलेश्वर)। उनका लेखन न केवल अपनी विशिष्ट शिल्पगत पहचान के लिए, बल्कि अपने गहरे सामाजिक-मनोवैज्ञानिक यथार्थ के लिए भी महत्वपूर्ण है। 'नई कहानी' साठ के दशक में सामाजिक और राजनीतिक मोहभंग, व्यक्तिवादी चेतना के उदय और बदलती पारिवारिक संरचनाओं की पृष्ठभूमि में सामने आई। राजेंद्र यादव ने इस दौर की बदलती मानसिकता, खासकर मध्यमवर्गीय संबंधों की जटिलता और स्त्री-पुरुष संबंधों में आए तनाव को अपनी कहानियों का केंद्रीय विषय बनाया। उनकी कहानी 'जहाँ लक्ष्मी कैद है' (1957)

इस युग के संक्रमण और वैचारिक द्वंद्व को पकड़ने वाली एक प्रतिनिधि रचना है। यह कहानी सिर्फ एक घरेलू कथा नहीं है, बल्कि उस आर्थिक और सामाजिक दबाव की कहानी है, जो स्त्री की स्वतंत्रता और पुरुष की महत्वाकांक्षा को कुचल देता है। यह कहानी राजेंद्र यादव की उस कलात्मक दृष्टि का प्रमाण है जो भावनाओं की उथल-पुथल को सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक स्तर पर अभिव्यक्त करती है, जहाँ 'लक्ष्मी' (धन, सुख और पत्नी का प्रतीक) एक ऐसे पिंजरे में कैद है, जिसे स्वयं पुरुष की अपूर्ण आकांक्षाओं ने बनाया है। कहानी की प्रासंगिकता आज भी बरकरार है, क्योंकि यह धन और सामाजिक प्रतिष्ठा की दौड़ में मानवीय संबंधों के बलिदान की सार्वभौमिक समस्या को उजागर करती है।

जहाँ लक्ष्मी कैद है: कथावस्तु का सार और संरचना (कथावस्तु)

'जहाँ लक्ष्मी कैद है' कहानी का ताना-बाना अत्यंत साधारण, किंतु मनोवैज्ञानिक रूप से जटिल है। कथा एक मध्यमवर्गीय परिवार के इर्द-गिर्द घूमती है, जिसका केंद्रीय चरित्र वसंत है। वसंत एक महत्त्वाकांक्षी, शिक्षित युवक है, जो अपने परिवार, विशेषकर अपनी पत्नी सरला और बीमार माँ के साथ एक छोटे, तंग और अविकसित कस्बे में रहता है।

कथा का मुख्य संघर्ष: वसंत अपनी योग्यता के अनुसार कोई बड़ा काम या नौकरी नहीं कर पाया है। वह एक छोटा-मोटा व्यापार शुरू करने की कोशिश करता है, जिसमें उसे लगातार असफलता मिलती है। यह असफलता उसे न केवल आर्थिक रूप से, बल्कि मानसिक रूप से भी तोड़ देती है। उसका सारा गुस्सा, निराशा और कुंठा उसकी पत्नी सरला और उसके आस-पास के सीमित संसाधनों पर निकलती है।

सरला की स्थिति: सरला एक पढ़ी-लिखी, संवेदनशील और सुंदर स्त्री है। वह घर की सारी जिम्मेदारियाँ संभालती है और वसंत की असफलताओं को समझती है। वह पति को सहारा देना चाहती है, लेकिन वसंत की आत्म-पीड़ित मानसिकता उसे स्वीकार नहीं कर पाती। कहानी का मार्मिक बिंदु यह है कि सरला के मायके से उसे कुछ **धन या सहायता** मिल सकती है, जो वसंत के व्यापार को सहारा दे सकती है, लेकिन वसंत का पुरुष अहंकार और स्वाभिमान उसे सरला के मायके की 'लक्ष्मी' (धन) स्वीकार करने से रोकता है।

क्लाइमेक्स और प्रतीकात्मक अंत: वसंत अपनी कुंठा में सरला पर चिल्लाता है और घर की दीन-हीन स्थिति पर दुःख व्यक्त करता है। वह अपने ही घर को एक पिंजरा मानता है, जहाँ उसकी महत्वाकांक्षाएँ कैद हैं। अंततः, जब वसंत की माँ की मृत्यु हो जाती है, तो उसे यह एहसास होता है कि वह लक्ष्मी को (जो सरला के रूप में घर में है और जिसे वह धन के रूप में बाहर से लाना चाहता है) कहीं और खोज रहा था, जबकि वह उसके पास ही थी। लेकिन उसका अहंकार उसे उस 'लक्ष्मी' को मुक्त करने या स्वीकार करने नहीं देता। कहानी का अंत प्रतीकात्मक है, जहाँ न तो वसंत मुक्त हो पाता है और न सरला, और न ही घर की लक्ष्मी। वे सभी वसंत के आत्म-निर्मित 'अहंकार और अभाव' के जाल में कैद रहते हैं। कहानी की संरचना एक रेखीय कथा के बजाय **मनोवैज्ञानिक अंतर्द्वंद्व** पर केंद्रित है।

कहानी में चित्रित स्त्री जीवन की समस्याएँ (स्त्री जीवन की समस्या)

'जहाँ लक्ष्मी कैद है' सरला के माध्यम से तत्कालीन भारतीय मध्यमवर्गीय स्त्री जीवन की बहुआयामी समस्याओं को अत्यंत मार्मिकता से प्रस्तुत करती है।

1. **आर्थिक परतंत्रता और आत्म-सम्मान का द्वंद्व:** सरला की सबसे बड़ी त्रासदी उसकी **आर्थिक निष्क्रियता** है। यद्यपि वह पढ़ी-लिखी और सक्षम है, परम्परागत व्यवस्था उसे घर की चारदीवारी तक सीमित रखती है। यदि वह अपने मायके से धन लाकर पति की सहायता करना भी चाहे, तो पुरुष (वसंत) का मिथ्या स्वाभिमान उसे ऐसा नहीं करने देता। सरला की क्षमता और इच्छा शक्ति वसंत के अहंकार के सामने निरर्थक हो जाती है। यह उसकी अपनी योग्यता पर नहीं, बल्कि उसके पुरुष रिश्तेदार की हैसियत पर निर्भर करता है।
2. **पति की कुंठा की शिकार:** सरला को वसंत की आर्थिक असफलता और कुंठा का शिकार होना पड़ता है। वसंत अपनी हर निराशा, तंगहाली और चिड़चिड़ाहट को सरला पर उतारता है। सरला उसकी 'असफलता' का सहज निशाना बन जाती है। उसका प्रेम और सहानुभूति पति की हताशा की आग में झोंक दिए जाते हैं।
3. **व्यक्तित्व का दमन:** सरला का एक स्वतंत्र व्यक्तित्व है, अपनी इच्छाएँ और आकांक्षाएँ हैं, लेकिन मध्यमवर्गीय पारिवारिक ढाँचा उसके मनोभावों के दमन

का माध्यम बन जाता है। उसे केवल एक पत्नी, एक सेविका और एक सहानुभूतिदाता की भूमिका निभानी पड़ती है। उसे अपने पति की सफलता के लिए एक मूक पृष्ठभूमि बनकर रहना पड़ता है, जहाँ उसका अपना अस्तित्व गौण हो जाता है।

4. **पितृसत्तात्मक 'लक्ष्मी' की अवधारणा:** कहानी लक्ष्मी (धन और समृद्धि की देवी) के प्रतीकात्मक अर्थ को चुनौती देती है। इस समाज में स्त्री को स्वयं 'लक्ष्मी' का रूप माना जाता है, पर यह 'लक्ष्मी' वास्तव में एक कैद में है। उसका मूल्य या तो उसके मायके के धन से निर्धारित होता है या फिर उसके पति की सफलताओं से। उसका 'स्त्रीत्व' और उसकी 'लक्ष्मी' की पहचान तभी होती है जब पुरुष उसे मान्यता दे या उससे लाभान्वित हो। यह कहानी बताती है कि स्त्री तब तक कैद रहेगी जब तक पुरुष आर्थिक रूप से स्वतंत्र होने को ही सम्मान का पर्याय मानता रहेगा।

इस प्रकार, राजेंद्र यादव ने सरला के माध्यम से स्त्री की व्यक्तिगत स्वतंत्रता, आर्थिक भागीदारी और भावनात्मक स्वायत्तता पर मंडराते संकटों को उजागर किया है, जो 'नई कहानी' का एक अनिवार्य हिस्सा था।

'जहाँ लक्ष्मी कैद है' कहानी 'नई कहानी' आंदोलन (1950-60 के दशक) की प्रमुख विशेषताओं का उत्कृष्ट उदाहरण प्रस्तुत करती है, जो प्रेमचंद युग की सामाजिक यथार्थवादी और मनोविश्लेषणवादी कहानी की परंपरा से अलग नए शिल्प और विषय को उजागर करती है। सबसे पहले, कहानी में व्यक्तिवादी चेतना और तनाव स्पष्ट रूप से दिखाई देता है; कथा का केंद्र बाह्य समाज या घटनाएँ नहीं, बल्कि वसंत और सरला का निजी द्वंद्व है। वसंत की व्यक्तिगत महत्वाकांक्षा और आर्थिक असफलता से उपजा तनाव ही कहानी की मूल शक्ति है, जिसमें उसकी आंतरिक टूटन, निराशा और अहंकार का सूक्ष्म चित्रण किया गया है। इसके साथ ही, कहानी में प्रस्तुत भोगा हुआ यथार्थ अत्यंत प्रामाणिक प्रतीत होता है; आदर्शवाद, सामाजिक सुधार या चमत्कारी घटनाओं का स्थान नहीं है। मध्यमवर्गीय जीवन की रोजमर्रा की कठिनाइयाँ, तंग मकान, गरीबी से उत्पन्न चिड़चिड़ाहट और पति-पत्नी के बीच की संवादहीनता कहानी में यथार्थ का जीवंत अनुभव देती हैं। कहानी में सूक्ष्म मनोवैज्ञानिकता भी प्रमुख है। राजेंद्र यादव ने कथा को घटनाओं के क्रम से आगे बढ़ाने के बजाय मनोवैज्ञानिक क्षणों

के माध्यम से आकार दिया है। वसंत के मन की उलझनें, सरला की मूक वेदना और दोनों के बीच की संवादहीनता बड़े ही बारीकी से दर्शाई गई है, जो व्यक्ति के अस्तित्ववादी संकट और अलगाव की भावना को प्रकट करती है। इसके अलावा, परिवेश और प्रतीकात्मकता कहानी को और गहन बनाते हैं। तंग कस्बा, छोटा घर और बूढ़ी माँ का परिवेश वसंत की महत्वाकांक्षाओं के लिए एक जेल का प्रतीक बन जाता है। शीर्षक में प्रयुक्त 'लक्ष्मी' शब्द धन, पत्नी और समृद्धि के प्रतीक के रूप में कार्य करता है, जो वसंत की पहुँच से बाहर हैं या उसके अहंकार के कारण कैद हैं।

कहानी में शिल्पगत नयापन दिखाई देता है। प्रतीकात्मक शीर्षक, फ्लैशबैक का उपयोग (वसंत के पुराने सपनों और वर्तमान की तुलना) और कथा का सपाट, निष्कर्षहीन अंत इसे परंपरागत कथा शैली से अलग बनाते हैं। कहानी किसी स्पष्ट निष्कर्ष पर नहीं पहुँचती, बल्कि एक प्रश्नचिह्न छोड़कर पाठक के सामने जीवन की जटिलताओं को प्रस्तुत करती है। इस प्रकार, 'जहाँ लक्ष्मी कैद है' कहानी नए युग की कहानी की विशेषताओं—व्यक्तिवाद, यथार्थ, सूक्ष्म मनोवैज्ञानिकता, प्रतीकात्मकता और शिल्पगत नवीनता—का आदर्श उदाहरण है।

10.10 समकालीन कहानी: एक वैचारिक पृष्ठभूमि

'समकालीन कहानी' शब्द सामान्यतः 1970 के दशक के बाद विकसित हुई हिंदी कहानी की उस धारा को इंगित करता है, जो 'नई कहानी' और 'सचेतन कहानी' के बाद आई। इस दौर की कहानी ने पिछली पीढ़ियों के मध्यमवर्गीय प्रेम, यौन तनाव और आत्म-द्वंद्व के विषयों से आगे बढ़कर समाज के व्यापक, राजनीतिक और आर्थिक यथार्थ को केंद्र में रखा।

समकालीन कहानी की पृष्ठभूमि में निम्नलिखित प्रमुख कारक थे:

1. **राजनीतिक मोहभंग:** आपातकाल, भ्रष्टाचार में वृद्धि और सत्ता की क्रूरता ने साहित्यकारों को व्यवस्था पर सीधे प्रश्न उठाने के लिए प्रेरित किया।
2. **शहरीकरण और ग्लोबल प्रभाव:** महानगरों की जटिलता, उपभोक्ता संस्कृति, और भूमंडलीकरण के शुरुआती प्रभावों ने नए प्रकार के अलगाव और तनाव को जन्म दिया।

3. **हाशियाकृत समाज का उदय:** दलित, आदिवासी, स्त्रियाँ और हाशिये के अन्य समुदायों की चेतना मुखर हुई। कहानी ने इन्हें केवल पीड़ित के रूप में नहीं, बल्कि **संघर्षरत नायक** के रूप में चित्रित करना शुरू किया।
4. **शैलीगत प्रयोग:** कथा कहने के पारंपरिक तरीकों से हटकर लेखकों ने नए-नए शिल्प, भाषा, और आख्यान की तकनीकों का प्रयोग किया, जिसमें रिपोर्टाज शैली, जादुई यथार्थवाद (मैजिकल रियलिज्म) और लोककथा तत्वों का मिश्रण भी शामिल था।

अमरकांत, उदय प्रकाश, और संजीव इसी समकालीन कहानी के प्रतिनिधि हस्ताक्षर हैं, जिन्होंने यथार्थ के विभिन्न कोणों को छूकर हिंदी कहानी को नया आयाम दिया।

अमरकांत: आम आदमी के यथार्थ की कहानियाँ (यथार्थवादी कहानियाँ)

अमरकांत (1925-2014) को प्रेमचंद की यथार्थवादी परंपरा का सच्चा वारिस माना जाता है। उनकी कहानियों की सबसे बड़ी पहचान उनका सादा, सपाट, और अत्यंत प्रामाणिक यथार्थवाद है, जो मुख्य रूप से निम्न-मध्यम वर्ग और निम्न वर्ग के आम आदमी के संघर्ष पर केंद्रित है।

यथार्थवाद की विशेषताएँ:

1. **संघर्षशील निम्न-मध्यम वर्ग:** अमरकांत ने समाज के उस वर्ग को केंद्र में रखा जो न तो पूरी तरह गरीब है और न ही संपन्न। ये लोग मामूली वेतन पर काम करते हैं और प्रतिष्ठा तथा पेट की आग के बीच संघर्ष करते हैं। 'डिप्टी कलक्टरी' और 'जिंदगी और जोंक' जैसी कहानियाँ इस वर्ग के दैनिक अपमान और जीने की ललक को दर्शाती हैं।
2. **जीवन की विसंगतियाँ और विडंबना:** उनकी कहानियों का यथार्थ कठोर है, जहाँ ईमानदार व्यक्ति को कष्ट उठाना पड़ता है, और धूर्त लोग सफल होते हैं। 'जिंदगी और जोंक' का रजुआ इसका सर्वोत्तम उदाहरण है, जो जीवन की सारी गंदगी और अभाव सहते हुए भी चिपका रहता है। अमरकांत इस वर्ग की निराशा को करुणा और मानवीय सहानुभूति के साथ प्रस्तुत करते हैं, जिससे पाठक उससे जुड़ाव महसूस करता है।

3. **सरल भाषा और देशज मुहावरे:** उनकी भाषा में कोई अनावश्यक नाटकीयता या बौद्धिकता नहीं है। यह भाषा आम बोलचाल की है, जिसमें पूर्वी उत्तर प्रदेश के **देशज शब्द और मुहावरे** रचे-बसे हैं। यह भाषा उनके चरित्रों के परिवेश और स्वभाव की प्रामाणिकता को बढ़ाती है।
4. **मानवीय मूल्यों की खोज:** घोर यथार्थवाद के बीच भी अमरकांत **मानवीय मूल्यों की खोज** करते हैं। 'दोपहर का भोजन' में सिद्धेश्वरी का संघर्ष, अपने बच्चों को भरपेट खिलाने के लिए अपने हिस्से का भोजन भी छिपा देना, गरीबी में भी माँ की ममता और त्याग के विराट मानवीय मूल्य को दर्शाता है। वे दिखाते हैं कि अभाव में भी मनुष्यता पूरी तरह नष्ट नहीं होती।

अमरकांत का यथार्थवाद केवल चित्रण नहीं है, बल्कि उस जीवन की गहरी पीड़ा और हताशा का दस्तावेज़ है, जिसे समाज अनदेखा कर देता है।

उदय प्रकाश: प्रयोगधर्मिता और समकालीन शहरी/मानव संवेदना

उदय प्रकाश (जन्म 1952) समकालीन हिंदी कहानी के सबसे अधिक चर्चित, विवादास्पद और प्रयोगधर्मी कहानीकार हैं। उनका लेखन 'नई कहानी' के निजी मनोद्वंद्व से आगे बढ़कर उत्तर-आधुनिक समाज, राजनीति, और वैश्विक विसंगतियों को पकड़ता है।

प्रयोगधर्मिता:

1. **जादुई यथार्थवाद:** उदय प्रकाश ने हिंदी कहानी में लैटिन अमेरिकी साहित्य से प्रभावित जादुई यथार्थवाद की तकनीक का सफलतापूर्वक प्रयोग किया। उनकी कहानियों में (जैसे 'और अंत में प्रार्थना', 'पाल गोमरा का स्कूटर') यथार्थ के साथ अवास्तविक, चमत्कारी या अतार्किक घटनाएँ इस तरह सहजता से घुलमिल जाती हैं कि वे यथार्थ का ही हिस्सा लगने लगती हैं। यह तकनीक जटिल समकालीन सत्य को व्यक्त करने का उनका तरीका है।
2. **रिपोर्टाज और फैंटेसी का मिश्रण:** उनकी कई कहानियाँ, जैसे 'वारेन हेस्टिंग्स का साँड़' या 'मोहन दास', एक रिपोर्टाज या खोजी पत्रकारिता की शैली में शुरू होती हैं,

3. **भाषा और आख्यान का नयापन:** वे भाषा में लोक-मुहावरों, वैज्ञानिक शब्दों, राजनीतिक नारों और मिथकों को एक साथ पिरोते हैं। उनका आख्यान एक निश्चित बिंदु पर शुरू होकर अचानक भटक जाता है और फिर वापस मुख्य कथा पर आता है, जो भ्रम और जटिलता से भरे समकालीन जीवन का प्रतीक है।

समकालीन संवेदना:

1. **भ्रष्टाचार और सत्ता की आलोचना:** उदय प्रकाश की कहानियाँ भारतीय राजनीति में फैले भ्रष्टाचार, पूंजीवाद की क्रूरता और सत्ता के भयावह चेहरे को बेनकाब करती हैं। 'वारेन हेस्टिंग्स का साँड़' में औपनिवेशिक शोषण से लेकर वर्तमान राजनीतिक लूट तक की एक व्यापक शृंखला दिखाई गई है।
2. **वैश्वीकरण और उपभोक्ता संस्कृति:** उनकी कहानियाँ ग्लोबल प्रभावों और उपभोक्तावादी समाज में मानवीय संबंधों के टूटने पर गहरा ध्यान देती हैं। वे दिखाते हैं कि कैसे तकनीक, मीडिया और बाजार व्यक्ति को वस्तु में बदल रहे हैं।
3. **हाशिये की पीड़ा का वैश्विक संदर्भ:** उदय प्रकाश हाशिये के लोगों—मजदूरों, किसानों, और आम नागरिकों की पीड़ा को केवल स्थानीय समस्या के रूप में नहीं देखते, बल्कि इसे वैश्विक पूँजीवादी व्यवस्था की उपज मानते हैं।

इस तरह, उदय प्रकाश की कहानियाँ अपने असामान्य शिल्प और तीखे वैचारिक कटाक्ष के कारण समकालीन हिंदी कहानी में एक विशिष्ट और शक्तिशाली स्थान रखती हैं।

संजीव: दलित, आदिवासी और हाशियाकृत जीवन का अंकन (दलित और आदिवासी जीवन)

संजीव (जन्म 1947) समकालीन कहानी के उस सशक्त धारा का प्रतिनिधित्व करते हैं, जो सरोकारों के धरातल पर सबसे अधिक व्यापक है। उन्होंने अपनी कहानियों में उन समुदायों को आवाज दी है जो सामाजिक, आर्थिक और भौगोलिक रूप से सबसे अधिक हाशिये पर हैं—यानी दलित, आदिवासी और विस्थापित लोग।

दलित और आदिवासी जीवन का अंकन:

1. **दलित जीवन की मार्मिकता:** संजीव दलित जीवन को केवल गरीबी के रूप में नहीं, बल्कि सदियों से चली आ रही सामाजिक-मानसिक गुलामी के रूप में देखते हैं। उनकी कहानियों में दलितों पर होने वाले अत्याचार, जातिगत भेदभाव, और उनके विद्रोह की भावना को गहराई से दर्शाया गया है। वे दलित नायकों के संघर्ष, उनकी चेतना और आत्म-सम्मान की रक्षा के प्रयासों को मुखरता से प्रस्तुत करते हैं।
2. **आदिवासी समाज और विस्थापन का दर्द:** संजीव ने अपने लेखन में आदिवासी जीवन को अभूतपूर्व स्थान दिया है। 'आँख' कहानी में वे आदिवासियों के जीवन, संस्कृति, और प्रकृति के साथ उनके अटूट रिश्ते को दर्शाते हैं। उनकी कहानियाँ बताती हैं कि कैसे विकास के नाम पर आदिवासियों को उनकी जमीन और जंगल से विस्थापित किया जाता है, और कैसे आधुनिक पूंजीवादी ताकतें उनके अस्तित्व को नष्ट कर रही हैं। यह विस्थापन केवल आर्थिक नहीं, बल्कि सांस्कृतिक और पहचान का संकट भी है।
3. **ग्रामीण शोषण की परतें:** उनकी कहानियाँ ग्रामीण समाज में व्याप्त शोषण की परतों को खोलती हैं, जहाँ भू-स्वामी, साहूकार और भ्रष्ट राजनेता मिलकर गरीब, भूमिहीन किसानों और मजदूरों को किस तरह लूटते हैं। यह शोषण केवल आर्थिक नहीं है, बल्कि जातीय और लैंगिक भी है।
4. **डॉक्यूमेंटेशन और गहन अध्ययन:** संजीव का लेखन उनकी गहन सामाजिक-मानवीय चिंता और विषय-वस्तु के व्यापक अध्ययन पर आधारित होता है। उनकी कहानियों में सामाजिक सर्वेक्षण, क्षेत्रीय भाषा और विशिष्ट परिवेश के विवरण की प्रामाणिकता होती है, जिससे वे मात्र कहानी न रहकर एक सामाजिक दस्तावेज बन जाती हैं।

संजीव की कहानियों में हाशियाकृत समाज का दर्द, प्रतिरोध और उसके भविष्य की आशा एक साथ गुंफित है, जो उन्हें समकालीन यथार्थवादी कहानी की एक महत्वपूर्ण आवाज बनाता है।

राजेंद्र यादव और समकालीन कहानीकारों का यह समूह हिंदी कहानी की यात्रा में एक निर्णायक मोड़ का प्रतिनिधित्व करता है। राजेंद्र यादव ने 'नई कहानी' के माध्यम से कहानी को बाह्य समाज से व्यक्ति के अंतरंग तक पहुँचाया। 'जहाँ लक्ष्मी कैद है' जैसी कहानियों ने यह स्थापित किया कि मध्यमवर्गीय परिवार, स्त्री-पुरुष संबंध, और आंतरिक मनोवैज्ञानिक द्वंद्व भी साहित्य के महत्त्वपूर्ण विषय हैं। उन्होंने कथा के शिल्प को सूक्ष्म और प्रतीकात्मक बनाकर हिंदी कहानी को एक नया आधुनिक कलेवर दिया।

10.11 सारांश

प्रमुख हिंदी कहानीकारों ने विभिन्न युगों में कहानी को विशिष्ट दिशा दी। प्रेमचंद का यथार्थवाद, प्रसाद का आदर्शोन्मुख रोमांटिसिज्म, यशपाल का प्रगतिवाद और अज्ञेय का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण कहानी के विकास के मील के पत्थर हैं। नई कहानी के त्रयी—मोहन राकेश, कमलेश्वर और राजेंद्र यादव—ने मध्यवर्गीय जीवन को केंद्र में रखा। समकालीन कहानीकारों ने हाशियाकृत समाज को आवाज दी।

10.12 इकाई अंत अभ्यास

1. प्रेमचंद की 'पूस की रात' और 'कफ़न' कहानियों का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत करते हुए उनके यथार्थवाद को स्पष्ट कीजिए।
2. जयशंकर प्रसाद की 'आकाशदीप' कहानी के माध्यम से उनके आदर्शवाद और त्याग के दर्शन की व्याख्या कीजिए।
3. नई कहानी और समकालीन कहानी के प्रमुख कहानीकारों की रचनाओं में सामाजिक यथार्थ का विवेचन कीजिए।

10.13 संदर्भ एवं अनुसंशित पठन सामाग्री

1. मधुरेश, हिंदी कहानी का विकास, लोकभारती प्रकाशन, दिल्ली, 2014.
2. विजयमोहन सिंह, आधुनिक हिन्दी गद्य साहित्य का विकास और विश्लेषण, भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली 2012)

स्व-मूल्यांकन प्रश्न

बहुविकल्पीय प्रश्न (MCQs):

1. हिंदी की पहली कहानी किसे माना जाता है?

क) पूस की रात

ख) *इंदुमती* (किशोरीलाल गोस्वामी, 1900) या *उसने कहा था* (चंद्रधर शर्मा गुलेरी, 1915)

ग) कफन

घ) आकाशदीप

उत्तर: ख) *इंदुमती (1900)* या *उसने कहा था (1915)*

2. 'पूस की रात' का नायक कौन है?

क) घीसू

ख) हल्कू

ग) माधव

घ) होरी

उत्तर: ख) हल्कू

3. 'कफन' कहानी में प्रमुख पात्र हैं:

क) होरी और धनिया

ख) घीसू और माधव

ग) हल्कू और मुन्नी

घ) गोबर और झुनिया

उत्तर: ख) घीसू और माधव

4. 'आकाशदीप' किसकी कहानी है?

क) प्रेमचंद

ख) जयशंकर प्रसाद

ग) यशपाल

घ) अज्ञेय

उत्तर: ख) जयशंकर प्रसाद

5. प्रसाद की कहानियों की मुख्य विशेषता है:

क) यथार्थवाद

ख) आदर्शवाद और काव्यात्मकता

ग) प्रगतिवाद

घ) व्यंग्य

उत्तर: ख) आदर्शवाद और काव्यात्मकता

6. नई कहानी के प्रमुख हस्ताक्षर हैं:

क) प्रेमचंद

ख) मोहन राकेश, राजेंद्र यादव, कमलेश्वर

ग) जयशंकर प्रसाद

घ) यशपाल

उत्तर: ख) मोहन राकेश, राजेंद्र यादव, कमलेश्वर

7. 'गेंडा' कहानी किसने लिखी?

क) मोहन राकेश

ख) अज्ञेय

ग) कमलेश्वर

घ) राजेंद्र यादव

उत्तर: ख) अज्ञेय

8. कहानी का सबसे महत्वपूर्ण तत्व है:

क) कथानक और पात्र

ख) केवल भाषा

ग) केवल वर्णन

घ) केवल लंबाई

उत्तर: क) कथानक और पात्र

9. प्रेमचंद की कहानियों में प्रमुखता है:

क) काल्पनिकता

ख) यथार्थ और सामाजिक समस्याओं की

ग) रहस्यवाद

घ) केवल मनोरंजन

उत्तर: ख) यथार्थ और सामाजिक समस्याओं की

10. नई कहानी की प्रमुख विशेषता है:

क) ग्रामीण जीवन

ख) मध्यवर्गीय जीवन और मनोवैज्ञानिक द्वंद्व

ग) ऐतिहासिक घटनाएँ

घ) केवल प्रेम कहानियाँ

उत्तर: ख) मध्यवर्गीय जीवन और मनोवैज्ञानिक द्वंद्व

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. 'पूस की रात' कहानी का सारांश संक्षेप में लिखिए।
2. 'कफन' कहानी में प्रेमचंद ने किस सामाजिक यथार्थ को दिखाया है?
3. प्रसाद की कहानियों की भाषा की विशेषताएँ बताइए।
4. नई कहानी की तीन प्रमुख विशेषताएँ बताइए।
5. कहानी के प्रमुख तत्व कौन-कौन से हैं?

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. प्रेमचंद की कहानियों 'पूस की रात' और 'कफन' का विस्तृत विश्लेषण करते हुए उनकी यथार्थवादी दृष्टि पर प्रकाश डालिए।
2. जयशंकर प्रसाद की 'आकाशदीप' कहानी का विस्तार से विवेचन कीजिए।
3. आधुनिक हिंदी कहानी के विकास और स्वरूप का विस्तृत वर्णन कीजिए।
4. नई कहानी आंदोलन का परिचय देते हुए प्रमुख नई कहानीकारों के योगदान का विश्लेषण कीजिए।
5. समकालीन हिंदी कहानी की प्रवृत्तियों और विशेषताओं पर विस्तृत निबंध लिखिए।

सारांश

आधुनिक हिंदी कहानी का विकास प्रारंभिक काल से प्रेमचंद, नई कहानी आंदोलन और समकालीन दौर तक विविध रूपों में हुआ है। प्रेमचंद ने सामाजिक यथार्थ और मानव जीवन की समस्याओं को केंद्र में रखा, जबकि प्रसाद ने आदर्शवाद और मानवीय मूल्यों को महत्व दिया। यशपाल और अज्ञेय ने क्रमशः प्रगतिशीलता और मनोवैज्ञानिक दृष्टि से कहानी को समृद्ध किया। मोहन राकेश, कमलेश्वर और राजेंद्र यादव ने 'नई कहानी' आंदोलन के माध्यम से मध्यवर्गीय जीवन, संवेदना और संघर्षों को उभारा। समकालीन कहानीकारों — अमरकांत, उदय प्रकाश और संजीव — ने समाज के यथार्थ और वंचित वर्गों को स्वर दिया।

शब्दावली

1. यथार्थवाद – जीवन और समाज की सच्ची तस्वीर प्रस्तुत करना।
2. आदर्शवाद – मानवीय मूल्यों और नैतिकता पर आधारित दृष्टिकोण।
3. प्रगतिवाद – सामाजिक समानता और परिवर्तन की विचारधारा।
4. नई कहानी आंदोलन – 1950-60 के दशक का मनोवैज्ञानिक और संवेदनात्मक आंदोलन।
5. मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण – पात्रों के अंतरद्वंद्व और चेतना प्रवाह का विश्लेषण।
6. सामाजिक यथार्थ – समाज की वास्तविक समस्याओं का चित्रण।
7. राजनीतिक व्यंग्य – सत्ता और व्यवस्था की आलोचना का रूप।
8. स्त्री विमर्श – स्त्री की स्थिति, संघर्ष और पहचान की पड़ताल।
9. प्रयोगधर्मी शैली – नई तकनीक और रचना पद्धति का प्रयोग।
10. समकालीन संवेदना – आधुनिक जीवन की बदलती भावनाएँ और दृष्टिकोण।

याद रखने योग्य 5 मुख्य बिंदु:

1. प्रेमचंद ने कहानी को सामाजिक यथार्थ का माध्यम बनाया।

2. जयशंकर प्रसाद की कहानियों में आदर्श और मानवीय मूल्य झलकते हैं।
3. नई कहानी आंदोलन ने व्यक्ति की आंतरिक संवेदना को महत्व दिया।
4. समकालीन कहानीकारों ने दलित, स्त्री और हाशिए के जीवन को केंद्र में रखा।
5. हिंदी कहानी का विकास यथार्थ से मनोविज्ञान और संवेदना तक का विस्तृत सफर है।

अपनी प्रगति की जाँच करें

1. **प्रेमचंद की कहानियों की प्रमुख विशेषताओं का उल्लेख कीजिए तथा किसी एक कहानी का उदाहरण दीजिए।**

---

2. **किसी एक अन्य प्रमुख हिंदी कहानीकार (जैसे जैनेन्द्र कुमार, भीष्म साहनी या निर्मल वर्मा) की कहानियों की विशेषताओं का संक्षेप में वर्णन कीजिए।**

खंड 4 एकांकी एवं लघु उपन्यास

इकाई 11 हिंदी एकांकी की परंपरा

संरचना

11.1 परिचय

11.2 उद्देश्य

11.3 एकांकी: परिभाषा और स्वरूप

11.4 हिंदी एकांकी का विकास

11.5 प्रमुख एकांकीकार

11.6 सारांश

11.7 इकाई अंत अभ्यास

11.8 संदर्भ एवं अनुसंशित पठन सामाग्री

11.1 परिचय

एकांकी आधुनिक हिंदी साहित्य की संक्षिप्त नाट्य विधा है जो एक अंक में जीवन के केंद्रित सत्य को तीव्र प्रभाव के साथ प्रस्तुत करती है। इसका विकास बीसवीं शताब्दी में पाश्चात्य प्रभाव और रंगमंच की आवश्यकताओं से हुआ।

11.2 उद्देश्य

- एकांकी की परिभाषा, स्वरूप और संक्षिप्तता जैसी अनिवार्य विशेषताओं को समझना तथा पूर्ण नाटक से अंतर जानना।
- हिंदी एकांकी के विकासक्रम का अध्ययन करना—प्रसाद के आरंभ से स्वातंत्र्योत्तर काल तक की विभिन्न धाराओं को समझना।
- प्रमुख एकांकीकारों—भुवनेश्वर, उपेंद्रनाथ अश्क और लक्ष्मीनारायण लाल—की रचनाओं और योगदान का विश्लेषण करना।

11.3 एकांकी: परिभाषा और स्वरूप

एकांकी (One-Act Play) साहित्य की एक ऐसी विधा है जो अपने नाम के अनुरूप, एक अंक में समाप्त होने वाला नाटक होती है, किंतु इसका महत्त्व और स्वरूप केवल अंकों की संख्या तक सीमित नहीं है। एकांकी एक आधुनिक विधा है, जिसका उदय

माना है। यह एक ऐसा कलात्मक लघु रूप है, जहाँ जीवन की किसी एक महत्त्वपूर्ण घटना या मनोभाव को चरमोत्कर्ष तक पहुँचाकर तीव्र प्रभाव उत्पन्न किया जाता है। पूर्ण नाटक जहाँ जीवन के विभिन्न पक्षों और जटिलताओं को विस्तार से प्रस्तुत करता है, वहीं एकांकी किसी एक स्लाइस-ऑफ-लाइफ या एक विशेष मानसिक द्वंद्व को पूरी गहराई से उजागर करता है। एकांकी के मूलभूत तत्वों में कथावस्तु की सघनता, पात्रों की सीमित संख्या, संवादों की तीक्ष्णता, शीघ्रता से चरमोत्कर्ष तक पहुँचना, और एक कलात्मक उद्देश्य का होना अनिवार्य है। यह वह विधा है जहाँ रचनाकार के पास विस्तार का अवकाश नहीं होता, अतः उसे कम शब्दों में अधिक कहने की कला (Economy of Words) में पारंगत होना पड़ता है। एकांकी का लक्ष्य मनोरंजन के साथ-साथ किसी विशिष्ट सामाजिक, राजनीतिक या मनोवैज्ञानिक समस्या पर तुरंत ध्यान केंद्रित करना होता है। इसका सार्वभौमिक स्वरूप इसे आधुनिक जीवन की गति के अनुकूल बनाता है, जहाँ दर्शक या पाठक के पास लंबे विस्तार के लिए समय कम होता है, और वह त्वरित, गहन अनुभव की तलाश में होता है। इसकी संक्षिप्तता ही इसकी शक्ति है, जो इसे एक क्षण-विशेष को युग-विशेष की समस्याओं का प्रतीक बनाने में सक्षम बनाती है।

एकांकी की अनिवार्य विशेषता: संक्षिप्तता (Briefness) और समय की एकाग्रता

एकांकी की आत्मा उसकी संक्षिप्तता (Briefness) में निवास करती है। यह संक्षिप्तता केवल आकार की नहीं, बल्कि कथानक, काल और पात्रों की भी होती है। पूर्ण नाटक जहाँ तीन से पाँच अंकों में विस्तारित होता है, वहीं एकांकी केवल एक अंक तक सीमित होता है। यह एक अंक भी प्रायः तीस मिनट से एक घंटे के बीच मंचित हो जाता है, जो इसे मंचन की दृष्टि से अत्यंत व्यावहारिक बनाता है। इस अनिवार्य संक्षिप्तता के कारण एकांकी में काल की एकाग्रता (Concentration of Time) स्थापित करनी पड़ती है। इसका तात्पर्य है कि एकांकी में चित्रित घटनाएँ प्रायः अल्प समय-सीमा के भीतर ही घटित होती हैं, और यदि किसी पूर्व या भविष्य की घटना का उल्लेख करना भी हो, तो उसे संवादों या फ्लैशबैक के माध्यम से अत्यंत संक्षेप में प्रस्तुत किया जाता है। इस विधा में गौण कथाएँ (Subplots) और अनावश्यक विस्तार के लिए कोई स्थान नहीं होता। रचनाकार को सीधे मूल समस्या पर आना होता है और तीव्र गति से चरमोत्कर्ष की ओर बढ़ना होता है। पात्रों की संख्या भी सीमित रखी जाती

है, क्योंकि अधिक पात्रों का परिचय, विकास और द्वंद्व दिखाना कम समय में संभव नहीं होता। यह संक्षिप्तता एकांकी पर एक विशेष दायित्व डालती है: एक भी संवाद या दृश्य अनावश्यक नहीं होना चाहिए। हर शब्द, हर क्रिया और हर संकेत का एक महत्त्वपूर्ण अर्थ और उद्देश्य होना चाहिए। इस तरह, संक्षिप्तता एकांकी के लिए एक शिल्पगत बाध्यता होने के साथ-साथ इसकी अभिव्यक्ति की शक्ति भी बन जाती है। यह इसे जीवन की एक फोटोग्राफिक क्षणिका के रूप में प्रस्तुत करता है, जहाँ एक ही पल में पूरा जीवन दर्शन समाहित हो जाता है।

11.4 हिंदी एकांकी का विकास

एकांकी और पूर्ण नाटक (Full-length Play) दोनों ही नाटक विधा के अंतर्गत आते हैं, लेकिन उनके संरचना, लक्ष्य और प्रस्तुति में मौलिक अंतर होता है, जिसका मूल कारण एकांकी की संक्षिप्तता और कथानक का संकेंद्रण (Concentration of Plot) है। पूर्ण नाटक (जैसे जयशंकर प्रसाद का 'स्कंदगुप्त' या धर्मवीर भारती का 'अंधायुग') का उद्देश्य जीवन की व्यापकता, बहुआयामी चरित्रों, जटिल सामाजिक या ऐतिहासिक संदर्भों को प्रस्तुत करना होता है। इसमें कई गौण कथाएँ होती हैं, कई कालखंडों का विस्तार होता है, और पात्रों के चरित्र विकास (Character Development) के लिए पर्याप्त समय मिलता है। वहीं, एकांकी में कथानक का संपूर्ण संकेंद्रण किसी एक ही केंद्रीय घटना, समस्या या मनोभाव पर होता है। यह एक घटना इतनी महत्त्वपूर्ण होती है कि इसके उद्घाटन से ही पूरा नाटक शुरू होता है और यह घटना ही नाटक के चरमोत्कर्ष पर जाकर समाप्त हो जाती है। एकांकी में संघर्ष भी प्रायः बाह्य की अपेक्षा आंतरिक या मनोवैज्ञानिक होता है, जो पात्र के मन के भीतर चलता है, और जिसे संवादों की तीक्ष्णता से दर्शाया जाता है। पूर्ण नाटक में जहाँ शिथिलता (Slowness) के क्षणों का अवकाश होता है, एकांकी में तीव्रता ही प्रमुख होती है। इसका कारण यह है कि एकांकी को शुरू से अंत तक दर्शकों की रुचि को चरमोत्कर्ष की ओर बनाए रखना होता है, जबकि पूर्ण नाटक अपने विभिन्न दृश्यों और अंकों के माध्यम से कथा के प्रवाह को नियंत्रित करता है। संक्षेप में, पूर्ण नाटक जहाँ किसी नदी की यात्रा को दर्शाता है, वहीं एकांकी उस नदी के सबसे ऊँचे झरने या सर्वाधिक गहराव को दर्शाता है, जहाँ पूरी शक्ति एक ही बिंदु पर केंद्रित होती है।

हिंदी एकांकी का उदय और आरंभिक प्रेरणाएँ

हिंदी एकांकी का उदय बीसवीं शताब्दी के आरंभिक दशकों में हुआ और यह मुख्य रूप से दोहरी प्रेरणाओं का परिणाम था: भारतीय रंगमंच की आवश्यकताएँ और पाश्चात्य नाट्य साहित्य का प्रभाव। उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्ध में भारतेन्दु हरिश्चंद्र के नाटकों में एकांकी के तत्त्व दिखाई देते हैं, जैसे 'विषस्य विषमौषधम्' या 'अंधेर नगरी', जिनमें संक्षिप्तता और एक केंद्रीय व्यंग्यात्मक उद्देश्य है, किंतु इन्हें आधुनिक एकांकी के शास्त्रीय स्वरूप में नहीं रखा जाता। आधुनिक एकांकी का उदय तब हुआ जब पश्चिमी रंगमंच (विशेषकर आयरिश नाट्य आंदोलन) के प्रभाव से लेखकों ने महसूस किया कि लंबे नाटकों के मंचन में आने वाली आर्थिक और समय संबंधी बाधाओं को दूर करने के लिए एक लघु नाट्य विधा की आवश्यकता है। हिंदी में कुछ विद्वान जयशंकर प्रसाद के 'एक घूँट' (1929) को प्रथम आधुनिक एकांकी मानते हैं, जबकि कुछ अन्य डॉ. रामकुमार वर्मा के एकांकी 'पृथ्वीराज की आँखें' (1930) को। इन आरंभिक प्रयासों को प्रेरणा देने वाले प्रमुख कारक थे: आधुनिक यथार्थवाद का बढ़ता प्रभाव, जिसने जीवन की छोटी-छोटी समस्याओं पर ध्यान केंद्रित करना सिखाया; रेडियो नाटक की बढ़ती लोकप्रियता, जिसने संवादों की तीक्ष्णता और ध्वनि प्रभावों पर एकांकीकारों का ध्यान केंद्रित किया; और पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होने वाले लघु नाटकों की बढ़ती माँग। इस प्रकार, हिंदी एकांकी अपने आरंभ में शास्त्रीय नाट्य परंपरा और आधुनिक रंगमंच की व्यावहारिकता के बीच एक समन्वय के रूप में विकसित हुई, जिसने इसे न केवल साहित्य की विधा बनाया, बल्कि मंचन कला की दृष्टि से भी एक सशक्त माध्यम बनाया। आरंभिक एकांकीकारों ने मुख्यतः सामाजिक सुधार, राष्ट्रीय चेतना और ऐतिहासिक गौरव जैसे विषयों को अपनी रचनाओं का आधार बनाया, जिससे यह विधा शीघ्र ही लोकप्रिय हो गई।

जयशंकर प्रसाद और 'एक घूँट': हिंदी एकांकी का शास्त्रीय आरंभ

जयशंकर प्रसाद (1889-1937), जो हिंदी नाटक साहित्य में अपने विशाल, ऐतिहासिक और दार्शनिक नाटकों (जैसे 'स्कंदगुप्त' और 'चंद्रगुप्त') के लिए जाने जाते हैं, उनका योगदान एकांकी के क्षेत्र में भी अत्यंत मौलिक रहा है। उनके एकांकी 'एक घूँट' (1929) को अनेक आलोचक हिंदी का पहला आधुनिक एकांकी मानते हैं, जिसने इस

विधा के लिए एक शास्त्रीय आधार तैयार किया। 'एक घूँट' की महत्ता केवल इसके रचनाकाल में नहीं, बल्कि इसके शिल्प और विषयवस्तु में निहित है। विषय की दृष्टि से यह एकांकी प्रेम और विवाह के जटिल संबंध पर केंद्रित है, जहाँ प्रसाद ने यह दिखाने का प्रयास किया है कि प्रेम की अनुभूति जीवन के लिए एक अमृत घूँट के समान होती है, जो जीवन को पूर्णता प्रदान करती है।

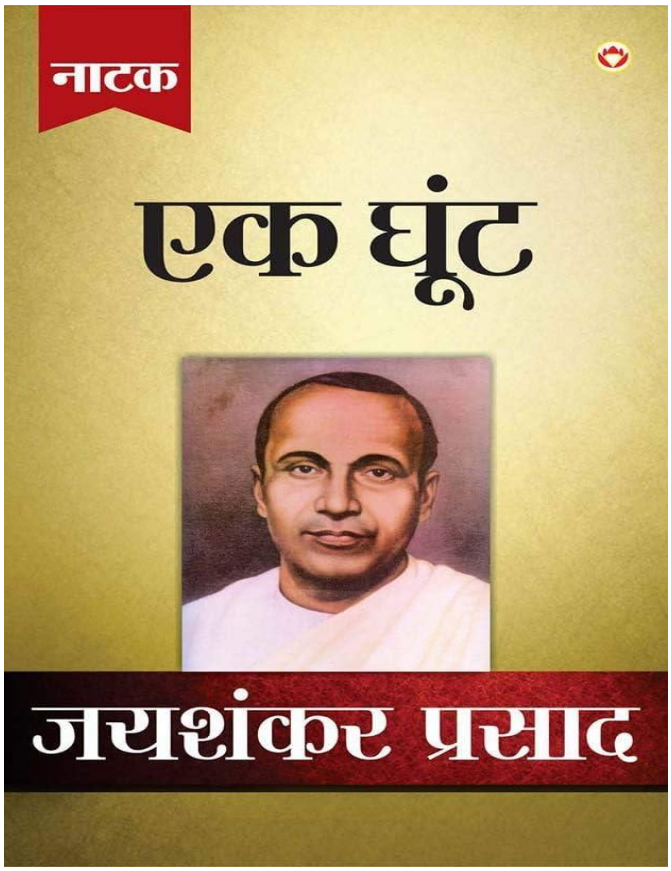

चित्र 4.1: जय शंकर प्रसाद ग्रंथावली एक घूँट

इसमें कथानक का संकेंद्रण स्पष्ट रूप से दिखाई देता है—घटनाएँ और पात्र सीमित हैं, और संवादों के माध्यम से ही समस्या का उद्घाटन और समाधान होता है। 'एक घूँट' में प्रसाद ने संवादों की काव्यात्मकता को भी बनाए रखा है, जो उनके नाटकों की विशेषता है, किंतु यहाँ वह काव्यात्मकता संक्षिप्तता के अनुकूल है। 'एक घूँट' ने एकांकी के स्वरूप को परिभाषित किया। इसने यह स्थापित किया कि एकांकी केवल लघु आकार का नाटक नहीं है, बल्कि यह एक केंद्रित विचार पर आधारित एक स्वतंत्र नाट्य-रूप है। प्रसाद की यह रचना आदर्शोन्मुख यथार्थवाद की ओर झुकाव रखती है,

जहाँ समस्या के साथ-साथ एक दार्शनिक या नैतिक समाधान भी प्रस्तुत किया जाता है। 'एक घूँट' ने हिंदी एकांकीकारों को यह सिखाया कि मंचीयता और साहित्यिक सौंदर्य का सफल समन्वय किस प्रकार किया जा सकता है। यह एकांकी हिंदी नाट्य साहित्य के आधुनिक चरण का प्रवेश द्वार सिद्ध हुआ, जिसने बाद के एकांकीकारों को मनोवैज्ञानिक और प्रयोगधर्मी विषयों की ओर अग्रसर होने की प्रेरणा दी।

स्वातंत्र्योत्तर काल तक विकास: डॉ. रामकुमार वर्मा और ऐतिहासिक/पौराणिक चेतना

जयशंकर प्रसाद के बाद, हिंदी एकांकी का विकास कई धाराओं में हुआ। डॉ. रामकुमार वर्मा (1905-1999) ने इस विकास में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। रामकुमार वर्मा ने हिंदी एकांकी को शास्त्रीयता और साहित्यिक गरिमा प्रदान की। उनका पहला एकांकी 'पृथ्वीराज की आँखें' (1930) ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर आधारित है। वर्मा जी ने मुख्य रूप से ऐतिहासिक, पौराणिक और सामाजिक विषयों पर एकांकी लिखे, जिनमें मानवीय भावनाओं और नैतिक मूल्यों का संघर्ष प्रमुख है। उनके एकांकी संग्रह 'रेशमी टाई' और 'चारुमित्रा' अत्यंत प्रसिद्ध हैं। वर्मा के एकांकी की विशेषता चरित्र-चित्रण की सूक्ष्मता, भावनात्मकता और संवादों की सहजता है। उन्होंने एकांकी में गीत और संगीत का प्रयोग करके उसे एक काव्यात्मक स्पर्श भी दिया। वर्मा जी ने एकांकी को मुख्य रूप से साहित्यिक विधा के रूप में देखा, जिसमें मंचीयता के साथ-साथ भावनात्मक गहराई भी हो। स्वातंत्र्योत्तर काल (Post-Independence Era) में एकांकी का विकास तीन प्रमुख दिशाओं में हुआ: ऐतिहासिक/पौराणिक एकांकी (रामकुमार वर्मा और उदयशंकर भट्ट), सामाजिक यथार्थवादी एकांकी (उपेंद्रनाथ अश्क) और मनोवैज्ञानिक/प्रयोगधर्मी एकांकी (भुवनेश्वर)। इस कालखंड में एकांकी ने न केवल पारिवारिक और सामाजिक समस्याओं (जैसे दहेज, बेमेल विवाह, भ्रष्टाचार) को उठाया, बल्कि व्यक्ति के आंतरिक द्वंद्व और अस्तित्ववादी प्रश्नों को भी अपनी विषय-वस्तु बनाया। एकांकीकारों ने पाश्चात्य अभिव्यक्तिवाद (Expressionism) और प्रतीकवाद (Symbolism) से प्रेरणा लेकर शिल्प में नए-नए प्रयोग किए, जिसने एकांकी को केवल लघु नाटक न रहकर, आधुनिक जीवन की आलोचना का एक सशक्त माध्यम बना दिया।

प्रमुख एकांकीकार : भुवनेश्वर - आधुनिकता, प्रयोगवाद और 'कारवाँ'

भुवनेश्वर (1910-1967) हिंदी एकांकी साहित्य में एक क्रांतिकारी और प्रयोगधर्म एकांकीकार के रूप में जाने जाते हैं। उन्हें हिंदी एकांकी में आधुनिकता औ प्रयोगवाद का प्रवर्तक माना जाता है। उनका एकांकी संग्रह 'कारवाँ' (1935) एक मील का पत्थर है, जिसमें उन्होंने पारंपरिक नाट्य-शिल्प और विषयवस्तु दोनों को चुनौती दी। भुवनेश्वर के एकांकी की सबसे बड़ी विशेषता है: मनोवैज्ञानिक यथार्थवाद और फ्रायडवादी दर्शन का प्रभाव। उन्होंने अचेतन मन (Unconscious Mind), यौन कुंठाओं (Sexual Frustrations), और बुर्जुआ समाज की विसंगतियों को अपने एकांकी का केंद्रीय विषय बनाया। उनके प्रमुख एकांकी जैसे 'टैकिया', 'स्ट्राइक' और 'ऊसर' सामाजिक समस्याओं का चित्रण करते हुए भी अत्यंत प्रतीकात्मक और गूढ़ हैं। भुवनेश्वर ने एकांकी में संवादों के माध्यम से पात्रों की आंतरिक जटिलताओं को उजागर किया। उनकी भाषा तीक्ष्ण, बौद्धिक और कहीं-कहीं व्यंग्यात्मक होती थी। उन्होंने जानबूझकर पारंपरिक कथावस्तु और चरित्र विकास की उपेक्षा की और इसके बजाय एक विचार या एक मनोभाव को प्रधानता दी। भुवनेश्वर का शिल्प अस्पष्टता और रहस्य से भरा होता था, जो पाठक या दर्शक को नाटक के अर्थ को स्वयं खोजने के लिए विवश करता था। 'कारवाँ' में संकलित एकांकियों ने हिंदी एकांकी को सामाजिक यथार्थ की सीमा से निकालकर व्यक्तिगत, मनोवैज्ञानिक और अस्तित्ववादी धरातल पर स्थापित किया। उन्हें हिंदी एकांकी का पहला आधुनिक विद्रोही भी कहा जा सकता है, जिन्होंने अपनी रचनाओं के माध्यम से पारंपरिक रूढ़ियों पर करारा प्रहार किया।

11.5 प्रमुख एकांकीकार

उपेंद्रनाथ अश्क (1910-1996) हिंदी एकांकीकारों में सामाजिक यथार्थवाद और मध्यमवर्गीय जीवन के चित्रण के लिए सर्वाधिक प्रसिद्ध हैं। जहाँ भुवनेश्वर ने अचेतन मन को केंद्र बनाया, वहीं अश्क ने सचेतन जीवन और दैनिक संघर्षों को अपनी रचनाओं का आधार बनाया। अश्क के एकांकी मंचीयता की दृष्टि से अत्यंत सफल माने जाते हैं, क्योंकि उनकी भाषा सहज, संवाद तीक्ष्ण और कथावस्तु सुगठित होती है। उनका प्रमुख एकांकी संग्रह 'अधिकार का रक्षक' और 'चरवाहे' अत्यंत लोकप्रिय हुए।

अश्क ने अपने एकांकियों में मध्यमवर्गीय समाज की विसंगतियों—जैसे आर्थिक तंगी, दिखावा, पारिवारिक कलह, पति-पत्नी के संबंध और सामाजिक रूढ़ियाँ—का सजीव चित्रण किया। उनके एकांकी जैसे 'तौलिये' और 'सूखी डाली' मध्यमवर्गीय परिवार के मानसिक द्वंद्व और छोटी-छोटी समस्याओं को बड़े ही संवेदनशील ढंग से प्रस्तुत करते हैं। 'सूखी डाली' में जहाँ उन्होंने पारिवारिक मर्यादा और नई पीढ़ी की स्वतंत्रता के बीच के संघर्ष को दर्शाया है, वहीं उनके अन्य एकांकी दफ्तरों की राजनीति और सामाजिक पाखंड पर व्यंग्य करते हैं। अश्क का शिल्प सीधा और स्पष्ट होता था; वे अनावश्यक प्रतीकात्मकता से बचते थे और पात्रों के संवादों को उनके सामाजिक वर्ग और मनोवैज्ञानिक स्थिति के अनुकूल रखते थे। उन्होंने हिंदी एकांकी को आम आदमी की समस्याओं से जोड़ा और इसे एक व्यावहारिक मंचन कला के रूप में स्थापित किया। अश्क की सबसे बड़ी देन यह है कि उन्होंने एकांकी को जीवन के प्रति सहज, सरल और यथार्थवादी दृष्टिकोण प्रदान किया, जिसने इसे जन-जन तक पहुँचाया।

चित्र 4.2: उपेंद्रनाथ अश्क (1910-1996)

प्रमुख एकांकीकार (3): लक्ष्मीनारायण लाल और अन्य - प्रतीकात्मकता, ग्रामीण चेतना और नव-प्रयोग

लक्ष्मीनारायण लाल (1927-1987) स्वातंत्र्योत्तर काल के एक महत्त्वपूर्ण एकांकीकार हैं, जिन्होंने अपनी रचनाओं में प्रतीकात्मकता और ग्रामीण जीवन के नए पहलुओं को

उभारा। लाल जी ने एकांकी में पौराणिक और लोक-कथाओं के तत्त्वों का प्रयोग करके उसे एक नया आयाम दिया। उनके एकांकी संग्रह 'ताजमहल के आँसू' और 'पर्वत के पीछे' विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। लाल जी ने जहाँ स्त्री-पुरुष संबंधों की जटिलताओं को उठाया, वहीं उन्होंने ग्रामीण समाज की रूढ़ियाँ और परिवर्तन की बयार को भी अपनी कथावस्तु का आधार बनाया। उनकी शैली में प्रतीक और मिथक का सुंदर मिश्रण देखने को मिलता है। अन्य प्रमुख एकांकीकार जिन्होंने हिंदी एकांकी के विकास को बहुआयामी बनाया, उनमें सेठ गोविंद दास (जिन्होंने सामाजिक और राजनीतिक समस्याओं पर एकांकी लिखे), विष्णु प्रभाकर (जिन्होंने देशभक्ति और सामाजिक सुधार पर ध्यान केंद्रित किया) और मोहन राकेश (जिन्होंने आधुनिक जीवन की संवेदनहीनता और अकेलापन को उभारा) शामिल हैं। मोहन राकेश का 'अंडे के छिलके' मध्यमवर्गीय जीवन की दंभपूर्णता पर एक व्यंग्यात्मक एकांकी है। इस दौर में एकांकी ने जीवन के हर पहलू को छूआ। कुछ एकांकीकार असंगतिवादी (Absurdist) नाटक से प्रभावित हुए, तो कुछ ने शुद्ध मनोवैज्ञानिक विश्लेषण को अपनाया। इस प्रकार, लक्ष्मीनारायण लाल से लेकर इस पीढ़ी के अन्य एकांकीकारों ने हिंदी एकांकी को प्रयोग और विस्तार के एक ऐसे चरण में पहुँचाया, जहाँ वह साहित्यिक, मनोवैज्ञानिक, सामाजिक और दार्शनिक सभी स्तरों पर आधुनिक चेतना का प्रतिनिधित्व करने लगा। उन्होंने यह सिद्ध किया कि संक्षिप्तता किसी विधा की सीमा नहीं, बल्कि उसकी शक्ति हो सकती है।

हिंदी एकांकी की यात्रा जयशंकर प्रसाद के 'एक घूँट' के शास्त्रीय आरंभ से शुरू होकर भुवनेश्वर के प्रयोगवाद, रामकुमार वर्मा के भावनात्मक विस्तार, उपेंद्रनाथ अश्क के मध्यमवर्गीय यथार्थवाद और लक्ष्मीनारायण लाल के प्रतीकात्मक नवोन्मेष तक एक बहुमुखी और सफल साहित्यिक यात्रा रही है। इस यात्रा ने यह सिद्ध किया कि एकांकी केवल लघु आकार का नाटक नहीं है, बल्कि यह जीवन के एक केंद्रित सत्य को तीव्रता और प्रभावोत्पादकता के साथ प्रस्तुत करने वाली एक स्वतंत्र और सशक्त नाट्य विधा है। एकांकी ने समय के साथ अपनी विषय-वस्तु और शिल्प दोनों में परिवर्तन किया है, जिसने इसे प्रत्येक कालखंड के लिए प्रासंगिक बनाए रखा। इसकी संक्षिप्तता ने इसे न केवल मंचन के लिए, बल्कि रेडियो और टेलीविजन जैसे नए माध्यमों के लिए भी आदर्श बनाया। वर्तमान संदर्भ में, एकांकी की प्रासंगिकता और भी बढ़ गई है। आज

के डिजिटल युग में, जहाँ लोगों का ध्यान तेजी से बदलता है, एकांकी की तीव्र गति और केंद्रित कथानक दर्शकों और पाठकों को त्वरित और गहन भावनात्मक अनुभव प्रदान करने की क्षमता रखता है। यह विधा आज भी सामाजिक चेतना, राजनीतिक विसंगतियों और मानवीय मन के सूक्ष्म द्वंद्वों को प्रभावी ढंग से उठाने का काम कर रही है। हिंदी एकांकी, इस प्रकार, आधुनिक नाट्य-शिल्प की विजय और मानवीय सत्य की गहन खोज का प्रतीक है।

11.6 सारांश

हिंदी एकांकी ने प्रसाद के आदर्शवाद से आरंभ होकर भुवनेश्वर के प्रयोगवाद, अश्क के सामाजिक यथार्थवाद और लाल की प्रतीकात्मकता तक विविध यात्रा की। यह विधा संक्षिप्तता में गहनता प्रस्तुत करती है और आधुनिक जीवन की जटिलताओं को मंचीय कला के माध्यम से सशक्त अभिव्यक्ति प्रदान करती है।

11.7 इकाई अंत अभ्यास

1. एकांकी की परिभाषा देते हुए इसकी प्रमुख विशेषताओं को स्पष्ट कीजिए और पूर्ण नाटक से इसका अंतर बताइए।
2. हिंदी एकांकी के विकास में जयशंकर प्रसाद और डॉ. रामकुमार वर्मा के योगदान का विवेचन कीजिए।
3. भुवनेश्वर और उपेंद्रनाथ अश्क की एकांकी शैली की तुलनात्मक समीक्षा प्रस्तुत कीजिए।

11.8 संदर्भ एवं अनुसंशित पठन सामाग्री

1. रघुवंश – *हिंदी एकांकी का विकास, राजकमल प्रकाशन* दिल्ली *1960*
2. टेंगसे अजय -एकांकी संकलन, वाणी प्रकाशन दिल्ली 2016
3. तिवारी रामचंद्र – *हिंदी नाटक और एकांकी साहित्य, लोक प्रकाशन, दिल्ली 2009.*

अपनी प्रगति की जाँच करें

1. **हिंदी एकांकी के उद्भव और विकास की परंपरा का संक्षेप में वर्णन कीजिए।**

---

2. **हिंदी एकांकी की प्रमुख विशेषताओं और उद्देश्यों को उदाहरण सहित स्पष्ट कीजिए।**

इकाई 12 प्रतिनिधि एकांकियाँ

संरचना

12.1 परिचय

12.2 उद्देश्य

12.3 प्रतिनिधि एकांकियाँ

12.4 सारांश

12.5 इकाई अंत अभ्यास

12.6 संदर्भ एवं अनुसंशित पठन सामाग्री

12.1 परिचय

प्रतिनिधि एकांकियाँ हिंदी एकांकी साहित्य के विकास और विविधता को दर्शाती हैं। प्रसाद का 'आकाशदीप' आदर्शवादी त्याग का प्रतीक है जबकि अश्क की रचनाएँ मध्यवर्गीय यथार्थ को प्रस्तुत करती हैं।

12.2 उद्देश्य

- जयशंकर प्रसाद के 'आकाशदीप' की कथावस्तु और चम्पा-बुद्धगुप्त के आदर्शवादी चरित्र-चित्रण का गहन विश्लेषण करना।
- 'आकाशदीप' में प्रयुक्त काव्यात्मक भाषा, बिम्ब-विधान और समुद्री यात्रा की प्रतीकात्मकता को समझना।
- उपेंद्रनाथ अश्क की सामाजिक यथार्थवादी एकांकियों और अन्य प्रमुख एकांकीकारों के योगदान का अध्ययन करना।

12.3 प्रतिनिधि एकांकियाँ

जयशंकर प्रसाद (1889-1937) द्वारा रचित 'आकाशदीप' हिंदी साहित्य की एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण और बहुचर्चित रचना है, जिसे कहानी और एकांकी दोनों विधाओं के बीच की कड़ी माना जाता है। कथासूत्र अत्यंत संक्षिप्त किंतु प्रतीकात्मक है: बंदी जीवन से मुक्त हुए दो मुख्य पात्र—चम्पा (प्रतिशोध की भावना से ग्रसित) और बुद्धगुप्त (एक जलदस्यु, जो अंततः प्रेम में बदल जाता है)—एक अज्ञात द्वीप पर पहुँचते हैं। कथा का संपूर्ण सौंदर्य इस बात में

निहित है कि दोनों पात्र अपने-अपने नैतिक आदर्शों और परस्पर प्रेम के बीच फँस जाते हैं। बुद्धगुप्त चम्पा को अपनी शक्ति और प्रेम अर्पित करता है, जबकि चम्पा अपने पिता के हत्यारे का प्रतिशोध और अपने कर्तव्य के बीच चुनना चाहती है। यह एकांकी/कहानी, जिसे आलोचक अक्सर प्रसाद के आंतरिक नाट्य-संघर्ष का उत्कृष्ट उदाहरण मानते हैं, कथा के बाह्य विस्तार की जगह पात्रों के मन के द्वंद्व को ही अपना केंद्रीय आधार बनाती है। '

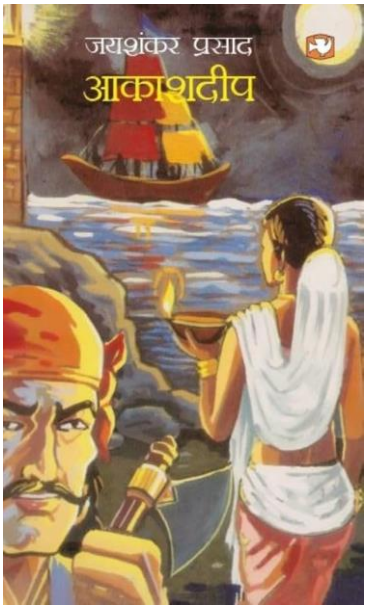

चित्र 4.3: जयशंकर प्रसाद (1889-1937) द्वारा रचित 'आकाशदीप'

'आकाशदीप' की कथावस्तु का विस्तृत विश्लेषण: प्रतिशोध से प्रेम और कर्तव्य तक

'आकाशदीप' की कथावस्तु का विन्यास अत्यंत सुगठित और नाटकीय है, जो इसकी एकांकी स्वरूप को बल प्रदान करता है। कहानी का आरंभ एक नाटकीय क्षण से होता है: समुद्री यात्रा के दौरान बंदी बनाए गए चम्पा और बुद्धगुप्त का कारागार से मुक्त होना। कथावस्तु के विकास में तीन प्रमुख चरण हैं:

1. बंधन और मुक्ति का चरण: नाव के कारागार में दोनों का परिचय होता है। बुद्धगुप्त अपनी शक्ति और क्रूरता के बावजूद चम्पा के प्रति आकर्षित होता है।
2. प्रेम और शक्ति का द्वंद्व: एक सुरक्षित द्वीप पर पहुँचने के बाद, बुद्धगुप्त अपनी महत्त्वाकांक्षाओं को त्यागकर चम्पा के सामने समर्पण करता है। वह चम्पा को उस

द्वीप की रानी बनने और अपनी सारी संपत्ति की स्वामिनी बनने का प्रस्ताव देता है। यह चरण प्रेम और भौतिक सुख के चरम आकर्षण को दर्शाता है। बुद्धगुप्त की ओर से यह प्रस्ताव शक्ति के त्याग का प्रतीक है।

3. आदर्शवाद और कर्तव्य का चरमोत्कर्ष: कथा का चरमोत्कर्ष तब आता है जब चम्पा बुद्धगुप्त के प्रेम और समर्पण को स्वीकार करने से इनकार कर देती है। उसका निर्णय किसी व्यक्तिगत घृणा पर आधारित नहीं है, बल्कि उसके कर्तव्य, आत्म-सम्मान और नैतिक आदर्शवाद पर आधारित है। वह अपने पिता के बलिदान को नहीं भूल सकती और एक जलदस्यु की प्रेमिका बनकर भौतिक सुख को स्वीकार नहीं कर सकती। वह द्वीप पर रहकर आकाशदीप जलाकर उन भटके हुए नाविकों की सेवा करने का व्रत लेती है, जिनकी सेवा उसके पिता करते थे। बुद्धगुप्त अपने अपार दुःख के साथ भारत लौट जाता है।

कथावस्तु का यह संकेंद्रण बाह्य क्रियाकलापों के बजाय मानसिक निर्णयों पर केंद्रित है। चम्पा का अंतिम निर्णय ही पूरी कथावस्तु का नैतिक और दार्शनिक सार प्रस्तुत करता है, जिससे यह रचना एक साधारण प्रेम कहानी न रहकर आदर्शवादी चेतना का दस्तावेज बन जाती है।

चम्पा और बुद्धगुप्त: आदर्शवाद और त्याग के द्वंद्व का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण

'आकाशदीप' का मुख्य आकर्षण इसके दो केंद्रीय पात्रों—चम्पा और बुद्धगुप्त—के बीच चलने वाला आदर्शवाद और त्याग का मनोवैज्ञानिक द्वंद्व है। यह द्वंद्व केवल दो प्रेमियों के बीच का नहीं है, बल्कि भौतिक सुख बनाम नैतिक कर्तव्य का है।

बुद्धगुप्त: वह पुरुष-सत्ता और भौतिक महत्त्वाकांक्षा का प्रतिनिधित्व करता है, जो अपने बाहुबल और धन से जीवन की हर चीज़ को जीतना चाहता है। उसका प्रेम भी प्रभुत्व और अधिकार की भावना से शुरू होता है, लेकिन चम्पा के प्रभाव में वह अपने अंदर के कोमल मनुष्य को खोजता है। चम्पा के लिए वह अपनी दस्यु-वृत्ति को त्यागकर एक सभ्य जीवन जीने का प्रस्ताव रखता है। बुद्धगुप्त का त्याग इस बात में है कि वह अपने चरम प्रेम को अस्वीकार किए जाने के बाद भी चम्पा को बलपूर्वक नहीं

रोकता, बल्कि उसके आदर्श का सम्मान करते हुए चुपचाप द्वीप छोड़कर चला जाता है। यह उसका अधिकार का त्याग और चम्पा के आत्म-सम्मान की स्वीकृति है।

चम्पा: वह त्याग, आत्म-सम्मान और नैतिक आदर्शवाद का प्रतीक है। उसका द्वंद्व अत्यंत जटिल है। एक ओर बुद्धगुप्त के प्रति गहरा प्रेम और उसके द्वारा दिए जा रहे रानी पद का सुख है, दूसरी ओर मृत पिता के प्रति कर्तव्य, अपने कुल का गौरव और प्रतिशोध की भावना है। चम्पा का आदर्शवाद यह है कि वह बुद्धगुप्त के प्रेम को स्वीकार करके अपने नैतिक सत्य से समझौता नहीं कर सकती। उसका त्याग केवल प्रेम का त्याग नहीं है, बल्कि स्त्री-सुलभ सुख, गृहस्थी की कामना और भौतिक समृद्धि का त्याग है। वह अपने जीवन को सेवा और परोपकार के लिए समर्पित करती है। चम्पा का यह निर्णय प्रसाद के रोमानी-आदर्शवादी दर्शन का चरमोत्कर्ष है, जहाँ व्यक्तिगत प्रेम की पूर्णता से ऊपर नैतिक गरिमा और मानवता के लिए त्याग को स्थापित किया जाता है। मनोवैज्ञानिक रूप से, चम्पा अपनी मुक्ति बुद्धगुप्त के प्रेम में नहीं, बल्कि आकाशदीप की सेवा में पाती है, जो उसके पिता के आदर्शों का प्रतीक है।

. चम्पा का त्याग: नारी चेतना, आत्म-गौरव और प्रसाद के नायकों का नैतिक उत्कर्ष

चम्पा का चरित्र और उसका अंतिम निर्णय हिंदी साहित्य में नारी-चरित्र की एक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है, जो उसे साधारण प्रेमिका या नायिका की भूमिका से ऊपर उठाकर एक नैतिक आदर्श के रूप में स्थापित करता है। चम्पा का त्याग प्रसाद के आदर्शवादी दृष्टिकोण का प्रतिनिधित्व करता है और नारी चेतना के एक विशिष्ट उत्कर्ष को दर्शाता है। चम्पा का आत्म-गौरव उसके इस निर्णय में झलकता है कि वह एक जलदस्यु की प्रेमिका बनकर सुख स्वीकार नहीं कर सकती। उसका आत्म-सम्मान किसी भी कीमत पर खरीदी गई रानी के पद को नकारता है। यह निर्णय केवल प्रतिशोध तक सीमित नहीं है, बल्कि यह स्व-निर्णय (Self-Determination) और नैतिक स्वतंत्रता की अभिव्यक्ति है। उस युग में, जब नारी-पात्रों को प्रेम या पारिवारिक बंधन के लिए त्याग करते दिखाया जाता था, चम्पा का त्याग व्यापक मानवतावादी कर्तव्य के लिए है। वह द्वीप पर रुककर आकाशदीप जलाना चुनती है, जो भटके हुए

लोगों को राह दिखाने का एक महान कार्य है। यह कार्य उसके पिता के जीवन-कार्य का विस्तार है, और इस प्रकार वह अपने पिता के आदर्शों को अपने जीवन का लक्ष्य बनाकर उन्हें चिरस्थायी करती है। प्रसाद के नाटकों और कहानियों में अक्सर नायक या नायिकाएँ व्यक्तिगत सुख को त्यागकर महान नैतिक उद्देश्य को अपनाते हैं। चम्पा भी उसी परंपरा का निर्वाह करती है। उसका अंतिम कार्य—आकाशदीप जलाना—सिर्फ एक क्रिया नहीं है, यह भारतीय नारी के उस उदात्त आदर्श का प्रतीक है, जो स्वार्थ से ऊपर उठकर परोपकार और त्याग को जीवन का सबसे बड़ा मूल्य मानता है। चम्पा का अकेलापन, उसका शांत जीवन और उसका नैतिक उत्कर्ष उसे एक अमर, स्मरणीय चरित्र बनाते हैं, जो प्रेम के आकर्षण से अधिक कर्तव्य की गरिमा को महत्त्व देता है। यह त्याग दिखाता है कि सच्चा गौरव भौतिक लाभ या सत्ता में नहीं, बल्कि नैतिक दृढ़ता और आत्म-सम्मान में निहित है।

'आकाशदीप' में प्रसाद की काव्यात्मक भाषा: बिम्ब-विधान और संवादों का सौंदर्य

जयशंकर प्रसाद मूलतः कवि थे, और उनकी कहानियों और एकांकियों पर उनकी काव्यात्मक भाषा (Poetic Language) का गहरा प्रभाव स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। 'आकाशदीप' इस काव्यात्मकता का उत्कृष्ट उदाहरण है, जो इसे एक साधारण गद्य रचना से ऊपर उठाकर गद्य-काव्य के स्तर पर स्थापित करता है।

1. संवादों का सौंदर्य: 'आकाशदीप' के संवाद संक्षिप्त, मार्मिक और अत्यंत भावुक हैं। वे केवल सूचनाएँ नहीं देते, बल्कि पात्रों के आंतरिक मन को उद्घाटित करते हैं। उदाहरण के लिए, बुद्धगुप्त और चम्पा के बीच के संवादों में प्रेम, घृणा, प्रतिशोध और समर्पण की भावनाएँ एक-दूसरे से टकराती हैं, जिससे एक नाटकीय तनाव उत्पन्न होता है। संवादों में संस्कृतनिष्ठ शब्दों का प्रयोग प्रसाद की विशिष्ट शैली है, जो उन्हें उदात्तता और गरिमा प्रदान करता है।
2. बिम्ब-विधान और चित्रात्मकता: प्रसाद की भाषा बिम्ब-विधान से समृद्ध है। वे ऐसे शब्दों का चयन करते हैं जो पाठक के मन में समुद्र, रात्रि, तूफान, कारागार और द्वीप के सजीव चित्र उपस्थित कर देते हैं। "समुद्र की लहरों का कलरव", "नक्षत्रों की मंद दीप्ति" और "आकाशदीप की जलती लौ" जैसे बिम्ब कहानी के वातावरण

को रहस्यमय और रोमानी बनाते हैं। ये बिम्ब केवल वर्णन के लिए नहीं हैं, बल्कि वे प्रतीकात्मक भी हैं; जैसे समुद्र जीवन की जटिलताओं का, और आकाशदीप मार्गदर्शन और आशा का प्रतीक है।

3. लय और संगीत: प्रसाद का गद्य एक विशिष्ट लय और ध्वनि-सौंदर्य से युक्त होता है, जो इसे पढ़ते समय एक संगीतबद्धता का आभास देता है। यह लयबद्धता उनकी काव्य प्रतिभा का परिणाम है। इस प्रकार, भाषा 'आकाशदीप' में केवल एक माध्यम नहीं है, बल्कि यह स्वयं एक कलाकृति बन जाती है, जो कहानी के रोमानी और आदर्शवादी दर्शन को पूर्णता प्रदान करती है। भाषा की यह सघनता ही इस रचना को अमर बनाती है और पाठकों को एक अविस्मरणीय भावात्मक अनुभव प्रदान करती है।

समुद्री यात्रा और आकाशदीप: प्रतीकात्मकता का गहन दार्शनिक अर्थ

'आकाशदीप' की कथाभूमि—समुद्र और द्वीप—और इसका शीर्षक—आकाशदीप—गहन प्रतीकात्मकता से भरे हैं, जो कहानी को एक दार्शनिक अर्थ प्रदान करते हैं। यह प्रतीकात्मकता प्रसाद की गहन चिंतनशील प्रवृत्ति को दर्शाती है।

1. समुद्र का प्रतीक: कहानी में समुद्र जीवन की विशालता, अनिश्चितता, अस्थिरता और संघर्ष का प्रतीक है। यह वह क्षेत्र है जहाँ मनुष्य अपनी इच्छाओं (बुद्धगुप्त की महत्त्वाकांक्षा) और अपनी नियति (चम्पा का अकेलापन) के बीच संघर्ष करता है। समुद्री यात्रा मानव जीवन की यात्रा का प्रतीक है, जो खतरों और अज्ञात स्थानों से भरी हुई है।
2. द्वीप का प्रतीक: द्वीप एकांतता, आत्म-निर्वासन और आत्म-शुद्धि का प्रतीक है। यह वह स्थान है जहाँ चम्पा और बुद्धगुप्त दुनिया के शोर से दूर होकर, अपने मूल सत्य का सामना करते हैं। यह द्वीप चम्पा के लिए तपस्या का स्थान बन जाता है, जहाँ वह अपनी अहंकार और प्रतिशोध की भावना को त्यागकर सेवा के मार्ग को अपनाती है।
3. आकाशदीप का प्रतीक: आकाशदीप कहानी का केंद्रीय और सबसे महत्त्वपूर्ण प्रतीक है। यह ज्ञान, आशा, नैतिक मार्गदर्शन और कर्तव्य का प्रतीक है। चम्पा जब यह दीप जलाना चुनती है, तो वह केवल भटके हुए नाविकों को ही नहीं, बल्कि

स्वयं को और बुद्धगुप्त को भी एक नैतिक राह दिखाती है। यह त्याग का प्रतीक है, जो भौतिक सुखों के अंधेरे में आदर्शवाद की ज्योति जलाता है। बुद्धगुप्त के प्रेम को अस्वीकार करके चम्पा उस व्यक्तिगत सुख को त्याग देती है, जो उसके लिए एक भटकाव हो सकता था, और मानवता की सेवा के उस शाश्वत दीप को चुनती है, जो उसे अमरता प्रदान करता है। इस गहन प्रतीकात्मकता के कारण ही 'आकाशदीप' केवल एक कहानी न रहकर एक दार्शनिक उपदेश बन जाती है।

'आकाशदीप' की विधागत स्थिति: कहानी या एकांकी? आधुनिक आलोचना के संदर्भ में

'आकाशदीप' को लेकर हिंदी आलोचना में सदैव यह प्रश्न रहा है कि इसे कहानी माना जाए या एकांकी। यह विधागत अनिश्चितता स्वयं प्रसाद की लेखन शैली की विशेषता है, जहाँ गद्य में भी नाटकीयता का समावेश होता है।

कहानी के पक्ष में तर्क:

- यह रचना मूलतः 'इंद्रजाल' नामक कहानी संग्रह में संकलित है।
- इसमें कथात्मकता और विवरणात्मक अंशों की प्रधानता है जो एकांकी से अधिक कहानी की विशेषता है।
- इसमें एकांकी के अनिवार्य तत्व जैसे 'संघर्ष की एक ही चरम सीमा' का अभाव है, क्योंकि संघर्ष आंतरिक और दीर्घकालिक है।

एकांकी के पक्ष में तर्क:

- एक अंक का नाटक: इसमें केवल एक ही महत्त्वपूर्ण घटना और दृश्य (समुद्र या द्वीप का एक कोना) केंद्रित है।
- संवादों की प्रधानता: कथावस्तु का विकास, पात्रों का मानसिक द्वंद्व और चरमोत्कर्ष तक पहुँचना मुख्य रूप से संवादों के माध्यम से होता है, जो एकांकी का प्राण तत्व है।

- स्थान और काल की एकाग्रता: पूरी कथा एक नाव या एक द्वीप तक सीमित है, और समय का अंतराल भी अत्यधिक लंबा नहीं खींचा गया है (यद्यपि अंत में वर्षों का उल्लेख है, मुख्य संघर्ष एक ही समय में घटित होता है)।
- केंद्रीय द्वंद्व: पूरी रचना केवल चम्पा के नैतिक निर्णय नामक एक केंद्रीय मनोवैज्ञानिक द्वंद्व पर केंद्रित है, जो एकांकी की अनिवार्य शर्त है।

आधुनिक आलोचना का मत: आधुनिक आलोचक 'आकाशदीप' को एक "नाटकीय कहानी" या "संवाद-प्रधान कहानी" मानना अधिक उचित समझते हैं। यह रचना हिंदी एकांकी के विकास की प्रारंभिक अवस्था में लिखी गई थी, जब एकांकी का स्वरूप पूरी तरह से परिपक्व नहीं हुआ था। यह उस समय की रचना है जब लेखक कथा और नाटक की सीमाओं को तोड़कर नए शिल्प का निर्माण कर रहे थे। 'आकाशदीप' को आदर्शवादी एकांकी परंपरा का एक महत्त्वपूर्ण आरंभिक बिन्दु माना जा सकता है, जिसने बाद में रामकुमार वर्मा और उदयशंकर भट्ट जैसे एकांकीकारों को प्रेरित किया।

'साँझी चूल्हा' और उपेंद्रनाथ अश्क का सामाजिक यथार्थवादी एकांकी

'आकाशदीप' के रोमानी आदर्शवाद से हटकर, उपेंद्रनाथ अश्क (1910-1996) और उनके समकालीन लेखकों ने सामाजिक यथार्थवाद पर आधारित एकांकियों की रचना की। अश्क को हिंदी एकांकी में मध्यमवर्गीय जीवन के चित्रण का सर्वश्रेष्ठ कलाकार माना जाता है। यद्यपि अश्क का प्रसिद्ध एकांकी 'सूखी डाली' या 'तौलिये' है, यहाँ हम 'साँझी चूल्हा' जैसे विषयों को उनके यथार्थवादी दृष्टिकोण के प्रतिनिधि के रूप में विश्लेषित करेंगे।

विषय-वस्तु और यथार्थवाद: अश्क के एकांकी आम आदमी के जीवन की छोटी-छोटी, लेकिन गंभीर समस्याओं को उठाते हैं। 'साँझी चूल्हा' (या सांझा चूल्हा) जैसे शीर्षक पारिवारिक टूटन, आर्थिक तंगी, बेमेल संबंध, दिखावा और घरेलू कलह को दर्शाते हैं। ये एकांकी किसी महानायकीय आदर्शवाद को नहीं प्रस्तुत करते, बल्कि दैनिक जीवन की नीरसता और मध्यमवर्गीय नैतिकता के खोखलेपन को उजागर करते हैं। अश्क का यथार्थवाद इतना तीक्ष्ण है कि वह पात्रों की कमजोरियों और छद्मवेशों को बिना किसी आवरण के सामने ले आता है।

शिल्प और मंचीयता: अश्क के एकांकी की सबसे बड़ी विशेषता उनकी उच्च मंचीयता (High Stage-ability) है। संवाद सहज, बोलचाल की भाषा में और अत्यंत तीक्ष्ण होते हैं, जो सीधे दर्शकों के दिल पर प्रभाव डालते हैं। एकांकी का वातावरण और स्थान भी अत्यंत परिचित (जैसे बैठक, रसोई, गलियारा) होता है, जिससे दर्शक तुरंत उनसे जुड़ जाते हैं। अश्क के एकांकी में चरमोत्कर्ष भी अत्यंत सहज और दैनिक होता है—कोई बड़ी त्रासदी नहीं, बल्कि एक छोटा-सा भावनात्मक विस्फोट या एक तीखा व्यंग्य ही समस्या का समाधान या अंत होता है। इस प्रकार, अश्क ने एकांकी को काव्यात्मक भव्यता के धरातल से उतारकर रोजमर्रा के जीवन के यथार्थ से जोड़ा, जिससे यह विधा आम जनता के बीच लोकप्रिय हो सकी।

अन्य प्रमुख एकांकियों का परिचय: भुवनेश्वर का प्रयोगवाद और रामकुमार वर्मा की भावनात्मकता

हिंदी एकांकी का विकास केवल प्रसाद या अश्क तक सीमित नहीं रहा; इसे बहुमुखी आयाम देने में कई अन्य महत्त्वपूर्ण एकांकीकारों का योगदान रहा। दो प्रमुख धाराएँ भुवनेश्वर के मनोवैज्ञानिक प्रयोगवाद और रामकुमार वर्मा के ऐतिहासिक-भावनात्मक एकांकी की थीं। मनोवैज्ञानिक प्रयोगवाद भुवनेश्वर हिंदी एकांकी के क्षेत्र में आधुनिकता और प्रयोगवाद के प्रवर्तक माने जाते हैं। उनके एकांकी, जैसे 'कारवाँ' (संग्रह) और 'स्ट्राइक', सामाजिक यथार्थ से हटकर व्यक्ति की आंतरिक चेतना, यौन कुंठाओं और बुर्जुआ समाज की विसंगतियों पर केंद्रित हैं। भुवनेश्वर पर फ्रायडवाद और पाश्चात्य अभिव्यक्तिवाद का गहरा प्रभाव है। उनके एकांकी अस्पष्ट, प्रतीकात्मक और बौद्धिक होते हैं। वे पारंपरिक कथावस्तु, चरित्र विकास और स्पष्ट चरमोत्कर्ष से बचते हैं। 'कारवाँ' के एकांकी मनुष्य के अचेतन मन को टटोलते हैं और आधुनिक जीवन के अकेलेपन और अलगाव को दर्शाते हैं। उनका शिल्प हिंदी एकांकी के लिए एक विद्रोही कदम था, जिसने इसे साहित्यिक गंभीरता प्रदान की। ऐतिहासिक और भावनात्मक एकांकी डॉ. रामकुमार वर्मा ने एकांकी को शास्त्रीय स्वरूप दिया। उनका पहला एकांकी 'पृथ्वीराज की आँखें' ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर आधारित है। वर्मा जी के एकांकी मुख्य रूप से ऐतिहासिक गौरव, पौराणिक कथाओं और नैतिक मूल्यों के द्वंद्व पर केंद्रित होते हैं। उनके एकांकी, जैसे 'रेशमी टाई' (संग्रह), भावनात्मकता, काव्यात्मक भाषा और चरित्र-चित्रण की सूक्ष्मता के लिए जाने जाते हैं। वे अक्सर अपने

एकांकियों में प्रेम, त्याग और आदर्श को एक साथ पिरोते हैं।

लक्ष्मीनारायण लाल और स्वातंत्र्योत्तर एकांकी: नव-प्रयोग और ग्रामीण चेतना

लक्ष्मीनारायण लाल (1927-1987) स्वातंत्र्योत्तर (Post-Independence) हिंदी एकांकी के महत्त्वपूर्ण हस्ताक्षर हैं, जिन्होंने इस विधा में नव-प्रयोग किए और इसे ग्रामीण चेतना से जोड़ा। ग्रामीण और लोक तत्त्व: लाल जी ने अपने एकांकियों में शहरी समस्याओं से हटकर ग्रामीण जीवन, लोक-संस्कृति और लोक-विश्वासों को केंद्र में रखा।

12.4 सारांश

प्रतिनिधि एकांकियों में 'आकाशदीप' आदर्शवादी त्याग और नारी-चेतना का उत्कृष्ट उदाहरण है। अश्क ने मध्यवर्गीय जीवन को यथार्थवादी धरातल पर प्रस्तुत किया। भुवनेश्वर, रामकुमार वर्मा और लाल ने प्रयोगवाद, भावनात्मकता और प्रतीकात्मकता से एकांकी को समृद्ध किया। ये रचनाएँ हिंदी एकांकी की बहुआयामिता को दर्शाती हैं।

12.5 इकाई अंत अभ्यास

1. 'आकाशदीप' की कथावस्तु का सारांश देते हुए चम्पा के चरित्र और उसके त्याग का विश्लेषण कीजिए।
2. 'आकाशदीप' में प्रयुक्त प्रतीकात्मकता—समुद्र, द्वीप और आकाशदीप—का दार्शनिक अर्थ स्पष्ट कीजिए।
3. उपेंद्रनाथ अश्क और भुवनेश्वर की एकांकी-शैली की विशेषताओं का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत कीजिए।

12.6 संदर्भ एवं अनुसंशित पठन सामाग्री

1. कुमार सिद्धनाथ , हिन्दी एकांकी, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली 2009.
2. विद्यालंकार चंद्रगुप्त , हिन्दी एकांकी, नेशनल बुक ट्रस्ट, नई दिल्ली 2011.
3. महेन्द्ररामचरण , *हिन्दी एकांकी और एकांकीकार*, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली 1970.

अपनी प्रगति की जाँच करें

1. **किसी एक प्रतिनिधि हिंदी एकांकी का नाम लिखिए और उसकी प्रमुख विशेषताओं का वर्णन कीजिए।**

---

2. **प्रसिद्ध एकांकिकारों (जैसे— जयशंकर प्रसाद, लक्ष्मी नारायण लाल या उपेन्द्रनाथ अश्क) की एकांकियों की विषयवस्तु और शैली पर संक्षेप में चर्चा कीजिए।**

इकाई 13 लघु उपन्यास परंपरा और प्रवृत्तियाँ

संरचना

13.1 परिचय

13.2 उद्देश्य

13.3 लघु उपन्यास: परिभाषा और स्वरूप

13.4 प्रमुख लघु उपन्यास

13.5 सारांश

13.6 इकाई अंत अभ्यास

13.7 संदर्भ एवं अनुसंशित पठन सामाग्री

13.1 परिचय

लघु उपन्यास कहानी और उपन्यास के मध्य एक विशिष्ट विधा है जो संक्षिप्तता में गहनता प्रस्तुत करती है। यह जीवन के एक केंद्रित पक्ष को मनोवैज्ञानिक विश्लेषण के साथ प्रस्तुत करती है।

13.2 उद्देश्य

- लघु उपन्यास की परिभाषा, स्वरूप और उपन्यास-कहानी के बीच इसकी विशिष्ट स्थिति को समझना।
- हिंदी साहित्य में लघु उपन्यास का ऐतिहासिक विकास और शिल्पगत प्रवृत्तियों—संकेंद्रण और तीव्र गति—का अध्ययन करना।
- लघु उपन्यास की विधागत विशेषताओं और आधुनिक संवेदना की अभिव्यक्ति में इसकी प्रासंगिकता को पहचानना।

13.3 लघु उपन्यास: परिभाषा और स्वरूप

लघु उपन्यास साहित्य की एक ऐसी विधा है जो अपनी परिभाषा और स्वरूप के कारण उपन्यास और कहानी के मध्य एक विशिष्ट, किंतु अत्यंत महत्त्वपूर्ण स्थान रखती है। यह न तो उपन्यास की तरह जीवन के विस्तृत, बहुआयामी और दीर्घकालिक फलक को प्रस्तुत करती है, और न ही कहानी की तरह जीवन के किसी एक क्षण, एक घटना या एक मनोभाव पर केंद्रित होकर तीव्र प्रभाव के साथ समाप्त हो जाती है। लघु उपन्यास का मौलिक स्वरूप आकार में लघुता और विषय-वस्तु में संकेंद्रण का समन्वित रूप है।

उपन्यास और कहानी के बीच लघु उपन्यास की स्थिति: अंतराल और सेतु

लघु उपन्यास की सबसे सटीक पहचान उसे उपन्यास और कहानी के बीच एक अद्वितीय साहित्यिक सेतु के रूप में स्थापित करने से होती है। यह विधा इन दोनों प्रमुख गद्य रूपों के बीच के अंतराल को भरती है, जहाँ कहानी की आकारगत सीमाएँ और उपन्यास के विस्तार का अनावश्यक भार दोनों ही दूर हो जाते हैं। लघु उपन्यास कहानी की तीव्रता और प्रभावोत्पादकता को बनाए रखता है, जबकि उपन्यास की तरह इसमें पात्रों के चरित्र विकास और परिवेश के यथार्थ चित्रण की सुविधा होती है। कहानीकार के पास प्रायः इतना समय नहीं होता कि वह किसी चरित्र की मानसिक उलझनों या किसी सामाजिक स्थिति की जटिल परतों को धीरे-धीरे खोल सके; उसे तुरंत चरमोत्कर्ष की ओर बढ़ना होता है। वहीं, उपन्यासकार प्रायः कथानक के अनावश्यक विस्तार में उलझ जाता है, जिससे पाठक की रुचि भंग हो सकती है। लघु उपन्यास इन दोनों के मध्य संतुलन स्थापित करता है। यह किसी एक घटना या एक पात्र को चुनता है, और फिर उस पर उपन्यास-जैसी गहरी नज़र डालता है। उदाहरण के लिए, लघु उपन्यास किसी पात्र के तीन-चार महीने के जीवन-काल के गहन मनोवैज्ञानिक विश्लेषण पर केंद्रित हो सकता है (जैसे 'सारा आकाश' में एक नवविवाहित जोड़े का आरंभिक जीवन), जबकि कहानी शायद केवल एक शाम के उनके द्वंद्व को दिखाएगी और उपन्यास उनके पूरे जीवन या उनके कई पीढ़ियों की कथा कहेगा। इस तरह, लघु उपन्यास उन कहानियों को आकार देता है जो कहानी के लिए बहुत लंबी हैं और उन उपन्यासों को आकार देता है जो उपन्यास के लिए बहुत संक्षिप्त हैं। यह गहनता और संक्षिप्तता का अद्‌भुत मिश्रण है, जो इसे आधुनिक जीवन की जटिल, किंतु त्वरित संवेदनाओं को व्यक्त करने का सबसे सशक्त और सुगठित माध्यम बनाता है।

हिंदी साहित्य में लघु उपन्यास का ऐतिहासिक उद्भव और परंपरा

हिंदी साहित्य में लघु उपन्यास की परंपरा का उद्भव किसी औपचारिक घोषणा या किसी एक विशेष रचना से नहीं हुआ, बल्कि यह आधुनिकता के बढ़ते दबाव और पाश्चात्य साहित्य के प्रभाव के कारण धीरे-धीरे विकसित हुई। बीसवीं सदी के आरंभिक दशकों में जब उपन्यास विधा अपने 'प्रेमचंद-युग' में विस्तृत सामाजिक फलक पर

काम कर रही थी, कुछ रचनाएँ ऐसी भी लिखी गईं जो आकार में छोटी थीं, लेकिन उनका विषय-वस्तु कहानी से कहीं अधिक गहन और विश्लेषणात्मक था। हालाँकि, लघु उपन्यास को एक अलग विधा के रूप में पहचान मिलने में काफी समय लगा। इसका वास्तविक विकास स्वातंत्र्योत्तर काल में, विशेषकर नई कहानी आंदोलन के आसपास हुआ। इस समय के लेखकों ने विस्तृत सामाजिक यथार्थवाद से हटकर व्यक्ति की आंतरिक संवेदना, महानगरीय अलगाव और रिश्तों की टूटन पर ध्यान केंद्रित करना शुरू किया। ऐसी सूक्ष्म और मनोवैज्ञानिक समस्याओं को व्यक्त करने के लिए उपन्यास का बड़ा आकार अनावश्यक लगा, और कहानी का छोटा आकार अपर्याप्त। यहीं पर लघु उपन्यास ने एक अविभाज्य विधा के रूप में अपना स्थान बनाया। निर्मल वर्मा, कृष्णा सोबती, राजेंद्र यादव और फणीश्वरनाथ रेणु जैसे रचनाकारों ने अपनी कुछ विशिष्ट कृतियों के माध्यम से इस परंपरा को मजबूत किया। रेणु का 'मारे गए गुलफाम' (तीसरी कसम) और राजेंद्र यादव का 'सारा आकाश' इस परंपरा के आधार-स्तंभ माने जाते हैं। बाद में, इस विधा ने आंचलिकता, स्त्री-विमर्श, और अस्तित्ववादी दर्शन जैसे विषयों को अपनाया। हिंदी में लघु उपन्यास को अक्सर 'छोटी कहानी' या 'लघु आख्यान' भी कहा गया, लेकिन इसकी परंपरा में ऐसे उपन्यास शामिल हैं जो गहन मनोवैज्ञानिक विश्लेषण को शिल्पगत सघनता के साथ प्रस्तुत करते हैं, जिससे यह विधा अपनी विशिष्ट पहचान स्थापित करने में सफल रही। यह परंपरा इस बात का प्रमाण है कि हिंदी साहित्य में आधुनिक संवेदनाओं को व्यक्त करने के लिए लेखकों ने पारंपरिक विधाओं के स्वरूप में भी रचनात्मक बदलाव किए।

लघु उपन्यास की शिल्पगत प्रवृत्तियाँ: संकेंद्रण, तीव्र गति और सीमित विस्तार

लघु उपन्यास की सफलता का रहस्य उसकी शिल्पगत दक्षता में छिपा है, जो उसे कहानी की सघनता और उपन्यास की गहराई दोनों प्रदान करती है। इसकी तीन प्रमुख शिल्पगत प्रवृत्तियाँ हैं: संकेंद्रण (Concentration), तीव्र गति (Rapid Pace), और सीमित विस्तार (Limited Scope)।

1. संकेंद्रण (Concentration): लघु उपन्यास किसी एक केंद्रीय विचार, एक पात्र या एक समस्या पर पूरी तरह से केंद्रित होता है। इसमें उपन्यास की तरह अनेक गौण कथाओं या कई स्थानों के विस्तृत वर्णन के लिए स्थान नहीं होता। सारा ध्यान मुख्य पात्र के

2. मनोवैज्ञानिक द्वंद्व या केंद्रीय घटना के नैतिक और सामाजिक निहितार्थों पर रहता है। उदाहरण के लिए, 'तीसरी कसम' में सारा कथानक केवल हीराबाई और हिरामन के भावनात्मक रिश्ते और हिरामन की तीन कसमों के इर्द-गिर्द घूमता है। यह संकेंद्रण पाठक को सीधे और गहन अनुभव तक ले जाता है।
3. तीव्र गति (Rapid Pace): लघु उपन्यास का कथानक तेजी से विकसित होता है। इसमें अनावश्यक वर्णन या लम्बे विवरणात्मक अनुच्छेद नहीं होते। लेखक को तुरंत मूल संघर्ष पर आना होता है और पात्रों के विचारों को संवादों और आंतरिक एकालापों के माध्यम से शीघ्रता से उजागर करना होता है। यह तीव्र गति विधा को नाटकीयता प्रदान करती है और पाठक की रुचि को अंत तक बनाए रखती है। इस गति के कारण ही लघु उपन्यास महानगरीय जीवन की व्यस्तता और आधुनिक मन की अस्थिरता को व्यक्त करने में सक्षम होता है।
4. सीमित विस्तार (Limited Scope): यह सीमा केवल आकार तक ही सीमित नहीं है, बल्कि कालखंड, पात्रों की संख्या और परिवेश तक फैली हुई है। लघु उपन्यास का कथानक प्रायः कुछ सप्ताह या कुछ महीनों के भीतर सिमटा होता है, और इसमें पात्रों की संख्या भी कम होती है। परिवेश का चित्रण भी आवश्यकतानुसार ही किया जाता है, न कि उपन्यास की तरह विस्तृत पृष्ठभूमि प्रदान करने के लिए। यह सीमित विस्तार लेखक को सूक्ष्मता पर ध्यान केंद्रित करने की अनुमति देता है, जहाँ एक छोटा-सा कमरा, एक बस की यात्रा या एक ही घर का आंगन भी पूरी कथा के लिए पर्याप्त बन जाता है। इन शिल्पगत प्रवृत्तियों का परिणाम यह होता है कि लघु उपन्यास कम शब्दों में जीवन का सार प्रस्तुत करने की शक्ति प्राप्त कर लेता है।

13.4 प्रमुख लघु उपन्यास

फणीश्वरनाथ रेणु (1921-1977) हिंदी साहित्य में आंचलिकता के पर्याय माने जाते हैं, और उनका लघु उपन्यास 'मारे गए गुलफाम', जिसे लोकप्रिय रूप से 'तीसरी कसम' के नाम से जाना जाता है, हिंदी लघु उपन्यास परंपरा का एक अविस्मरणीय और उत्कृष्ट उदाहरण है। यह रचना ग्रामीण संवेदना और आंचलिक यथार्थ को उसकी पूर्ण गरिमा और मौलिकता में प्रस्तुत करती है। 'तीसरी कसम' का महत्त्व इस बात में है कि यह कथा और काव्य का अद्‌भुत सम्मिश्रण है। रेणु ने अपनी जादुई भाषा-शैली के

माध्यम से पूर्णिया, बिहार के ग्रामीण जीवन की गंध, ध्वनि और रंग को जीवंत कर दिया है। कथा का केंद्रबिंदु हिरामन नामक एक सरल और भोला-भाला गाड़ीवान और हीराबाई नामक एक नौटंकीवाली का भावनात्मक रिश्ता है। रेणु ने ग्रामीण जीवन की सीधी-सादी नैतिकता, सरल भावनाएँ और सामाजिक रूढ़ियाँ को दर्शाया है। यह लघु उपन्यास किसी बड़े सामाजिक सुधार या राजनीतिक परिवर्तन की बात नहीं करता, बल्कि दो अकेले मनुष्यों के बीच पनपने वाले शुद्ध और निश्छल प्रेम की कथा कहता है। हिरामन का चरित्र आंचलिक जीवन की मासूमियत का प्रतीक है, जो भावनाओं की दुनिया में इतना भोला है कि वह हीराबाई को अपनी गाड़ी में ले जाने के बाद, उसे स्त्री-देह से अलग करके एक पवित्र भावना के रूप में देखता है। रेणु ने इस रचना में लोक-भाषा (स्थानीय बोली), लोक-गीत और लोक-कथाओं के तत्त्वों का प्रचुर प्रयोग किया है, जिससे कहानी का वातावरण प्रामाणिक और सजीव बन जाता है। यह आंचलिकता केवल भौगोलिक वर्णन तक सीमित नहीं है, बल्कि यह पात्रों की सोच, उनके संवाद और उनके जीवन-मूल्यों में भी गहरे तक समाई हुई है। 'तीसरी कसम' लघु उपन्यास के स्वरूप को एक नई ऊँचाई प्रदान करती है, जहाँ सीमित कथानक और सीमित पात्र होने के बावजूद, वह संपूर्ण ग्रामीण संस्कृति को अपनी पृष्ठभूमि में समाहित कर लेती है।

'तीसरी कसम' (उर्फ मारे गए गुलफाम) की कथावस्तु और हीरामणि-हिरमन का आदर्शवाद

फणीश्वरनाथ रेणु की कालजयी रचना 'तीसरी कसम' की कथावस्तु अत्यंत सरल और रैखिक है, किंतु इसका भावनात्मक ताना-बाना बेहद जटिल और मार्मिक है। कथा की शुरुआत हिरामन द्वारा ली गई पहली दो कसमों के उल्लेख से होती है: पहली, वह बाँस नहीं लादेगा क्योंकि वह गाड़ी के लिए अशुभ था, और दूसरी, वह चोरी का माल नहीं लादेगा क्योंकि उसे जेल जाना पड़ा था। ये कसमें उसके भोलेपन और जीवन के अनुभवों का प्रतीक हैं। केंद्रीय घटना तब शुरू होती है जब वह तीसरी कसम लेता है, जाने-अनजाने में एक नौटंकीवाली हीराबाई को अपनी गाड़ी में बिठाता है, जिसे वह देवता की तरह पूजने लगता है। लंबी यात्रा के दौरान, हिरामन और हीराबाई के बीच एक अद्वितीय भावनात्मक रिश्ता विकसित होता है। हिरामन उसे कंपनी की औरत नहीं, बल्कि एक पवित्र नारी मानता है, जिसकी रक्षा करना उसका धर्म है। वह उसे

'महुआ घटवारिन' की कहानी सुनाता है, और हीराबाई भी उसके निश्छल प्रेम और मासूमियत से प्रभावित होती है। हीराबाई का शहरी आकर्षण और हिरामन की ग्रामीण सादगी, दोनों के बीच एक मानसिक दूरी बनाए रखती है, लेकिन भावनात्मक रूप से वे एक-दूसरे के निकट आते जाते हैं। आदर्शवाद और त्याग: कहानी का चरमोत्कर्ष तब आता है जब हीराबाई अपने नौटंकी-दल के साथ चली जाती है। हिरामन जानता है कि वह उसे जीवन-संगिनी नहीं बना सकता, क्योंकि उसका समाज और हीराबाई का पेशेवर जीवन दोनों ही इस संबंध को स्वीकार नहीं करेंगे। यहाँ पर हिरामन का आदर्शवाद प्रकट होता है। वह अपने प्रेम को अधिकार में बदलने की कोशिश नहीं करता; बल्कि, वह मूक वेदना के साथ उसे जाने देता है। वह हीराबाई को अपनी स्मृति में एक पवित्र बिम्ब के रूप में संजोकर रखता है। कथा का अंत हिरामन द्वारा तीसरी कसम लेने के साथ होता है: वह भविष्य में किसी नौटंकीवाली को अपनी गाड़ी में नहीं बिठाएगा। यह कसम केवल एक व्यावहारिक निर्णय नहीं है, यह प्रेम के दुःखद अनुभव से उपजा आत्म-संरक्षण और आदर्शवाद का त्याग है। हिरामन का यह भोला-भाला आदर्शवाद, जो प्रेम की भौतिक पूर्ति से अधिक भावनात्मक शुद्धता पर बल देता है, इस लघु उपन्यास को अत्यंत मार्मिक और दार्शनिक ऊँचाई प्रदान करता है।

राजेंद्र यादव और 'सारा आकाश': महानगरीय मध्यवर्ग और वैवाहिक विसंगतियाँ

राजेंद्र यादव (1929-2013) हिंदी साहित्य में 'नई कहानी' आंदोलन के प्रमुख हस्ताक्षर और लघु उपन्यास परंपरा के एक महत्त्वपूर्ण लेखक हैं। उनका लघु उपन्यास 'सारा आकाश' (मूल नाम 'प्रेत बोलते हैं' - 1960) महानगरीय मध्यवर्गीय जीवन और वैवाहिक विसंगतियों के यथार्थवादी चित्रण के लिए एक मील का पत्थर माना जाता है। यह लघु उपन्यास 'आकाशदीप' के रोमानी आदर्शवाद और 'तीसरी कसम' की आंचलिकता से बिलकुल भिन्न, शहरी और मनोवैज्ञानिक यथार्थ को प्रस्तुत करता है। 'सारा आकाश' की कथावस्तु का केंद्र प्रभा और समर नामक एक नवविवाहित जोड़ा है, जो संयुक्त परिवार के मानसिक दबाव और पारस्परिक संवादहीनता के कारण उत्पन्न हुई वैवाहिक विसंगतियों से जूझ रहा है। समर, एक युवा, शिक्षित, और संवेदनशील पुरुष है जो अपने व्यक्तिगत सपने और पारिवारिक जिम्मेदारियों के बीच फँसा हुआ है। उसका विवाह प्रभा से होता है, लेकिन संवाद का अभाव, अपरिपक्वता

और एक-दूसरे को समझने की अनिच्छा उनके वैवाहिक जीवन को एक सघन, घुटन भरे यथार्थ में बदल देती है। यह लघु उपन्यास शारीरिक और भावनात्मक दूरियों के सूक्ष्म चित्रण पर केंद्रित है। राजेंद्र यादव ने संयुक्त परिवार के भीतर की राजनीति, दंभ और रूढ़िवादिता को दर्शाया है, जो युवा दंपति के निजी जीवन को प्रभावित करती है। लघु उपन्यास का यह स्वरूप यादव को पात्रों के मन के गहरे अवसाद, कुंठा और निराशा को पर्याप्त विस्तार देने की अनुमति देता है, जो कहानी में संभव नहीं होता। यह लघु उपन्यास शहरी मध्यवर्ग के उस संक्रमण काल को दर्शाता है जहाँ पारंपरिक मूल्यों और आधुनिक आकांक्षाओं के बीच संघर्ष चल रहा था। 'सारा आकाश' ने हिंदी साहित्य में यौन कुंठाओं, वैवाहिक असंतोष और पति-पत्नी के अपरिपक्व संबंधों को एक नई ईमानदारी और निर्भीकता के साथ प्रस्तुत किया, जिसने बाद की पीढ़ी के लेखकों के लिए व्यक्तिगत और मनोवैज्ञानिक यथार्थ के द्वार खोल दिए।

'सारा आकाश' की मनोवैज्ञानिक अंतर्वस्तु और यथार्थवादी चित्रण की गहनता

राजेंद्र यादव का 'सारा आकाश' केवल एक सामाजिक यथार्थवादी कृति नहीं है, बल्कि यह मनुष्य के आंतरिक मन का एक गहन मनोवैज्ञानिक दस्तावेज़ भी है। लघु उपन्यास की अंतर्वस्तु मुख्यतः समर और प्रभा के व्यक्तिगत और पारस्परिक मनोवैज्ञानिक द्वंद्व पर केंद्रित है। समर का मनोवैज्ञानिक द्वंद्व: समर का द्वंद्व आकांक्षा और यथार्थ के बीच है। वह एक ओर तो स्वतंत्र जीवन जीना चाहता है, अध्ययन करना चाहता है, और अपनी पत्नी से भावनात्मक निकटता चाहता है, लेकिन दूसरी ओर वह संयुक्त परिवार के दबाव, आर्थिक कमजोरी और अपनी मनोवैज्ञानिक अपरिपक्वता के कारण इन इच्छाओं को पूरा नहीं कर पाता। उसका गुस्सा, उसकी निराशा और उसकी पत्नी के प्रति अकारण उपेक्षा इसी द्वंद्व का परिणाम है। उपन्यास समर के ईगो (Ego) और इन्हींबीशन (Inhibition) का बारीक विश्लेषण करता है।

प्रभा का मनोवैज्ञानिक संघर्ष: प्रभा का संघर्ष अज्ञात भय और नई वास्तविकता से समायोजन करने का है। वह एक नए घर में आती है, जहाँ उसे पत्नी के रूप में सम्मान नहीं मिलता, बल्कि उसे एक नौकरानी या संपत्ति की तरह देखा जाता है। उसका मौन, उसकी असहजता और उदासी उसके आंतरिक संघर्ष को दर्शाती है। वह अपने पति के अजीब व्यवहार को समझ नहीं पाती और अपनी यौन इच्छाओं को दबाती रहती है।

यथार्थवादी चित्रण की गहनता: राजेंद्र यादव ने इन मनोवैज्ञानिक स्थितियों को प्रस्तुत करने के लिए तीक्ष्ण, संवादात्मक और आत्म-विश्लेषणात्मक शैली का प्रयोग किया है। लघु उपन्यास में कोई रोमानी पर्दा नहीं है; विवाह, परिवार और प्रेम के चित्रण में कटु यथार्थ को जस का तस प्रस्तुत किया गया है। लेखक ने दिखाया है कि कैसे सामाजिक संरचना व्यक्ति के निजी जीवन और संवेदनाओं को कुचलती है। 'सारा आकाश' की सफलता इसी बात में है कि यह वैवाहिक संबंधों के बाहरी आवरण को हटाकर, उनके मानसिक द्वंद्व, संवादहीनता और दमित इच्छाओं का निर्मम और गहन चित्रण करता है, जिससे यह हिंदी लघु उपन्यास परंपरा की मनोवैज्ञानिक यथार्थवादी धारा का प्रतिनिधि बन जाता है।

अन्य प्रमुख लघु उपन्यासकार और उनकी प्रवृत्तियाँ: निर्मल वर्मा और कृष्णा सोबती

हिंदी लघु उपन्यास परंपरा को मजबूती देने में **निर्मल वर्मा** और **कृष्णा सोबती** जैसे लेखकों का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है, जिन्होंने इस विधा को **मनोवैज्ञानिक गहराई, स्त्री-विमर्श और आधुनिक संवेदना** से जोड़ा।

निर्मल वर्मा (1929-2005) - अकेलापन और आंतरिक विमर्श: निर्मल वर्मा अपने लघु उपन्यास 'एक चिथड़ा सुख' और 'रात का रिपोर्टर' के माध्यम से आधुनिक मनुष्य के अकेलेपन, विस्थापन और अस्तित्ववादी वेदना को प्रस्तुत करते हैं। उनकी कृतियाँ आकार में भले ही छोटी हों, पर उनमें चिंतन और आत्म-विमर्श की गहनता उपन्यास-तुल्य होती है। वर्मा की शैली काव्यात्मक, प्रतीकात्मक और सूक्ष्म होती है, जो पात्रों के अचेतन मन और यूरोप के परिवेश में उनकी भावनात्मक रिक्तता को उजागर करती है। उनका शिल्प जटिल, लेकिन अत्यंत नियंत्रित होता है, जो लघु उपन्यास की विधागत आवश्यकता—गहनता के साथ संक्षिप्तता—को पूर्ण करता है।

कृष्णा सोबती (1925-2019) - स्त्री-विमर्श और भाषा की मौलिकता: कृष्णा सोबती का लघु उपन्यास 'डार से बिछुड़ी' और विशेष रूप से 'मित्रो मरजानी' लघु उपन्यास परंपरा में स्त्री-विमर्श और लैंगिक निर्भीकता की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं। 'मित्रो मरजानी' ने स्त्री की दमित यौन इच्छाओं को जिस साहस और मौलिक भाषा के साथ प्रस्तुत किया, वह हिंदी साहित्य के लिए एक विद्रोही कदम था। सोबती की भाषा बोल्ड,

स्थानीय और अत्यंत सजीव है, जो उनके पात्रों की भीतरी आग को उजागर करती है। उनके लघु उपन्यास पारंपरिक सामाजिक और पारिवारिक रूढ़ियों पर प्रश्नचिह्न लगाते हैं और स्त्री को आत्म-निर्णय लेने की शक्ति देते हैं। सोबती ने यह सिद्ध किया कि लघु उपन्यास अपने सीमित विस्तार में भी गहन सामाजिक और लैंगिक क्रांति का वाहक बन सकता है। इन दोनों ही लेखकों ने लघु उपन्यास को प्रयोग और वैचारिक स्पष्टता के धरातल पर स्थापित किया, जिससे यह विधा अधिक समृद्ध हुई।

चित्र 4.4: कृष्णा सोबती (1925-2019)

हिंदी लघु उपन्यास की परंपरा, जयशंकर प्रसाद के रोमानी आदर्शवाद (कहानी-एकांकी मिश्रण) से लेकर रेणु की आंचलिक संवेदनशीलता, राजेंद्र यादव के महानगरीय यथार्थवाद और निर्मल वर्मा तथा कृष्णा सोबती के मनोवैज्ञानिक और स्त्री-विमर्श तक एक सार्थक और समृद्ध साहित्यिक यात्रा रही है। लघु उपन्यास ने सिद्ध किया है कि आकार की लघुता कभी भी विषय की गहराई या शिल्प की उत्कृष्टता की बाधक नहीं होती।

लघु उपन्यास की सबसे बड़ी प्रासंगिकता यह है कि यह आधुनिक संवेदना—जो तीव्र, खंडित और अत्यधिक आत्म-विश्लेषणात्मक है—को व्यक्त करने का सबसे उपयुक्त माध्यम है। बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में, जब समाज और व्यक्ति का जीवन अधिक जटिल, लेकिन कम विस्तृत हो गया, तब लेखकों को एक ऐसे शिल्प की आवश्यकता थी जो जीवन के एक ही केंद्रीय सूत्र को पकड़कर उसे पूरी गहराई में उतार सके। लघु उपन्यास ने इस आवश्यकता को सफलतापूर्वक पूरा किया। यह विधा उपन्यास की

व्यापकता के बोझ से मुक्त होकर मनोवैज्ञानिक सूक्ष्मता और सामाजिक यथार्थ के एक ही संकेंद्रित बिंदु पर अपनी सारी शक्ति लगाती है। 'तीसरी कसम' का भोलापन, 'सारा आकाश' की घुटन, और निर्मल वर्मा का अकेलापन—ये सभी लघु उपन्यास के सीमित, किंतु गहन विस्तार में ही पूरी तरह से उभर पाए हैं। हिंदी साहित्य में लघु उपन्यास परंपरा विविधता और रचनात्मक स्वतंत्रता का प्रतीक है, और यह विधा आज भी आधुनिक जीवन की विडंबनाओं को व्यक्त करने में पूरी तरह से सक्षम और प्रासंगिक बनी हुई है।

13.5सारांश

लघु उपन्यास कहानी की सघनता और उपन्यास की गहराई का समन्वय है। हिंदी में इसका विकास स्वातंत्र्योत्तर काल में हुआ। संकेंद्रण, तीव्र गति और सीमित विस्तार इसकी शिल्पगत विशेषताएँ हैं। यह विधा आधुनिक जीवन की जटिलताओं को व्यक्त करने का सशक्त माध्यम है और आज भी पूर्णतः प्रासंगिक है।

13.6 इकाई अंत अभ्यास

1. लघु उपन्यास की परिभाषा देते हुए इसे उपन्यास और कहानी से किस प्रकार भिन्न है, स्पष्ट कीजिए।
2. लघु उपन्यास की प्रमुख शिल्पगत प्रवृत्तियों—संकेंद्रण, तीव्र गति और सीमित विस्तार—का विवेचन कीजिए।
3. हिंदी लघु उपन्यास परंपरा के विकास में प्रमुख रचनाकारों के योगदान का संक्षिप्त मूल्यांकन प्रस्तुत कीजिए।

13.7 संदर्भ एवं अनुसंशित पठन सामाग्री

1. मधुरेश,हिन्दी उपन्यास का विकास, लोकभारती प्रकाशन, नई दिल्ली 2009.
2. राय गोपाल,हिन्दी उपन्यास का इतिहास,राजकमल प्रकाशननई दिल्ली 2009.
3. लाल लक्ष्मीनारायण ,हिन्दी कहानियों की शिल्प-विधि का विकास, लोकभारती प्रकाशन, नई दिल्ली 1960.

स्व-मूल्यांकन प्रश्न

बहुविकल्पीय प्रश्न (MCQs):

1. एकांकी क्या है?

क) लंबा नाटक

ख) एक अंक का संक्षिप्त नाटक

ग) कहानी

घ) उपन्यास

उत्तर: ख) एक अंक का संक्षिप्त नाटक

2. 'आकाशदीप' एकांकी के रचयिता हैं:

क) भुवनेश्वर

ख) जयशंकर प्रसाद

ग) उपेंद्रनाथ अश्क

घ) लक्ष्मीनारायण लाल

उत्तर: ख) जयशंकर प्रसाद

3. लघु उपन्यास की विशेषता है:

क) बहुत लंबा होना

ख) संक्षिप्त लेकिन पूर्ण कथानक

ग) केवल संवाद

घ) कोई कथानक नहीं

उत्तर: ख) संक्षिप्त लेकिन पूर्ण कथानक

4. 'तीसरी कसम' के रचयिता हैं:

क) प्रेमचंद

ख) फणीश्वरनाथ रेणु

ग) यशपाल

घ) मोहन राकेश

उत्तर: ख) फणीश्वरनाथ रेणु

5. एकांकी और नाटक में मुख्य अंतर है:

क) भाषा का

ख) संक्षिप्तता और एक अंक का

ग) पात्रों का

घ) विषय का

उत्तर: ख) संक्षिप्तता और एक अंक का

6. हिंदी एकांकी के विकास में किसका योगदान सर्वाधिक है?

क) प्रेमचंद

ख) जयशंकर प्रसाद

ग) रामचंद्र शुक्ल

घ) निराला

उत्तर: ख) जयशंकर प्रसाद

7. लघु उपन्यास और कहानी में अंतर है

क) कोई अंतर नहीं

ख) लंबाई और कथानक की जटिलता का

ग) केवल भाषा का

घ) केवल पात्रों का

उत्तर: ख) लंबाई और कथानक की जटिलता का

8. एकांकी में प्रमुखता होती है:

क) बहुत सारे पात्रों की

ख) एक केंद्रीय घटना और सीमित पात्रों की

ग) लंबे संवाद की

घ) कई कथानकों की

उत्तर: ख) एक केंद्रीय घटना और सीमित पात्रों की

9. 'साँझी चूल्हा' किसकी रचना है?

क) प्रसाद

ख) रामकुमार वर्मा या अन्य

ग) निराला

घ) पंत

उत्तर: ख) (उत्तर संदर्भ पर निर्भर)

10. लघु उपन्यास में होता है:

क) केवल एक पात्र

ख) पूर्ण कथानक लेकिन संक्षिप्त रूप में

ग) कोई कथानक नहीं

घ) केवल संवाद

उत्तर: ख) पूर्ण कथानक लेकिन संक्षिप्त रूप में

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. एकांकी और नाटक में क्या अंतर है?
2. हिंदी एकांकी के विकास में प्रसाद का क्या योगदान है?
3. लघु उपन्यास की परिभाषा और विशेषताएँ बताइए।
4. 'आकाशदीप' एकांकी की विशेषताएँ संक्षेप में बताइए।
5. लघु उपन्यास और उपन्यास में क्या अंतर है?

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. हिंदी एकांकी की परंपरा का विस्तार से वर्णन करते हुए प्रसाद से लेकर आधुनिक काल तक के विकास पर प्रकाश डालिए।
2. जयशंकर प्रसाद की 'आकाशदीप' एकांकी का विस्तृत विश्लेषण कीजिए।
3. हिंदी लघु उपन्यास की परंपरा और प्रवृत्तियों का विस्तार से वर्णन कीजिए।
4. एकांकी के स्वरूप, तत्व और विशेषताओं का विस्तृत विवेचन कीजिए।
5. रेणु के लघु उपन्यास 'तीसरी कसम' का विस्तार से परिचय दीजिए।

सारांश

हिंदी एकांकी और लघु उपन्यास दोनों ही आधुनिक हिंदी साहित्य की महत्वपूर्ण विधाएँ हैं। एकांकी नाट्य रूप का संक्षिप्त रूप है, जिसमें एक ही अंक में प्रभावशाली कथा प्रस्तुत की जाती है। जयशंकर प्रसाद, भुवनेश्वर, उपेंद्रनाथ अश्क और लक्ष्मीनारायण लाल ने हिंदी एकांकी को समृद्ध किया। दूसरी ओर, लघु उपन्यास (Novella) कहानी और उपन्यास के बीच की विधा है, जिसमें सीमित पात्रों के माध्यम से गहन भावनात्मक या सामाजिक जीवन का चित्रण किया जाता है। फणीश्वरनाथ रेणु का *तीसरी कसम* और राजेंद्र यादव का *सारा आकाश* लघु उपन्यास परंपरा के उत्कृष्ट उदाहरण हैं।

शब्दावली

1. एकांकी – एक अंक का नाटक, जिसमें संक्षिप्तता और प्रभाव होता है।
2. लघु उपन्यास (Novella) – उपन्यास और कहानी के बीच की साहित्यिक विधा।
3. आदर्शवाद – नैतिकता, त्याग और उच्च मूल्यों की भावना।
4. प्रसाद युग – हिंदी नाट्य और एकांकी लेखन का आरंभिक स्वर्णकाल।
5. काव्यात्मक भाषा – भावपूर्ण, लयात्मक और सौंदर्यपूर्ण अभिव्यक्ति शैली।
6. आंचलिकता – ग्रामीण परिवेश और लोकजीवन का चित्रण।
7. मनोवैज्ञानिक गहराई – पात्रों के आंतरिक जीवन और द्वंद्व का विश्लेषण।
8. यथार्थवाद – जीवन की वास्तविक परिस्थितियों का सजीव चित्रण।
9. प्रमुख एकांकीकार – प्रसाद, अश्क, भुवनेश्वर, लक्ष्मीनारायण लाल।
10. लघुता और प्रभावशीलता – सीमित शब्दों में गहन प्रभाव उत्पन्न करने की कला।

रखने योग्य 5 मुख्य बिंदु:

1. एकांकी नाटक का संक्षिप्त और प्रभावशाली रूप है।
2. जयशंकर प्रसाद ने *आकाशदीप* जैसी रचनाओं से एकांकी को दिशा दी।
3. लघु उपन्यास कहानी और उपन्यास के बीच की सशक्त विधा है।
4. *तीसरी कसम* और *सारा आकाश* लघु उपन्यास के प्रतिनिधि उदाहरण हैं।
5. दोनों विधाएँ आधुनिक हिंदी साहित्य में जीवन, समाज और मानवीय संवेदनाओं का सशक्त चित्र प्रस्तुत करती हैं।

अपनी प्रगति की जाँच करें

1. **हिंदी लघु उपन्यास की परंपरा और विकास का संक्षेप में वर्णन कीजिए।**

---

2. **आधुनिक हिंदी लघु उपन्यास की प्रमुख प्रवृत्तियों को उदाहरण सहित स्पष्ट कीजिए।**

. खंड 5 आलोचना और सैद्धांतिक अध्ययन

इकाई 14 कथा साहित्य पर आलोचकों के विचार

संरचना

14.1 परिचय

14.2 उद्देश्य

14.3 रामचंद्र शुक्ल

14.4 नामवर सिंह

14.5 रमेशचंद्र शाह

14.6 सारांश

14.7 इकाई अंत अभ्यास

14.8 संदर्भ एवं अनुसंशित पठन सामाग्री

14.1 परिचय

हिंदी कथा साहित्य की आलोचना में रामचंद्र शुक्ल, नामवर सिंह, नगेंद्र और रमेशचंद्र शाह का महत्वपूर्ण योगदान है। इन आलोचकों ने यथार्थवाद, आदर्शवाद, रस-सिद्धांत और समकालीन विमर्श से कथा साहित्य को नई दृष्टि प्रदान की है।

14.2 उद्देश्य

- रामचंद्र शुक्ल के यथार्थवाद और आदर्शवाद के समन्वय तथा कथा साहित्य पर उनके विचारों को समझना।
- नामवर सिंह की नई कहानी की अवधारणा और आलोचना दृष्टि का अध्ययन करना तथा उनके योगदान को पहचानना।
- नगेंद्र के रसात्मक दृष्टिकोण और रमेशचंद्र शाह की समकालीन आलोचना की विशेषताओं का विश्लेषण करना।

14.3 रामचंद्र शुक्ल

स

मचंद्र शुक्ल हिंदी साहित्य के इतिहास में सबसे महत्वपूर्ण आलोचक माने जाते हैं। उनका जीवनकाल 1884 से 1941 तक था और इस अवधि में उन्होंने हिंदी साहित्य को एक नई दिशा दी। शुक्ल जी ने साहित्य को जीवन के साथ जोड़कर देखा और साहित्य को नैतिकता, सामाजिकता और मानवीय मूल्यों के संदर्भ में मूल्यांकित किया। उनकी आलोचना पद्धति में साहित्य के सामाजिक उत्तरदायित्व का विशेष महत्व है।

रामचंद्र शुक्ल का मानना था कि साहित्य केवल मनोरंजन का माध्यम नहीं है, बल्कि वह समाज के विकास और नैतिक उत्थान में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। उनके विचारों से प्रभावित होकर हिंदी साहित्य की आलोचना को एक वैज्ञानिक और तर्कसंगत आधार मिला। शुक्ल जी के महत्वपूर्ण कार्यों में उनकी पुस्तक "हिंदी साहित्य का इतिहास" सर्वाधिक महत्वपूर्ण है, जिसमें उन्होंने आदिकाल से लेकर अपने समय तक के हिंदी साहित्य का विस्तृत विवरण प्रस्तुत किया है।

5.1: रामचंद्र शुक्ल

रामचंद्र शुक्ल का कथा साहित्य के प्रति दृष्टिकोण परंपरावादी और आधुनिक दोनों का मिश्रण था। वे उपन्यास को एक नई विधा के रूप में स्वीकार करते हैं, लेकिन उन्हें यह भी लगता था कि भारतीय परंपरा में कथा साहित्य का एक समृद्ध इतिहास रहा है। बंकिमचंद्र चट्टोपाध्याय के उपन्यासों की शुक्ल जी ने तारीफ की, विशेषकर उनके राष्ट्रीय चेतना और सामाजिक जिम्मेदारी के लिए। हिंदी के प्रारंभिक उपन्यासकारों में से लाला श्रीनिवास दास के "परीक्षागुरु" को शुक्ल जी ने महत्व दिया क्योंकि इसमें सामाजिक जागरूकता थी। शुक्ल जी का मानना था कि कथा साहित्य में यथार्थ को आदर्श से जोड़ा जाना चाहिए। उनके अनुसार, साहित्य ऐसा होना चाहिए जो पाठकों को केवल वर्तमान यथार्थ से परिचित न कराए, बल्कि उन्हें भविष्य की ओर प्रेरित करे और उनमें जीवन के प्रति एक उदार दृष्टिकोण विकसित करे।

रामचंद्र शुक्ल के चिंतन में यथार्थवाद और आदर्शवाद का एक अद्भुत समन्वय दिखाई देता है। यथार्थवाद का अर्थ है जीवन को उसके वास्तविक रूप में चित्रित करना, जबकि आदर्शवाद का अर्थ है जीवन को ऐसे रूप में प्रस्तुत करना जैसा वह होना चाहिए। शुक्ल जी का मानना था कि साहित्य में यथार्थवाद और आदर्शवाद दोनों का संतुलन होना चाहिए। वे कहते हैं कि साहित्य को जीवन के कड़वे यथार्थ को तो दिखाना ही चाहिए, साथ ही साथ उसे एक आदर्श दिशा भी प्रदान करनी चाहिए। शुक्ल जी के अनुसार, एक अच्छा साहित्यकार वह होता है जो जीवन की विसंगतियों, विडंबनाओं और पीड़ाओं को दिखाता है, लेकिन साथ ही साथ पाठकों को यह संदेश भी देता है कि मानवीय प्रयास और नैतिकता से इन समस्याओं का समाधान संभव है। इस दृष्टिकोण से शुक्ल जी ने हिंदी साहित्य को एक नया आयाम दिया और साहित्य को समाज सुधार का एक शक्तिशाली माध्यम माना।

14.4 नामवर सिंह

नामवर सिंह को आधुनिक हिंदी आलोचना का प्रणेता माना जाता है। उनका जीवनकाल 1927 से 2019 तक था और उन्होंने अपने लंबे जीवन में हिंदी साहित्य की आलोचना को एक नई दिशा दी। नामवर सिंह रामचंद्र शुक्ल की परंपरा को आगे बढ़ाते हुए भी आधुनिक साहित्यिक सिद्धांतों को अपनाया। वे मार्क्सवाद से प्रभावित थे, लेकिन उन्होंने अपनी एक स्वतंत्र दृष्टि विकसित की। नामवर सिंह का मानना था कि आलोचना को साहित्य के साथ-साथ समाज, राजनीति और सांस्कृतिक परिवर्तनों को भी ध्यान में रखना चाहिए। उन्होंने साहित्य को केवल कला के रूप में नहीं, बल्कि सामाजिक परिवर्तन का एक माध्यम के रूप में देखा। नामवर सिंह की आलोचना में तीक्ष्णता, तार्किकता और प्रासंगिकता का विशेष गुण दिखाई देता है। वे अपने समय के साहित्यिक प्रश्नों के प्रति सदा सजग रहे और उन्हें अपनी आलोचनात्मक विवेचना का विषय बनाया। नामवर सिंह ने हिंदी कहानी के विकास को गहराई से अध्ययन किया। उन्होंने प्रेमचंद की परंपरा को समझा और सराहा, लेकिन साथ ही साथ उन्होंने यह भी देखा कि स्वतंत्रता के बाद हिंदी कहानी में एक नया बदलाव आया। इस नए बदलाव को "नई कहानी" का नाम दिया गया। नई कहानी के लेखकों में राजेंद्र यादव, कमलेश्वर, मोहन राकेश, उषा प्रियंवदा आदि प्रमुख हैं। नामवर सिंह का मानना था कि नई कहानी ने कहानी की विषय-वस्तु, शैली, कथन रीति और चेतना में एक नया

बदलाव लाया। नई कहानी में आंतरिक मनोविश्लेषण अधिक महत्वपूर्ण हो गया, बाहरी घटनाओं से कम। नई कहानी ने नागरिक जीवन के जटिलताओं को अधिक गहराई से चित्रित किया। नामवर सिंह ने यह भी देखा कि नई कहानी में अस्तित्ववादी दर्शन का प्रभाव था और कहानीकार अब व्यक्ति की अकेलापन, असंगति और आत्मसंघर्ष को प्रमुख विषय बना रहे थे।

चित्र 5.2: नामवर सिंह

नामवर सिंह की आलोचना दृष्टि उनके समकालीन अन्य आलोचकों से भिन्न थी। वे साहित्य को एक जीवंत और परिवर्तनशील विषय मानते थे, न कि कोई स्थिर और निश्चित वस्तु। नामवर सिंह की आलोचना में जहां एक ओर तीक्ष्ण विश्लेषण था, वहीं दूसरी ओर वह साहित्य के प्रति एक संवेदनशील दृष्टिकोण भी रखते थे। वे साहित्यकार के अभिप्राय को समझने की कोशिश करते थे, लेकिन साथ ही साथ अपना तर्कसंगत मूल्यांकन भी देते थे। नामवर सिंह की एक विशेषता यह थी कि वे साहित्य की आलोचना को समसामयिक सामाजिक और राजनीतिक संदर्भों से जोड़ते थे। उनके विचार में साहित्य को समाज से अलग नहीं किया जा सकता। साहित्य समाज का आईना है और वह समाज के परिवर्तनों को प्रतिबिंबित करता है। इसी कारण से नामवर सिंह की आलोचना को सामाजिक आलोचना भी कहा जाता है।

14.5 नगेंद्र

नगेंद्र हिंदी साहित्य के एक महत्वपूर्ण आलोचक, कवि और पत्रिका प्रकाशक थे। उनका जीवनकाल 1917 से 1995 तक था। नगेंद्र ने हिंदी आलोचना को एक परंपरागत और वैज्ञानिक आधार प्रदान किया। वे भारतीय साहित्यशास्त्र की परंपरा

को आधुनिक दृष्टिकोण के साथ जोड़ने की कोशिश करते थे। नगेंद्र के विचारों में संस्कृत काव्यशास्त्र के प्राचीन सिद्धांत और आधुनिक आलोचनात्मक पद्धतियों का एक सुंदर मेल दिखाई देता है। वे साहित्य की आलोचना के लिए रस, अलंकार, ध्वनि आदि संस्कृत काव्यशास्त्र के प्राचीन सिद्धांतों का उपयोग करते थे, लेकिन साथ ही साथ वे आधुनिक साहित्यिक सिद्धांतों के भी जागरूक थे। नगेंद्र की "हिंदी साहित्य का इतिहास" और उनकी आलोचनात्मक पुस्तकें हिंदी साहित्य अध्ययन के लिए मानक ग्रंथ मानी जाती हैं। नगेंद्र की आलोचना पद्धति का मुख्य आधार रस सिद्धांत है। रस संस्कृत काव्यशास्त्र का एक प्राचीन और महत्वपूर्ण सिद्धांत है। भरतमुनि ने रस को साहित्य की आत्मा माना है। रस का अर्थ है वह आनंद और संवेदना जो पाठक को साहित्य के पढ़ने से प्राप्त होती है। नगेंद्र ने इस परंपरागत रस सिद्धांत को आधुनिक साहित्य के विश्लेषण में लागू किया। उनके अनुसार, एक अच्छे साहित्य में रस का होना आवश्यक है। साहित्य के माध्यम से पाठक विभिन्न भावनाओं का अनुभव करता है - कभी वह श्रृंगार रस का आस्वादन करता है, कभी वीर रस का, कभी करुण रस का। नगेंद्र के रसात्मक दृष्टिकोण में साहित्य का सौंदर्य केवल उसके विषय-वस्तु में नहीं, बल्कि उसके अभिव्यक्ति माध्यम और भावनात्मक प्रभाव में निहित होता है। यह दृष्टिकोण साहित्य की आलोचना को अधिक गहन और संवेदनशील बनाता है।

चित्र 5.3: नगेंद्र

नगेंद्र के चिंतन में साहित्य और समाज का संबंध एक महत्वपूर्ण विषय है। वे साहित्य को समाज के विकास में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाने वाली शक्ति मानते हैं। नगेंद्र के अनुसार, साहित्य केवल एक कला नहीं है, बल्कि वह समाज का एक अभिन्न अंग

है। साहित्य समाज को दर्पण की तरह दिखाता है और साथ ही साथ समाज को एक आदर्श दिशा भी प्रदान करता है। साहित्य के माध्यम से लेखक अपने समय के सामाजिक प्रश्नों को उठाता है और समाज को बेहतर बनाने के लिए सुझाव देता है। नगेंद्र ने यह भी माना कि साहित्य का प्रभाव समाज पर गहरा पड़ता है और समाज के परिवर्तन के साथ साहित्य भी परिवर्तित होता है। इसी कारण से एक साहित्य अध्येता को केवल साहित्य ही नहीं, बल्कि समाज के ऐतिहासिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक संदर्भों को भी समझना आवश्यक है।

14.6 रमेशचंद्र शाह

रमेशचंद्र शाह समकालीन हिंदी आलोचना के एक प्रमुख हस्ताक्षर हैं। उन्होंने हिंदी आलोचना को एक नई दिशा दी है। रमेशचंद्र शाह की आलोचना की मुख्य विशेषता है कि वे समकालीन साहित्य के गहन अध्ययन पर बल देते हैं। वे साहित्य को एक जीवंत माध्यम मानते हैं जो लगातार नए प्रश्न उठाता है और समाज में परिवर्तन लाता है। रमेशचंद्र शाह का मानना है कि आलोचक को केवल सराहना या निंदा नहीं करनी चाहिए, बल्कि साहित्य के माध्यम से समसामयिक प्रश्नों को उठाना और उन पर गंभीर विचार करना चाहिए। उन्होंने हिंदी साहित्य में दलित चेतना, स्त्री चेतना और सांप्रदायिकता जैसे महत्वपूर्ण प्रश्नों पर गंभीर विचार किया है। रमेशचंद्र शाह की समकालीन आलोचना की अवधारणा बहुत महत्वपूर्ण है। समकालीन आलोचना का अर्थ है अपने समय के साहित्य के साथ-साथ उसके सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक संदर्भों को भी ध्यान में रखते हुए आलोचना करना। रमेशचंद्र शाह का मानना है कि आलोचक को केवल साहित्य के सौंदर्यबोध तक सीमित नहीं रहना चाहिए, बल्कि उसे साहित्य के सामाजिक प्रभाव और सांस्कृतिक महत्व को भी समझना चाहिए। वे समकालीन दलित साहित्य, स्त्री साहित्य और अल्पसंख्यक साहित्य पर विशेष ध्यान देते हैं। रमेशचंद्र शाह की समकालीन आलोचना यह स्वीकार करती है कि साहित्य में विभिन्न दृष्टिकोण होते हैं और प्रत्येक दृष्टिकोण महत्वपूर्ण है। वे यह भी मानते हैं कि आलोचना को साहित्य के लोकतांत्रीकरण में भूमिका निभानी चाहिए, अर्थात साहित्य को केवल उच्च वर्ग के लिए नहीं, बल्कि सभी के लिए सुलभ बनाना चाहिए। उनकी समकालीन आलोचना हिंदी साहित्य को अधिक समावेशी और जनतांत्रिक बनाने में मदद करती है।

5.4: रमेशचंद्र शाह

हिंदी साहित्य की आलोचना में विभिन्न पद्धतियां प्रयोग में आती हैं। इन पद्धतियों को समझना आलोचना को सही तरीके से करने के लिए आवश्यक है। सबसे पहली पद्धति है व्यक्तिनिष्ठ आलोचना, जिसमें आलोचक अपने व्यक्तिगत मतों और भावनाओं के आधार पर साहित्य की आलोचना करता है। दूसरी पद्धति है ऐतिहासिक आलोचना, जिसमें साहित्य को उसके ऐतिहासिक संदर्भ में देखा जाता है। तीसरी पद्धति है समाजशास्त्रीय आलोचना, जिसमें साहित्य को समाज के साथ जोड़कर देखा जाता है। चौथी पद्धति है मनोविश्लेषणात्मक आलोचना, जिसमें साहित्य के अवचेतन पहलुओं को समझा जाता है। पांचवी पद्धति है संरचनावादी आलोचना, जिसमें साहित्य की संरचना और उसके आंतरिक सूत्रों का अध्ययन किया जाता है। छठी पद्धति है मार्क्सवादी आलोचना, जिसमें साहित्य को वर्गीय संघर्ष और आर्थिक कारकों के माध्यम से समझा जाता है। सातवी पद्धति है नारीवादी आलोचना, जिसमें साहित्य में स्त्री की स्थिति और प्रतिनिधित्व का विश्लेषण किया जाता है। ये सभी पद्धतियां साहित्य को समझने के विभिन्न तरीके प्रदान करती हैं। कथा साहित्य की आलोचना में पात्रों का चरित्रांकन एक अत्यंत महत्वपूर्ण विषय है। एक अच्छा साहित्यकार अपनी कहानी या उपन्यास में ऐसे पात्र बनाता है जो पाठकों के मन में स्थायी प्रभाव छोड़ते हैं। पात्रों का चरित्रांकन कैसा है, यह आलोचना का एक महत्वपूर्ण मानदंड है। एक

अच्छे पात्र में विशिष्टता होती है, अर्थात वह अन्य पात्रों से अलग होता है। दूसरा, पात्र का विकास होना चाहिए, अर्थात कहानी के विभिन्न चरणों में पात्र में परिवर्तन आता है। तीसरा, पात्र के कार्य और विचार में सामंजस्य होना चाहिए। चौथा, पात्र को कहानी के सामाजिक संदर्भ के अनुरूप होना चाहिए। रामचंद्र शुक्ल, नामवर सिंह, नगेंद्र और रमेशचंद्र शाह सभी ने पात्र चरित्रांकन की विस्तार से आलोचना की है। प्रेमचंद के पात्र, बंकिमचंद्र के पात्र, उषा प्रियंवदा के पात्र - ये सभी आलोचना के महत्वपूर्ण विषय रहे हैं। पात्रों की आलोचना से ही हम साहित्यकार की सृजनात्मकता, उसकी मानवीय समझ और उसकी दृष्टि को परखते हैं।

कथानक और कहानी की संरचना

कथा साहित्य में कथानक या प्लॉट का एक विशेष महत्व है। कथानक ही कहानी की रीढ़ होता है जिसके चारों ओर पूरी कहानी बुनी जाती है। एक अच्छे कथानक में कुछ विशेषताएं होती हैं - वह सुसंबद्ध होता है, अर्थात उसके विभिन्न अंग आपस में जुड़े हुए होते हैं। दूसरी बात, कथानक में संघर्ष होता है, जिससे कहानी में गतिशीलता आती है। तीसरी बात, कथानक का विकास क्रम स्पष्ट और तार्किक होता है। आलोचकों ने कहानी की संरचना के विभिन्न मॉडल प्रस्तुत किए हैं। कुछ आलोचक पारंपरिक संरचना को महत्व देते हैं जिसमें प्रारंभ, मध्य और अंत होता है। कुछ आलोचक अधुनिक कहानियों की खुली संरचना की प्रशंसा करते हैं जहां कहानी का अंत निश्चित नहीं होता। नामवर सिंह ने नई कहानी की संरचना पर विशेष ध्यान दिया है और दिखाया है कि कैसे नई कहानी ने कहानी के संरचनात्मक ढांचे में परिवर्तन लाया है। कथानक की आलोचना करते समय आलोचक यह भी देखता है कि कथानक कितना मूल है, कितना विश्वसनीय है और कितना प्रभावशाली है।

भाषा-शैली और अभिव्यक्ति की कला

कथा साहित्य की आलोचना में भाषा-शैली एक अत्यंत महत्वपूर्ण पहलू है। किसी भी साहित्यकार की कला की परीक्षा उसकी भाषा-शैली से होती है। एक महान साहित्यकार वह होता है जो अपनी विषय-वस्तु को इस तरह प्रस्तुत करता है कि पाठकों को उसका गहरा प्रभाव पड़ता है। भाषा-शैली में शब्दों का चयन, वाक्य संरचना, मुहावरों का प्रयोग, रूपकों और प्रतीकों का उपयोग सभी महत्वपूर्ण हैं। कुछ

साहित्यकार सरल और सहज भाषा में लिखते हैं, जबकि कुछ जटिल और काव्यात्मक भाषा में। आलोचक यह देखता है कि भाषा-शैली विषय-वस्तु के अनुरूप है या नहीं। प्रेमचंद की सरल भाषा, जयशंकर प्रसाद की सुंदर और काव्यात्मक भाषा, मोहन राकेश की आधुनिक भाषा - ये सभी भाषा-शैली के विभिन्न रूप हैं। रामचंद्र शुक्ल ने साहित्य में भाषा की महत्ता को बहुत समझा है और कहा है कि भाषा ही साहित्य का मुख्य माध्यम है। आलोचक भाषा-शैली की आलोचना करते समय यह भी देखता है कि क्या भाषा प्रभावशाली है, क्या वह स्पष्ट है और क्या वह विषय-वस्तु को उचित रूप से व्यक्त करती है।

सामाजिक संदर्भ और साहित्य

साहित्य को समझने के लिए उसके सामाजिक संदर्भ को समझना अत्यंत आवश्यक है। एक साहित्य कृति अपने समय और समाज में जन्म लेती है और उस समय की सामाजिक परिस्थितियां उसे प्रभावित करती हैं। नामवर सिंह और रमेशचंद्र शाह ने इस बात पर विशेष बल दिया है कि आलोचक को साहित्य को उसके सामाजिक संदर्भ में देखना चाहिए। उदाहरण के लिए, प्रेमचंद की कहानियों को समझने के लिए हमें भारतीय समाज की ग्रामीण परिस्थितियों, जातीय प्रणाली, आर्थिक विषमताओं और राष्ट्रीय आंदोलन को समझना आवश्यक है। इसी तरह, नई कहानीकारों के साहित्य को समझने के लिए हमें स्वतंत्रता के बाद के भारत की शहरी सामाजिकता, आधुनिकीकरण की प्रक्रिया और व्यक्तिवाद के विकास को समझना आवश्यक है। सामाजिक संदर्भ यह भी बताता है कि कौन सी सामाजिक समस्याएं किस समय मुख्य थीं और साहित्य में उनका प्रतिबिंब कैसा था। दलित साहित्य, स्त्री साहित्य और अल्पसंख्यक साहित्य को समझने के लिए भी सामाजिक संदर्भ को समझना बहुत महत्वपूर्ण है।

मनोवैज्ञानिक यथार्थता और आलोचना

कथा साहित्य की आलोचना में मनोवैज्ञानिक यथार्थता एक महत्वपूर्ण मानदंड है। मनोवैज्ञानिक यथार्थता का अर्थ है कि पात्रों के मन की भावनाओं, विचारों और संघर्षों का सत्य और विश्वसनीय चित्रण। एक अच्छे साहित्यकार को मानव मन की गहरी समझ होती है। वह यह जानता है कि मनुष्य के मन में क्या चलता है, वह कैसे सोचता

है, कैसे अनुभव करता है और कैसे कार्य करता है। आधुनिक कहानीकार, विशेषकर नई कहानीकार, मनोवैज्ञानिक यथार्थता पर विशेष ध्यान देते हैं। उदाहरण के लिए, मोहन राकेश की कहानी "नए बादल" या उषा प्रियंवदा की कहानियों में पात्रों की आंतरिक मनोस्थिति का बहुत गहन चित्रण मिलता है। आलोचक यह देखता है कि क्या साहित्यकार ने पात्रों के मन की भावनाओं को सत्य रूप में प्रस्तुत किया है। मनोविश्लेषणात्मक आलोचना तो विशेषकर इसी बात पर ध्यान देती है कि साहित्य में व्यक्ति के अवचेतन मन को कैसे दर्शाया गया है।

सौंदर्य और रस की अनुभूति

नगेंद्र की आलोचना में सौंदर्य और रस की अनुभूति का एक विशेष स्थान है। सौंदर्य साहित्य का एक अत्यंत महत्वपूर्ण तत्व है। किसी भी कृति का सौंदर्य उसके रूप, अर्थ, भाषा और भावनात्मक प्रभाव के समन्वय में निहित होता है। रस अनुभूति का संबंध पाठक के मन में जो संवेदना और आनंद जागता है, उससे है। नगेंद्र के अनुसार, साहित्य का मुख्य प्रयोजन पाठक को रस अनुभूति प्रदान करना है। साहित्य के माध्यम से पाठक विभिन्न भावनाओं का अनुभव करता है। शृंगार रस में पाठक सौंदर्य और प्रेम की अनुभूति पाता है। वीर रस में शौर्य और वीरता की, करुण रस में दुःख और संवेदनशीलता की। रौद्र रस में क्रोध और विनाश की, हास्य रस में हँसी और विनोद की। आलोचक यह देखता है कि साहित्य में किन-किन रसों का प्रयोग किया गया है और वे कितने प्रभावशाली हैं। सौंदर्य की अनुभूति भी साहित्य को समझने का एक महत्वपूर्ण तरीका है। आलोचना का साहित्य और समाज में एक विशेष महत्व और प्रासंगिकता है। आलोचना के बिना साहित्य का सही मूल्यांकन नहीं हो सकता। आलोचक साहित्य को समझने में सहायक होते हैं और पाठकों को यह बताते हैं कि किन कृतियों में साहित्यिक मूल्य है। आलोचना साहित्य के विकास में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। जब आलोचक किसी साहित्यकार की कमजोरियों को इंगित करते हैं, तो वह साहित्यकार अपने आप को सुधार सकता है। आलोचना के माध्यम से साहित्य को एक नई दिशा और दृष्टि मिलती है। नई आलोचनात्मक पद्धतियां साहित्य को नए तरीके से समझने का अवसर देती हैं। आलोचना का एक और महत्व यह है कि वह साहित्य के माध्यम से समाज में परिवर्तन लाने में सहायक होती है। सामाजिक

न्याय, राजनीतिक सचेतता और सांस्कृतिक मूल्यों को बढ़ावा देने में आलोचना की महत्वपूर्ण भूमिका है।

14.7 सारांश

रामचंद्र शुक्ल ने यथार्थवाद और आदर्शवाद का समन्वय प्रस्तुत किया। नामवर सिंह ने नई कहानी को परिभाषित किया और सामाजिक आलोचना को प्रमुखता दी। नगेंद्र ने रस-सिद्धांत को आधुनिक साहित्य पर लागू किया। रमेशचंद्र शाह ने समकालीन विमर्श और समावेशी आलोचना को बढ़ावा दिया। इन आलोचकों ने कथा साहित्य को व्यापक परिप्रेक्ष्य प्रदान किया।।

14.8 इकाई अंत अभ्यास

1. रामचंद्र शुक्ल के यथार्थवाद और आदर्शवाद के समन्वय की अवधारणा को स्पष्ट करते हुए कथा साहित्य में इसका महत्व बताइए।
2. नामवर सिंह की नई कहानी की अवधारणा और उनकी आलोचना दृष्टि की प्रमुख विशेषताओं का विवेचन कीजिए।
3. नगेंद्र के रसात्मक दृष्टिकोण और रमेशचंद्र शाह की समकालीन आलोचना का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत कीजिए।

14.9 संदर्भ एवं अनुसंशित पठन सामाग्री

1. पाण्डेय मैनेजर , आलोचना की सामाजिकता ,वाणी प्रकाशन;दिल्ली वर्ष **2017**
2. श्रोत्रिय प्रभाकर ,कथा का सौंदर्य शास्त्र; अमन प्रकाशन; कानपूर .वर्ष **2018**
3. रंजन रवि; रवि रंजन-प्रेमचंद के कथासाहित्य का समाजशास्त्र प्रकाशक- दिल्ली वर्ष 2016

अपनी प्रगति की जाँच करें

1. **प्रमुख आलोचकों द्वारा कथा साहित्य की परिभाषा और उद्देश्य के संबंध में व्यक्त विचारों का संक्षेप में वर्णन कीजिए।**

---

2. **नामवर सिंह, रामविलास शर्मा या हजारीप्रसाद द्विवेदी में से किसी एक आलोचक के कथा साहित्य संबंधी विचारों को उदाहरण सहित स्पष्ट कीजिए।**

इकाई 15: आधुनिक कथा साहित्य और आलोचना प्रवृत्तियाँ

संरचना

15.1 परिचय
15.2 उद्देश्य
15.3 प्रमुख महत्वपूर्ण रुझान
15.4 समकालीन आलोचना
15.5 सारांश
15.6 इकाई अंत अभ्यास
15.7 संदर्भ एवं अनुसंशित पठन सामाग्री

15.1 परिचय

आधुनिक हिंदी कथा साहित्य की आलोचना में यथार्थवादी, मार्क्सवादी, मनोवैज्ञानिक, संरचनावादी और समकालीन प्रवृत्तियाँ विकसित हुई हैं। ये प्रवृत्तियाँ साहित्य को विभिन्न दृष्टिकोणों से समझने और व्याख्यायित करने के नए आयाम प्रस्तुत करती हैं।

15.2 उद्देश्य

- यथार्थवादी, मार्क्सवादी, मनोवैज्ञानिक और संरचनावादी आलोचना की प्रमुख विशेषताओं को समझना और उनके अनुप्रयोग को जानना।
- नारीवादी, दलित और उत्तर-आधुनिक आलोचना जैसी समकालीन प्रवृत्तियों का अध्ययन करना और उनकी प्रासंगिकता को समझना।
- आधुनिक कथा साहित्य में विभिन्न आलोचनात्मक दृष्टिकोणों की भूमिका और महत्व का मूल्यांकन करना।

15.3 प्रमुख महत्वपूर्ण रुझान

हिंदी कथा-आलोचना के आधुनिक युग में विभिन्न आलोचनात्मक दृष्टिकोणों का उदय हुआ है जो बदलते सामाजिक, राजनीतिक और बौद्धिक परिवेश को प्रतिबिंबित करते हैं। ये आलोचनात्मक प्रवृत्तियाँ - यथार्थवादी आलोचना, मार्क्सवादी आलोचना, मनोवैज्ञानिक आलोचना, संरचनावादी और उत्तर-संरचनावादी आलोचना - साहित्य की व्याख्या करने के विभिन्न तरीकों और मानवीय अनुभव के साथ उसके संबंध का प्रतिनिधित्व करती हैं।

यथार्थवादी आलोचना (यथार्थवादी आलोचना)

यथार्थवादी आलोचना साहित्य में जीवन, समाज और मानवीय परिस्थितियों के सत्य चित्रण पर बल देती है। इस विचारधारा का मानना है कि साहित्य को अपने समय की सामाजिक वास्तविकताओं और मानवीय संघर्षों का प्रतिबिम्ब होना चाहिए।

आदर्शवादी कल्पनाओं के बजाय जीवन की वास्तविक परिस्थितियों को चित्रित करने की उसकी क्षमता में निहित है। कथा में वास्तविक सामाजिक संदर्भों से लिए गए पात्रों और स्थितियों को प्रस्तुत किया जाना चाहिए, जिससे साहित्य सामाजिक जागरूकता और सुधार का एक साधन बन सके। यह दृष्टिकोण लेखक को एक सामाजिक इतिहासकार और नैतिक मार्गदर्शक मानता है जिसका दायित्व मानव जीवन के यथार्थवादी चित्रण के माध्यम से चेतना जागृत करना और परिवर्तन की प्रेरणा देना है।

मार्क्सवादी आलोचना (मार्क्सवादी आलोचना)

मार्क्सवादी आलोचना कार्ल मार्क्स और फ्रेडरिक एंगेल्स के दार्शनिक सिद्धांतों से उभरी, जिसने मानव चेतना और संस्कृति को आकार देने में आर्थिक संरचनाओं, वर्ग संघर्ष और भौतिक परिस्थितियों की भूमिका पर ज़ोर दिया। साहित्य के क्षेत्र में, मार्क्सवादी आलोचक विश्लेषण करते हैं कि कथाएँ किस प्रकार प्रभुत्वशाली वर्ग की विचारधाराओं को प्रतिबिम्बित या चुनौती देती हैं। उनका तर्क है कि साहित्य अपने सामाजिक-आर्थिक संदर्भ की उपज होता है और विद्यमान सत्ता संरचनाओं को बनाए रखने या उन पर प्रश्न उठाने के साधन के रूप में कार्य करता है। हिंदी कथा साहित्य में, मार्क्सवादी आलोचना प्रेमचंद, यशपाल और फणीश्वरनाथ रेणु जैसे लेखकों के लेखन के माध्यम से प्रभावशाली हुई, जिन्होंने किसानों, श्रमिकों और हाशिए के समुदायों के शोषण पर ध्यान केंद्रित किया। मार्क्सवादी दृष्टिकोण साहित्य को सामाजिक संघर्षों और आर्थिक असमानताओं के प्रतिबिंब के रूप में देखता है, पाठकों से वर्ग उत्पीड़न को पहचानने और एक न्यायपूर्ण सामाजिक व्यवस्था की आकांक्षा रखने का आग्रह करता है। यह लेखक को एक उदासीन पर्यवेक्षक के रूप में नहीं, बल्कि सामाजिक परिवर्तन के संघर्ष में भागीदार के रूप में देखता है।

मनोवैज्ञानिक आलोचना (मनोवैज्ञानिक आलोचना)

मनोवैज्ञानिक आलोचना इस विश्वास पर आधारित है कि साहित्य मानव मन की आंतरिक क्रियाओं से गहराई से जुड़ा होता है। यह साहित्यिक कृतियों में पात्रों, उद्देश्यों और प्रतीकों की व्याख्या करने के लिए सिगमंड फ्रायड, कार्ल जंग और अन्य मनोवैज्ञानिकों के सिद्धांतों का सहारा लेती है। इस दृष्टिकोण के अनुसार, लेखक की

अवचेतन इच्छाएँ, भय और संघर्ष अक्सर कथात्मक रूपों और पात्रों के व्यवहारों के माध्यम से व्यक्त होते हैं। आधुनिक हिंदी कहानियों में, मनोवैज्ञानिक आलोचना बदलती सामाजिक परिस्थितियों में रहने वाले व्यक्तियों की छिपी भावनाओं, आघातों और नैतिक दुविधाओं को उजागर करने में मदद करती है। उदाहरण के लिए, निर्मल वर्मा और मोहन राकेश की कहानियों में, अलगाव, पहचान के संकट और आंतरिक उथल-पुथल पर ध्यान मनोवैज्ञानिक गहराई को दर्शाता है। आलोचक विश्लेषण करते हैं कि दमित इच्छाएँ या पिछले अनुभव पात्रों के निर्णयों और कार्यों को कैसे आकार देते हैं। इस प्रकार, मनोवैज्ञानिक आलोचना कथा के बाह्य जगत को भावना और विचार के आंतरिक जगत से जोड़कर साहित्यिक व्याख्या को समृद्ध बनाती है।

संरचनावादी और उत्तर-संरचनावादी आलोचना (संरचनावादी और उत्तर-संरचनावादी आलोचना)

बीसवीं सदी के मध्य में उभरी संरचनावादी आलोचना, भाषा, कथा और संस्कृति की उन अंतर्निहित संरचनाओं पर केंद्रित है जो साहित्य में अर्थ को आकार देती हैं। यह फर्डिनेंड डी सौसुरे के भाषाई सिद्धांतों से प्रभावित थी, जिन्होंने प्रतिपादित किया था कि भाषा में अर्थ संकेतों के बीच अंतर और संबंधों के माध्यम से निर्मित होता है। रोलांड बार्थेस और क्लाउड लेवी-स्ट्रॉस जैसे संरचनावादी आलोचकों ने इन विचारों को साहित्य पर लागू किया, और सुझाव दिया कि सभी कहानियाँ कुछ सार्वभौमिक प्रतिमानों या संहिताओं का पालन करती हैं। हिंदी कथा साहित्य में, संरचनावादी विश्लेषण उन आवर्ती विषयों, प्रतीकों और कथा तकनीकों की पहचान करने में मदद करता है जो व्यक्तिगत रचनाओं को व्यापक सांस्कृतिक ढाँचों से जोड़ते हैं। बाद में विकसित हुई उत्तर-संरचनावादी आलोचना ने संरचनावाद द्वारा प्रस्तावित निश्चित अर्थ के विचार को चुनौती दी। जैक्स डेरिडा और मिशेल फूको जैसे विचारकों का तर्क था कि अर्थ अस्थिर है और संदर्भ और व्याख्या के आधार पर निरंतर बदलता रहता है। उत्तर-संरचनावादी आलोचक इस बात पर ज़ोर देते हैं कि किसी भी पाठ का एक ही प्रामाणिक अर्थ नहीं होता; बल्कि, प्रत्येक पाठक अपने दृष्टिकोण से नए अर्थ गढ़ता है। हिंदी कथाओं में, यह दृष्टिकोण क्लासिक कहानियों की पुनर्व्याख्या को प्रोत्साहित करता है और लेखक, पाठ और पाठक के पारंपरिक पदानुक्रम को चुनौती देता है।

यह कहानी कहने के भीतर भाषा, शक्ति और विचारधारा की जाँच के नए रास्ते खोलता है।

15.4 समकालीन आलोचना

जैसे-जैसे साहित्य स्वतंत्रता और वैश्वीकरण के बाद के युग में प्रवेश कर रहा है, आलोचना के नए रूप उभर रहे हैं जो बदलते सामाजिक सरोकारों और पहचान की राजनीति को प्रतिबिंबित करते हैं। समकालीन आलोचना में **नारीवादी आलोचना, दलित आलोचना और उत्तर-आधुनिक आलोचना** शामिल हैं , जो मिलकर साहित्यिक अध्ययन की सीमाओं को पुनर्परिभाषित करते हैं। ये दृष्टिकोण विशुद्ध रूप से सौंदर्यपरक मूल्यांकन से आगे बढ़कर साहित्य में शक्ति, पहचान और प्रतिनिधित्व पर केंद्रित हैं।

नारीवादी आलोचना (स्त्रीवादी आलोचना)

नारीवादी आलोचना साहित्य का परीक्षण लैंगिक संबंधों और महिलाओं के अनुभवों के परिप्रेक्ष्य से करती है। यह उन पितृसत्तात्मक मान्यताओं पर प्रश्नचिह्न लगाती है जो लंबे समय से साहित्यिक सृजन और व्याख्या पर हावी रही हैं। नारीवादी आलोचक विश्लेषण करते हैं कि साहित्य में महिलाओं का प्रतिनिधित्व किस प्रकार होता है—चाहे स्वतंत्र व्यक्ति के रूप में हो या पुरुष दृष्टिकोण से परिभाषित निष्क्रिय विषय के रूप में। हिंदी कथा साहित्य में, कृष्णा सोबती, मन्नू भंडारी और मृदुला गर्ग जैसी महिला लेखिकाओं के उदय के साथ नारीवादी आलोचना को प्रमुखता मिली, जिन्होंने पहचान, स्वायत्तता और समानता के लिए महिलाओं के संघर्षों को चित्रित किया। यह दृष्टिकोण न केवल लैंगिक पूर्वाग्रहों को उजागर करने के लिए मौजूदा पुरुष-लिखित ग्रंथों की पुनर्व्याख्या करता है, बल्कि उन महिला रचनाकारों की आवाज़ का भी सम्मान करता है जो प्रेम, विवाह, मातृत्व और सामाजिक बाधाओं पर नए दृष्टिकोण प्रस्तुत करती हैं। नारीवादी आलोचना ऐसे साहित्य की वकालत करती है जो महिलाओं के अनुभवों को मानवीय अनुभव का केंद्र मानता हो और सभी प्रकार की लैंगिक असमानताओं को चुनौती देता हो।

दलित आलोचना (दलित आलोचना)

समकालीन हिंदी साहित्य में दलित आलोचना एक अनिवार्य प्रवृत्ति है, जो उत्पीड़ित और हाशिए पर पड़े समुदायों के जीवंत अनुभवों से उभरती है। यह भारतीय समाज में गहराई से जड़ जमाए जातिगत पदानुक्रम और सामाजिक भेदभाव को चुनौती देती है। ओमप्रकाश वाल्मीकि, शरण कुमार लिंबाले और दया पवार जैसे दलित आलोचक और लेखक साहित्य को सामाजिक न्याय और प्रतिरोध का एक माध्यम मानते हैं। दलित आलोचना सौंदर्यपरक परिष्कार की तुलना में अनुभव की प्रामाणिकता पर ज़ोर देती है—यह माँग करती है कि साहित्य दलित समुदाय के दर्द, गरिमा और संघर्ष को प्रतिबिम्बित करे। इसका ध्यान पहचान की पुष्टि, मानवाधिकारों की पुनः प्राप्ति और सांस्कृतिक आख्यानों में उच्च-जाति के प्रभुत्व को अस्वीकार करने पर केंद्रित है। इस दृष्टिकोण से, साहित्यिक ग्रंथों का उनके जातिगत प्रतिनिधित्व, मौन और शक्ति-गतिकी के आधार पर विश्लेषण किया जाता है। दलित आलोचना, निम्नवर्गीय स्वरों को शामिल करके और साहित्य को सशक्तिकरण और समानता के एक क्षेत्र के रूप में पुनर्परिभाषित करके हिंदी कथा अध्ययन के दायरे का विस्तार करती है।

उत्तरआधुनिक आलोचना (उत्तर-आधुनिक आलोचना)

उत्तर-आधुनिक आलोचना साहित्यिक चिंतन के सबसे नए दौर का प्रतिनिधित्व करती है, जिसकी विशेषता परम सत्य, भव्य आख्यानों और निश्चित अर्थों के प्रति संशयवाद है। यह व्यवस्था, प्रगति और तर्कसंगतता के आधुनिकतावादी आदर्शों के विरुद्ध एक प्रतिक्रिया के रूप में उभरा। उत्तर-आधुनिक आलोचकों का तर्क है कि यथार्थ खंडित होता है और भाषा, संस्कृति और माध्यमों के माध्यम से निर्मित होता है। हिंदी कथा साहित्य में, उत्तर-आधुनिक प्रवृत्तियाँ प्रयोगात्मक कहानी कहने, खंडित संरचनाओं, मेटाफ़िक्शन और अंतर्पाठीयता में देखी जा सकती हैं। विनोद कुमार शुक्ल, उदय प्रकाश और निर्मल वर्मा जैसे लेखक अपनी रचनाओं में अनिश्चितता, विडंबना और अर्थों की बहुलता की खोज करते हैं। उत्तर-आधुनिक आलोचना कथात्मक रूप में अस्पष्टता, विविधता और चंचलता को महत्व देती है, और यथार्थवाद या आदर्शवाद की कठोर श्रेणियों को अस्वीकार करती है। यह इस बात पर भी प्रकाश डालती है कि वैश्वीकरण, प्रौद्योगिकी और उपभोक्तावाद मानव पहचान और रचनात्मकता को कैसे

प्रभावित करते हैं। बहुलवाद को अपनाकर और अधिकार पर प्रश्न उठाकर, उत्तर-आधुनिक आलोचना ने पाठकों की व्याख्यात्मक स्वतंत्रता का विस्तार किया है और आधुनिक हिंदी कहानियों के अध्ययन को नया रूप दिया है।

15.5 सारांश

आधुनिक कथा आलोचना में यथार्थवादी, मार्क्सवादी और मनोवैज्ञानिक प्रवृत्तियों ने साहित्य को सामाजिक और मानसिक परिप्रेक्ष्य दिया। संरचनावाद ने भाषा और अर्थ पर ध्यान केंद्रित किया। नारीवादी और दलित आलोचना ने हाशियाकृत स्वरों को प्रमुखता दी। उत्तर-आधुनिक आलोचना ने बहुलवाद को स्वीकार किया। ये प्रवृत्तियाँ साहित्यिक अध्ययन को समृद्ध और व्यापक बनाती हैं।

15.6 इकाई अंत अभ्यास

1. यथार्थवादी और मार्क्सवादी आलोचना की प्रमुख विशेषताओं का विवेचन करते हुए हिंदी कथा साहित्य में इनकी भूमिका स्पष्ट कीजिए।
2. नारीवादी और दलित आलोचना के उद्भव, विकास और समकालीन हिंदी साहित्य में इनके योगदान का विश्लेषण कीजिए।
3. उत्तर-आधुनिक आलोचना की विशेषताओं को स्पष्ट करते हुए आधुनिक कथा साहित्य में इसकी प्रासंगिकता का मूल्यांकन कीजिए।

5.7 संदर्भ एवं अनुसंशित पठन सामाग्री

1. किशोर गिरिराज; आधुनिक हिंदी कहानी और आलोचना , भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली; वर्ष 1998
2. कमलेश्वर,नयी कहानी और उसका युगबोधराजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली; वर्ष 1975
3. मिश्र शिवकुमार,प्रेमचंद और आधुनिक हिंदी कथा ,राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली; वर्ष 1980
4. सिंह नामवर, हिंदी कथा साहित्य : प्रवृत्तियाँ और आलोचना ,राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली; वर्ष 1994
5. उपाध्यायदेवराज, साहित्यिक आलोचना : सिद्धांत और प्रवृत्तियाँ,सौभाग्य प्रकाशन, इलाहाबाद; वर्ष 2002

स्व-मूल्यांकन प्रश्न

बहुविकल्पीय प्रश्न (MCQs):

रामचंद्र शुक्ल ने किस पर विशेष बल दिया?

क) केवल शैली पर

ख) रस और भाव पर

ग) केवल भाषा पर

घ) केवल छंद पर

उत्तर: ख) रस और भाव पर

2. नामवर सिंह की प्रसिद्ध पुस्तक है:

क) हिंदी साहित्य का इतिहास

ख) कहानी: नई कहानी

ग) चिंतामणि

घ) कुटज

उत्तर: ख) कहानी: नई कहानी

3. मार्क्सवादी आलोचना में प्रमुखता होती है:

क) केवल शैली की

ख) वर्ग संघर्ष और सामाजिक यथार्थ की

ग) केवल रस की

घ) केवल छंद की

उत्तर: ख) वर्ग संघर्ष और सामाजिक यथार्थ की

4. मनोवैज्ञानिक आलोचना में अध्ययन होता है:

क) केवल भाषा का

ख) पात्रों के मनोविज्ञान और लेखक के अवचेतन का

ग) केवल कथानक का

घ) केवल शीर्षक का

उत्तर: ख) पात्रों के मनोविज्ञान और लेखक के अवचेतन का

5. स्त्रीवादी आलोचना का केंद्र है:

क) पुरुष पात्र

ख) स्त्री दृष्टिकोण और स्त्री अनुभव

ग) केवल भाषा

घ) केवल शैली

उत्तर: ख) स्त्री दृष्टिकोण और स्त्री अनुभव

6. दलित आलोचना का उद्देश्य है:

क) मनोरंजन

ख) दलित अनुभव और सामाजिक न्याय

ग) केवल साहित्य

घ) केवल राजनीति

उत्तर: ख) दलित अनुभव और सामाजिक न्याय

7. साहित्य की आलोचना का मुख्य उद्देश्य है:

क) रचना की निंदा

ख) निष्पक्ष मूल्यांकन और व्याख्या

ग) केवल प्रशंसा

घ) केवल आलोचना

उत्तर: ख) निष्पक्ष मूल्यांकन और व्याख्या

8. रसात्मक आलोचना में महत्व है:

क) केवल कथानक का

ख) रस अनुभूति और सौंदर्यबोध का

ग) केवल शैली का

घ) केवल भाषा का

उत्तर: ख) रस अनुभूति और सौंदर्यबोध का

9. उत्तर-आधुनिक आलोचना की विशेषता है:

क) पारंपरिक मूल्य

ख) बहुलतावाद, विखंडन, सापेक्षता

ग) केवल यथार्थवाद

घ) केवल आदर्शवाद

उत्तर: ख) बहुलतावाद, विखंडन, सापेक्षता

10. नगेंद्र किस दृष्टिकोण के समर्थक थे?

क) केवल मार्क्सवादी

ख) रसात्मक और भारतीय काव्यशास्त्र

ग) केवल पाश्चात्य

घ) केवल आधुनिक

उत्तर: ख) रसात्मक और भारतीय काव्यशास्त्र

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. रामचंद्र शुक्ल के कथा साहित्य संबंधी विचारों को संक्षेप में लिखिए।
2. मार्क्सवादी आलोचना की प्रमुख विशेषताएँ बताइए।
3. स्त्रीवादी आलोचना का क्या उद्देश्य है?
4. मनोवैज्ञानिक आलोचना क्या है? संक्षेप में समझाइए।
5. साहित्य की आलोचना के मुख्य मानदंड क्या हैं?

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. कथा साहित्य पर प्रमुख आलोचकों (शुक्ल, नामवर सिंह, नगेंद्र, रमेशचंद्र शाह) के विचारों का विस्तार से वर्णन कीजिए।
2. आधुनिक कथा साहित्य की प्रमुख आलोचना प्रवृत्तियों (यथार्थवादी, मार्क्सवादी, मनोवैज्ञानिक) का विस्तृत विवेचन कीजिए।
3. समकालीन आलोचना (स्त्रीवादी, दलित, उत्तर-आधुनिक) का विस्तार से परिचय दीजिए।
4. साहित्य की आलोचना के मानदंडों और उद्देश्यों का विस्तृत विश्लेषण कीजिए।

5. हिंदी कथा साहित्य की आलोचना का विकासक्रम और वर्तमान स्थिति पर विस्तृत निबंध लिखिए।

आलोचना और सैद्धांतिक अध्ययन

सारांश

आधुनिक हिंदी कथा साहित्य पर आलोचना ने विविध दृष्टियों से विचार किया है। रामचंद्र शुक्ल ने यथार्थवाद और आदर्शवाद के संतुलन को महत्व दिया, जबकि नामवर सिंह ने नई कहानी आंदोलन को आलोचनात्मक आधार प्रदान किया। नगेंद्र ने रसात्मक दृष्टिकोण से साहित्य और समाज के संबंधों को परखा। रमेशचंद्र शाह ने समकालीन कथाओं की आलोचना में नए आयाम जोड़े। आधुनिक आलोचना प्रवृत्तियों में यथार्थवादी, मार्क्सवादी, मनोवैज्ञानिक, संरचनावादी, स्त्रीवादी, दलित और उत्तर-आधुनिक आलोचना ने कथा साहित्य को नई दिशाएँ दीं, जिससे उसका सामाजिक, वैचारिक और कलात्मक मूल्य और गहराई प्राप्त हुई।

शब्दावली

1. आलोचना – साहित्य के मूल्यांकन और विश्लेषण की प्रक्रिया।
2. यथार्थवादी आलोचना – सामाजिक वास्तविकताओं पर आधारित विश्लेषण।
3. मार्क्सवादी आलोचना – वर्ग संघर्ष और सामाजिक विषमता पर केंद्रित दृष्टि।
4. मनोवैज्ञानिक आलोचना – पात्रों की आंतरिक मनोस्थितियों का विश्लेषण।
5. संरचनावाद – रचना की संरचना और भाषा पर ध्यान केंद्रित दृष्टिकोण।
6. उत्तर-संरचनावाद – अर्थ की बहुलता और पाठक की भूमिका पर बल।
7. स्त्रीवादी आलोचना – साहित्य में स्त्री की स्थिति और दृष्टि का मूल्यांकन।
8. दलित आलोचना – जातिगत उत्पीड़न और सामाजिक न्याय की विचारधारा।
9. रसात्मक दृष्टिकोण – साहित्यिक अनुभव में रस और सौंदर्य की खोज।
10. उत्तर-आधुनिक आलोचना – विविधता, विखंडन और व्यक्तिगत दृष्टिकोण की स्वीकृति।

याद रखने योग्य 5 मुख्य बिंदु:

1. रामचंद्र शुक्ल ने कथा साहित्य में यथार्थ और आदर्श के संतुलन पर जोर दिया।

2. नामवर सिंह ने नई कहानी की आलोचना को सैद्धांतिक रूप प्रदान किया।
3. नगेंद्र की आलोचना में रस और सामाजिक संदर्भ प्रमुख हैं।
4. समकालीन आलोचना में स्त्रीवादी, दलित और उत्तर-आधुनिक दृष्टियाँ प्रमुख हैं।
5. आधुनिक आलोचना ने कथा साहित्य की समझ को बहुआयामी और गहन बनाया।

संदर्भ:

1. प्रेमचंद, मुंशी. मानसरोवर (भाग 1–8). वाराणसी: सरस्वती प्रेस, 1932।
2. अज्ञेय, सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन. शेखर: एक जीवनी. दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, 1941।
3. निर्मल वर्मा. परिंदे. दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, 1959।
4. मोहन राकेश. नायक खोजना. नई दिल्ली: साहित्य अकादमी, 1965।
5. कमलेश्वर. कितने पाकिस्तान. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, 2000।
6. भीष्म साहनी. तमस. दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, 1974।
7. फणीश्वरनाथ 'रेणु'. मैला आंचल. पटना: भारती भवन, 1954।
8. राजेन्द्र यादव. सारा आकाश. दिल्ली: लोकभारती प्रकाशन, 1959।
9. शिवानी. कृष्णकली. दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, 1960।
10. मन्नू भंडारी. आपका बंटी. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, 1971।
11. यशपाल. दिव्या. लखनऊ: झंडा प्रकाशन, 1945।
12. अमरकांत. जिंदगी और जोंक. इलाहाबाद: भारतीय ज्ञानपीठ, 1956।
13. मार्कण्डेय. बीच बहस में. दिल्ली: साहित्य अकादमी, 1960।
14. कृष्णा सोबती. जिंदगीनामा. दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, 1979।
15. विष्णु प्रभाकर. आवारा मसीहा. दिल्ली: साहित्य अकादमी, 1980।
16. राही मासूम रज़ा. आधा गाँव. दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, 1966।
17. उदय प्रकाश. पीली छतरी वाली लड़की. दिल्ली: वाणी प्रकाशन, 2001।
18. संजीव. सूत्रधार. पटना: वाणी प्रकाशन, 2010।
19. शिवमूर्ति. त्रिशूल. दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, 2015।
20. स्वयं प्रकाश. जंगल कहाँ है? जयपुर: साहित्य अकादमी, 2018।

अपनी प्रगति की जाँच करें

1. **आधुनिक हिंदी कथा साहित्य की प्रमुख आलोचनात्मक प्रवृत्तियों का संक्षेप में वर्णन कीजिए।**

---

2. **आधुनिक कथा साहित्य पर सामाजिक, मनोवैज्ञानिक और वैचारिक आलोचना के प्रभाव को उदाहरण सहित स्पष्ट कीजिए।**

MATS UNIVERSITY

MATS CENTRE FOR DISTANCE AND ONLINE EDUCATION

UNIVERSITY CAMPUS: Aarang Kharora Highway, Aarang, Raipur, CG, 493 441

RAIPUR CAMPUS: MATS Tower, Pandri, Raipur, CG, 492 002

T : 0771 4078994, 95, 96, 98 **Toll Free ODL MODE :** 81520 79999, 81520 29999

Website: www.matsodl.com